कुर्मसिद्धान्तोपमर्दः

तत्र

प्रथम–द्वितीय–भाग–खण्ड

लेखक

वैद्य रामनाथ शर्मा

मौजा [illegible] जिला उन्नाव

शोधक

श्री पं. लक्ष्मीशंकर त्रिवेदी

प्रकाशक

हरिवंशकुमार वर्मा

सम्वत् २००९ वि. [प्रथमावृत्ति १०००]



अथ

कूर्मसिद्धान्तविमर्शः

तत्र

प्रथम-द्वितीय-परिच्छेदौ

निर्देशक

सेठ रामनाथ वर्मा

मौजा रूझई जिला उन्नाव

रचयिता

श्री॰ पं॰ लक्ष्मीशंकर मिश्रार्यजी

प्रकाशक

हरिवंशकुमार वर्मा

सम्वत् २००९ वि.

नोटः—भूमिका तथा पृष्ठ १ से ९२ तक श्यामसुन्दर प्रेस में तथा ९३ से १२४ तक जय भारत प्रिंटिंग प्रेस में तथा शेष दी. मारवाड़ी प्रेस लि. में मुद्रित हुई।

भूमिका

इस ग्रन्थ का नाम "कूर्मसिद्धान्त विमर्श" इस लिये है कि, इस में कूर्म वंश को शास्त्र और पुराण आदि से जिस प्रकार समझा है उस का प्रकाश वैसा ही किया गया है।

कूर्म, कूर्मिन्, कौरम, तीन प्रकार के रूपों वाला वेद में यह शब्द कहां कहां आया है इस ग्रन्थ में वे मन्त्र सभी लिखे हैं। व्याकरण में शाकटायन मुनि और निरुक्त में यास्क ऋषि का सिद्धान्त है कि, वैदिक शब्द सब यौगिक और योग रूढि है जैसे –

"नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥
सञ्ज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥
(उणादयो बहुलम् ॥ अष्टा० ३।३।१ ॥ इस सूत्र पर महाभाष्य)

निरुक्त में यास्क मुनि और व्याकरण मे शाकटायन मुनि का मत है कि जितने (सञ्ज्ञा) वाचक शब्द है वे सर्व धातुओ से उत्पन्न होने के कारण यौगिक और ... नाम हैं। इसी प्रकार मीमांसाकार जैमिनि मुनिने भी मीमांसा दर्शन मे "परन्तु श्रुति ... ...गरूढि मात्रम्" इत्यादि सूत्रों में वैदिक शब्दो को यौगिक और योगरूढि ही प्रतिपादन ... सामान्य उस विचार से वेद में रूढि शब्द नही है, एवम् महर्षि कणाद ने अपने वैशेषि... किया है। लिखा है कि "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" वै० अ० ६। आ १। सू० १ ॥ ... शास्त्र में वाक्यरचना बुद्धि (ज्ञान) पूर्वक है। वेद का एक २ शब्द और वाक्य ज्ञा... ...र्थात वेद में हैं, कोई शब्द रूढि नहीं। पाणिनि आचार्य ने अपने व्याकरण में यौगिक, ...न से परिपूर्ण योगरूढि और रूढि तीन प्रकार के शब्द माने हैं।

यौगिक शब्द गुण कर्म स्वभाव को लिये हुए किसी चेतन वा जड वस्तु के वाचक होते हैं। जैसे किसी ने किसी से कहा कि "गोपालमानय" गोपाल को ले आ, पाचक को ले आ। वह गौ पालने वाले को ले आता है और जो गौ नहीं पालता उस को नहीं लाता। इसी प्रकार पाचक को ले आ, ऐसा कहने पर जो पकाने का काम जानता हो उसी का नाम पाचक है उसी को वह ले आता है और जो पकाने का काम नहीं जानता उसको नहीं लाता है। परन्तु रूढि शब्दों में अर्थ का काम विचार नहीं रक्खा जाता गोपाल को ले आ अथवा पाचक को ले आ दोनों मे गौ और पकाना अर्थ का विचार किये बिनाही गोपाल और पाचक नाम होते है।

योगरूढि उन शब्दों को कहते हैं कि जो अपने वाच्यार्थ को लिये हुवे किसी एकही वाच्य के बोधक हों। जैसे पंकज शब्द कमल वाची है, इसका अर्थ 'पंकाज्जायते पंकजः' जो पंक अर्थात कीचड से उत्पन्न हो वह पंकज कमल कहाता है। यह अर्थ सदैव (पंकज) कमल शब्द के साथ रहेगा अतः यह योगरूढि है।

रूढि शब्द वे कहाते हैं कि जिन का प्रयोग लोक में संकेतिक रूप से होता है जैसे गोपाल, गौ एक भी नहीं परन्तु नाम गोपाल और नाम लक्षपति रख लिये कौडी पास नहीं इत्यादि।

प्रस्तुत में कूर्म शब्द के यौगिक योगरूढि और रूढि तीनों प्रकार के अर्थ होते हैं। यौगिक और योगरूढि पक्ष मे यह कूर्म शब्द 'कृ' धातु से औणादिक मक् प्रत्यय करके सायणाचार्य ने इस की सिद्धि शतपथ के ७ वें काण्ड में की है, और सायण ने इस को केवल नाम वाचक माना है। शतपथ काण्ड ७ अ० ५ ब्रा० ४ में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस शब्द का यौगिक अर्थ यह किया है कि "यदसृजदकरोत् तस्मात् कूर्मः" जिस लिये परमात्मा ने प्रजाओं को (अकरोत्) किया अर्थात् रचा इस लिये उस का नाम कूर्म्म हुवा, अर्थात् सृष्टिकर्ता होने से वह कूर्म सञ्ज्ञक है। दूसरा अर्थ- **स यः स कूर्मोऽसौ स आदित्यः** शतपथकार ने आदित्य शब्द का सूर्य अर्थ किया है। आदित्य शब्द **'दो' अवखण्डने** इस धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर 'दितिः' ऐसा बनता है नञ् समास किया-तो **'न दितिः अदितिः' "अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्"** ॥

इस मन्त्र मे अदितिशब्द ईश्वर और प्रकृति अर्थ वाला है और रूढिपक्ष मे कश्यप की [स्त्री] का नाम अदिति है। गोपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि प्रजा की कामना करती हुई अदिति [ने] [चा]वल पका कर भात का होम किया और यज्ञशेषान्न खाया पति संयोग होने पर वह गर्भ-[वती हु]ई, उससे आदित्य उत्पन्न हुए "**तत आदित्या अजायन्त**॥ यह मूल पाठ है" [आदित्याः]" बहुवचन से चारों वर्ण उत्पन्न हुए। प्रकृति (मादा) से ही परमात्मा ने सूर्यादि [लोकों को] रचा है। अदिति अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न होने से आदित्य नाम सूर्य का है जो [अन्धकार को] दूर कर जगत् में प्रकाश करता है वह आदित्य सूर्य कहाता है **सरत्याकाशमार्गे [सुव]ति लोकं कर्मणि प्रेरयतीति सूर्यः** जो आकाश मार्ग से जाता हुआ अन्धकार [को दूर कर लोक] को अपने २ कामों के करने के लिये प्रेरणा करता है वह सूर्य कहाता है। यह [अपने प्रकाशार्]थ को लिये हुए आदित्य नाम मे योग रूढि है। यह शतपथकार के किये अर्थ का आशय है।

कूर्म शब्द का ती[स]रा अर्थ--शतपथ में, "कूर्मो वै रसः" है। यहां कूर्म का रूढि अर्थ रस है। रस का अर्थ शत[पथ] में दूध और दही लिखा है "**रसगतौ** और **रस आस्वादने**" इन दोनों धातुओं से रस शब्द बना है।

पूर्व जो कूर्म शब्द का आदित्य अर्थ लिखा है शतपथ उसका अर्थ सूर्य ही करता है परन्तु कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता अष्टक ५ (प्रपाठक) (७) अनुवाक (१) पृ० ३७१३ मे **"असौ वा आदित्य इन्द्र । एष प्रजापतिः"** यह आदित्य इन्द्र है और यह प्रजापति है । यहां आदित्य का अर्थ इन्द्र प्रजापति होने से कूर्म का अर्थ भी इन्द्र होता है अर्थात् कूर्म इन्द्र है । इन्द्र शब्द यहां देहधारी क्षत्रिय के अर्थ मे है । और जिस का आकार गोल हो और जो खण्ड २ न हो वह आदित्य अर्थात् सूर्य कहाता है वेद मे "इन्द्र का विशेषण **"तुवि कूर्मितमः"** यहा कूर्मिन् शब्द आया है जिसका अर्थ सायणादि भाष्य कारोने 'अतिशयेन बहुविध कर्मा' । अतिशय से अनेक विध कर्मा किया है, । अर्थात् जो युद्ध समय अनेक प्रकार की व्यूहादि क्रियाओ को करता हो वह इन्द्र परमैश्वर्य सम्पन्न क्षत्रिय राजा तुवि कूर्मितम कहाता है ।

व्याकरण शास्त्र मे 'तमप्' प्रत्यय अतिशय अर्थ मे होता है ' कूर्मितमः' मे शब्द कूर्मिन् है और तमः यह तमप् प्रत्यय है । इन्द्र शब्द कूर्मि विशेषण सहित कूर्मितमेन्द्र अथवा कूर्मेन्द्र के रूप मे वैदिक काल मे था, कुछ काल के पश्चात् यह कूर्म अथवा कूर्म शब्द अन्य नामो के साथ भी संस्कृत साहित्य के आर्षग्रन्थ वाल्मीकीय आदि मे प्रयोग किया जाने लगा, तब यह इन्द्र मे अलग हो शूर वीरतादि अर्थो मे दूसरे विशेष्य वाची शब्दो के साथ जुडकर केवल कूर्म, कूर्मि, कौरम, रहगया । वास्तव मे देखाजाय तो यह मुख्यार्थ क्षत्रिय वाचक इन्द्र के साथ ही वेद मे आया है । इन्द्र के देखादेखी पीछे इन्द्रवत् अन्यो के साथ में प्रयुक्त हुआ, आरम्भ में यह कूर्मेन्द्र था परन्तु जब दूसरे नामो के साथ भी प्रयुक्त होने लगा तब कूर्मि, व कूर्म होकर यह स्वयम् विशेष्य बन गया यहा तक कि गृत्समद आदि ऋषियो ने अपने अपने पुत्र का नाम कूर्म ऋषि रक्खा, इस प्रकार यह वैदिक काल मे यौगिक अर्थवाला था पुनः योगरूढि अर्थवाला और आजकल केवल रूढि अर्थवाला विशेष्य के रूप मे है । अन्य क्षत्रिय से शूरता वीरतादि गुणो मे अधिक होने से सृष्टयारम्भ से एक क्षत्रिय मनुष्य समुदाय का नाम कूर्मि क्षत्रिय हुआ जो अद्यावधि वंश के रूप मे विद्यमान है । साराश हम क्षत्रिय तो हैं परन्तु कूर्मि क्षत्रिय हैं । यह यथार्थ है कि क्षत्रिय वही है जो अपनी शूरवीरता गुणो से युक्त हो फिर भी सुगमता से बोध करने कराने के लिये यह कूर्मि शब्द इन्द्रक्षत्रियादि के साथ मे प्रयुक्त हुआ है कि यह कूर्मेन्द्र है, कूर्मि क्षत्रिय है । यह कौरम राजा है । इत्यादि प्राचीन व्यवहार है ।

कूर्म शब्द का (४) चतुर्थ अर्थ - "वृषा वै कूर्मो योषा पाढा" ॥ श. । का. ७ । अ. ५ प्र. ४ । यहां शतपथकार ने स्पष्ट ही कूर्म का अर्थ देहधारी जीवात्मा किया है । क्यो कि वृषा का धात्वर्थ 'सेचन' है । सेचन का अर्थ सींचना है । सायण वृषा का यौगिकार्थ यह करते हैं कि 'वीर्य सेचन समर्थत्वात् पुमानुच्यते' श । कां. ७ । अ. ५ । प्र. ४ ॥ अर्थात् वृषा का अर्थ युवा पुरुष है और योषा का अर्थ स्त्री है । पुरुषों में भी वह पुरुष जो वीर्य सेचन मे समर्थ हो ऐसे विवाहित पुरुष का नाम वेद मे इन्द्र आता है । कूर्म का अर्थ युवा दृढांग हृष्ट पुष्ट पुरुष है । चाहे वह कुमार वा कुमारी हो और चाहे विवाहित हों । जो अपत्योत्पादन में समर्थ हो वह और जो राष्ट्र विप्लव काल मे अनाथ निर्धन (गरीबों) के

पुत्रादिकों को अपने बाहुबल से बचाया वही कूर्म क्षत्रिय है। अपत्योत्पादन दो प्रकार का है। एक गृहाश्रम में ऋतुगामी होकर धर्मानुकूल सन्तानोत्पत्ति करना; दूसरा राष्ट्र विप्लव समय देशके स्त्री, बालक और वृद्ध तथा अन्य जीवों को आततायी अधर्मी पापियो से बचा कर उन की रक्षा करना यह भी अपत्योत्पादन है। जैसे कि महाराणा प्रताप आदि इसी कूर्म कुल से हुए और उन्हों ने देश की रक्षा की थी।

कूर्म शब्द का (५) पांचवां अर्थ कश्यप है 'कश्यपो वै कूर्मः' श. कां. ७ अ. ५ प्र. ८ शतपथकार कूर्म शब्द का यौगिक अर्थ करते हैं 'यदकरोत् तस्मात् कूर्मः प्रजाओं के उत्पन्न करने से ईश्वर का कूर्म नाम है इस अपने अर्थ की पुष्टि में प्रमाण देते हैं कि इससे पूर्व भी यह सृष्टि कश्यप की रची हुई है ऐसा विद्वान कहते हैं कश्यप शब्द का अर्थ सर्व द्रष्टा परमेश्वर है और उसी की कूर्म सञ्ज्ञा है। "तस्मादिमाः प्रजाः काश्यपा इति आहुः श. कां. ७ अ. ५। प्र. ४॥ कश्यप का दूसरा अर्थ शतपथ काण्ड ७ अध्याय ५ प्रपाठक ८ में 'कश्यपो वै कूर्मः' 'प्राणा वै कूर्मः' 'कूर्मो वै प्राणः' श. कां. ७ अ ५ प्र. ४ कश्यप का अर्थ कूर्म और कूर्म का अर्थ प्राण है। 'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्' ॥ य. अ. ३.

इस याजुष मन्त्र में कश्यप किसी देहधारी का नाम नहीं किन्तु वहां कश्यप का अर्थ शतपथ के प्रमाण से कश्यपो वै कूर्मः " कूर्मो वै प्राणः' से कश्यप शरीरस्थ प्राण का नाम है पुराण में कश्यप को ब्रह्मा का पुत्र लिखा है ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा हुआ वही कश्यप है शतपथ मे कूर्म शब्द का जीवात्मा परमात्मा तथा प्रकृति परक अर्थ है। मत्स्य पुराणमें कश्यप को मरीचि का पुत्र लिखा है 'मरीचेः कश्यपः पुत्रः' कश्यप सामवेद के मन्त्रो का ऋषि हुआ है। राजपूत इतिहास पृ. १०८ में किसी शिष्ट का श्लोक उद्धृत किया है जिस का अर्थ कश्यप ने पृथिवी भर के क्षत्रियों को राजा बनाया लिखा है। अथर्व वेदमें भी मन्त्र-द्रष्टाओं के नामोंमें कश्यप का नाम है। परन्तु शतपथकार किसी देहधारी व्यक्ति को कश्यप नहीं मानते किन्तु प्राण और सुवा पुरुष को कश्यप मानते हैं। अन्य लोगों ने किसी देहधारी व्यक्ति माना है। कश्यप और कूर्म दोनों शब्दों का अर्थ सृष्टि अर्थ में और योग रूढि हैं।

कूर्म शब्द का ६ ठा अर्थ उसी शतपथ के ७ वें काण्ड में 'प्राण' है और लिखा है कि 'प्राणोहीमाः सर्वाः प्रजा उत्पादयति' इस का अर्थ सायण लिखते हैं 'प्राणिभिरेव इमाः सर्वाः प्रजा उत्पद्यन्ते' अर्थात् प्राणी (शरीर धारियों से ये सारी प्रजा उत्पन्न होती हैं जब शरीरधारी का नाम कूर्म अथवा कश्यप शतपथ कहता है तब मैथुनी सृष्टि मे कूर्म से कूर्म वंश की उत्पत्ति भी शतपथ से सिद्ध है। सायण, उव्वट और महीधरने तो कूर्म का कच्छप परक अर्थ 'मही च द्यौः' इत्यादि तीन मंत्रों की व्याख्या करते हुए कूर्म वंश लिखा है, सो कछवाहे कूर्मी अबभी हैं। अवतार वाद पक्ष में जीव को ईश्वर माना गया है जिन का यह पक्ष है कि शतपथ में कूर्मावतार है एतद्वै रूपं कृत्वा' का अर्थ कूर्मावतार रूप किया है इससे कूर्मावतार शतपथ भी मानता है,। यह उनका पक्ष मूल शतपथ के सर्वथा अनुकूल है। कूर्म रूपं कृत्वा का सर्जन कालमें प्रकृतिसहित ब्रह्मा इत्यादि अर्थ प्रमाणपूर्वक इस ग्रन्थ में

लिखा है जिस से अवतार वाद का भ्रम दूर हो जाता है शतपथ में कूर्मावतार नहीं इस विषय में दूसरा प्रमाण यह है कि यदि शतपथ कार को कूर्मावतार अभीष्ट होता तो जहां शतपथ के ७ वें काण्ड अध्याय ५ में कूर्म शब्द के आठ (८) अर्थ लिखे हैं "कूर्मोऽसौ आदित्यः कूर्मो वै रसः कूर्मो वै प्राणः" इत्यादि वहां एक अर्थ नवां यह भी लिखना था कि "कूर्मो वै अवतारः" परन्तु ऐसा नहीं है, इस लिये यही यथार्थ है कि शतपथ कूर्मावतार को नहीं मानता है।

टि० - अवतार वादका खण्डन किसी भी आस्तिक वाद ग्रथों मे नहीं है। शतपथ ब्राह्मण तो ब्राह्मणग्रंथ है, अवतार मण्डनात्मक वचनो से ही ओतप्रोत है। "संशोधक"

कूर्म शब्द का (७) सातवां अर्थ "द्यावा पृथिवीयः कूर्मः" है। अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक का नाम कूर्म है। यह अर्थ खगोल विद्या से सम्बन्ध रखता है। पृथिवी नामक कूर्म लोक मे द्युस्थानी सूर्य्य अपनी किरणों से वर्षा करता है जिस से पृथिवी अन्न फल मूल कन्द इत्यादि उत्पन्न करती है इसी प्रकार "द्यौः" पुरुष सूर्य स्थानीय और स्त्री पृथिवी स्थानी है, दोनों के धर्मानुकूल संयोग से वंशों की उत्पत्ति होती है।

कूर्म शब्द का (८) आठवां अर्थ शतपथकार शतपथ काण्ड ७ अ. ५ में लिखते है कि "शिरः कूर्मः"। मनुष्य शरीर मे शिर कूर्म अर्थात् इन्द्रियों की उत्पत्ति का स्थान (मूल) है। लोक में शिर को मूल भी कहते है। मूड शब्द मूल का अपभ्रंश है। शरीर में शिर सूर्य है जैसे सूर्य से उसकी ७ सात किरणों का सम्बन्ध है वैसे ही प्राण और इन्द्रियोंका सम्बन्ध शिर से है। यह अर्थ जीवात्मा परक है। कूर्म का अर्थ प्राण और पांच ज्ञानेन्द्रिय है। अथर्ववेद में शिर को देव अर्थात् इन्द्रियों का कोष उपदेश किया है।

हमने कूर्म शब्द के (८) अर्थ शतपथोक्त उपरि दिग्दर्शन मात्र कराये हैं। उन आठ अर्थों को सायण प्रभृति भाष्यकारों ने जिस रीति से कूर्म शब्द के रूढि कच्छप अर्थ को मुख्यमान उपधान विषय में लगाया है वह यह कि शतपथोक्त कूर्म शब्द का वह २ अर्थ न करके (जो शतपथ में है) केवल कच्छप जलजन्तु के साथ उन आठ अर्थों की समता मात्र दिखाई है और लिखी है इससे भले ही कच्छप का महत्व सिद्ध हो परन्तु प्रकरण विरुद्ध इस अर्थ से संसार का लेशमात्र भी उपकार नहीं। अब भाष्यकारों के समता अर्थ देखिये। जैसे शतपथ मे शतपथकार ने कूर्म का अर्थ आदित्य (सूर्य) लिखा, इस पर सायणादि अर्थ करते है जैसे सूर्य गोलाकृति है वैसे ही कच्छप भी गोलाकार है इत्यादि कच्छप को ही मुख्य मान सर्वत्र उसकी प्रशंसा परक अर्थ किया है। जिसका यज्ञ प्रकरण के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं। इस विषय को विशेष समझना जानना हो तो समाहित चित्त से आद्योपान्त इस ग्रन्थ को पढ़िये। उपधान का अर्थ उपस्थापन है। यज्ञवेदी के समीप पूर्व अथवा उत्तर की ओर यज्ञोपयोगी सब सामग्री यज्ञकर्ता रक्खे यही उपधान है। इत्यादि अर्थ कर सर्वत्र कच्छप का स्थान यज्ञ मे लिखा है। एक स्थान में है कि कच्छप को मध्यमा ऋचा से हथेलीपर रखकर हिलावे इत्यादि।

एक अर्थ यह भी है कि जो मनुष्य समुदाय कूर्म संज्ञक ईश्वर का भक्त (उपासक) हो वह कूर्मवंश कहावेगा, कूर्म जो सृष्टिकर्ता परमेश्वर है उसकी सृष्टि कूर्मवंश है। इस अर्थ में [illegible] अन्य वंशोंका आदि मूल है।

स्वायम्भुव मनुसे वैवस्वत मनु तक कूर्मवंश का अनुक्रम (सिलसिला) कैसे सम्भव है जबकि प्रति मन्वन्तर में नूतन सृष्टि होकर परिवर्तन हो जाता है। उस समय पहिले मन्वन्तर के वंश दूसरे परिवर्तितमन्वन्तरमें नहीं रहसकते क्योंकि वंश अनित्य है। उत्तर— सिद्धान्त शिरोमणि में दैनंदिन और आत्यन्तिक आदि भेदसे चार प्रकार के प्रलयोंका वर्णन है। अवान्तर प्रलयों मे सृष्टि का अत्यन्त विच्छेद नहीं होता। शब्द नित्य है, प्रवाह न्याय से कल्प कल्पान्त सृष्टि भी नित्य है और वृष्णि कुरु अन्धकादि अधिकारी शब्द है, इस प्रकार के कुल का नाम अन्धक होना चाहिये सो अन्धकादि शब्द प्रति कल्प में अनादि चले तो. कभी नवीन नहीं होवे। गोत्रों का क्रम भी सृष्ट्यारम्भ से ही चला आता है। गोत्र इस बातका प्रमाण है कि वंश सृष्ट्यारम्भ से चले आ रहे हैं। भगवान कपिलमुनि अपने सांख्यशास्त्र में लिखते हैं कि "इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः" सांख्य।।

जैसे अब कहीं सृष्टि है और कहीं सृष्टि का नाश है परन्तु सर्वत्र अत्यन्त नाश नहीं है।

इस प्रमाण से कूर्मवंश की लता स्वायम्भुव मनुसे वैवस्वत मनु तक चली आ रही है। सृष्ट्यारम्भ में आर्य और दस्यु दो भेद हुए। यह भेद मानव जाति के उत्पत्ति के पश्चात् है जिन के आचरण श्रेष्ठ थे वे आर्य कहाये और जिनके आचरण श्रेष्ठ न थे वे दस्यु कहाये। आर्यों में चार भेद-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह व्यवस्था वेदकी है। वेदोक्त वर्ण चार ही है। पीछे से क्षत्रिय वंश चार भागों में विभक्त हो गया। १ सूर्य वंश २ चन्द्र वंश ३ नाग वंश ४ अग्नि वंश। इन चारों की उत्पत्ति कश्यप कूर्म से है, इसी से कश्यप कूर्म अन्य चारों का आदि स्रोत है। कश्यप कूर्म रूप यह अमैथुनी सृष्टि मे हुए। मैथुनी सृष्टि उक्त सूर्य, चन्द्र, नाग, अग्नि इन्ही चार वंशो में कूर्म वंश की उत्पत्ति पुराणों ने मानी है। इस ग्रंथ में इसका भली भांति प्रतिपादन प्रमाणपूर्वक किया गया है। जैसे सूर्यवंशीय वीतहव्यके पुत्र गृत्समद और गृत्समदके पुत्र कूर्म ऋषि। एवम्—चन्द्रवंशी शुनहोत्रके पुत्र गृत्समद गृत्समद का शुनक और शुनक का शौनक तथा कूर्म देखो स्कन्दपुराण सह्याद्रिखण्ड अध्याय ३३। चन्द्रवंश के ८० कुलों में कूर्मऋषि वाला नागवंश में कद्रूके अपत्योंमें "कूर्मः कुलिकश्चैव" कूर्म का जन्म है औरइसी प्रकार अग्निवंश में जयसिंह, महाराणा प्रताप और अन्तिम राजा पृथ्वीराज चौहान थे, सब कूर्मकुलमे ही हुए हैं। कूर्मशब्द संज्ञा और गुण वाचक दोनों अर्थों में आया है. सो प्रकरणोंसे समझना चाहिये। क्यो कि ऐसा न समझने समझाने से लोगों ने भूल की है। कहीं सञ्ज्ञा वाचक को गुणवाचक और कहीं गुणवाचक को सञ्ज्ञावाचक समझा गया है। अस्तु

पुराणों के पढने से यह स्पष्ट है कि इस कूर्मवंशमें चारों वर्ण थे, ऐसा कोई समय था और वह समय चन्द्र वंशोत्पन्न शौनक का है। शुनक पुत्र शौनक चारों वर्णोंके प्रवर्तक हुए हैं इस विषय में वायु पुराण और विष्णु पुराण का एक मत है। वायुपुराण खण्ड (३) अ. ३० में लिखा है कि "पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः। ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥" एतस्य वंशे सम्भूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजाः॥ एतस्य शौनकस्य वंशेहि सम्भूताः॥" इस शौनकके वंश मे ब्राह्मणादि चारों वर्ण उत्पन्न हुवे अर्थात् अपने २ गुण कर्म स्वभावानुसार कौर्मीयब्राह्मण, कौर्मीयक्षत्रिय, कौर्मीयवैश्य और कौर्मीयशूद्र संज्ञा से प्रसिद्ध थे, जिसका अपभ्रंश कुर्मी होगया है। लघुनारदीय पुराण

में कूर्म को शौनक का भाई लिखा है यह प्रमाण इस ग्रन्थ में अन्यत्र है। इसी प्रकार विष्णु पु. में भी है कि "**शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताऽभूत्**" शौनक चारों वर्णों का प्रवर्तक हुआ है। गुण कर्म और स्वभाव के विषय में मनु महाराज लिखते हैं कि "**स्वकर्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्णसङ्कराः**" म। अ. १०। । अर्थात् ब्राह्मणादि चारों वर्ण जब अपने २ कर्तव्य कर्मों को छोड देते है तब वे वर्णसंकरता को प्राप्त हो जाते हैं।

महाभारत में सर्प ने युधिष्ठिर से कहा है कि "**यदि ते वृत्ततो राजन् ! ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः । वृथाजातिस्तदाऽयुष्मन् कृतिर्यावन्न विद्यते**" ॥ हे राजन् युधिष्ठिर! यदि आप आचरण सेही वर्ण मानते हैं तो 'वृथा जाति' जन्म पक्ष व्यर्थ है इसके प्रत्युत्तर में महाराज युधिष्ठिर का कथन ध्यान देने और मनन करने योग्य है। युधिष्ठिर ने कहा है सर्प "**जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते। सङ्करात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः**"॥ हे बडी बुद्धि रखनेवाले महा सर्प । जाति तो मनुष्य है, इस समय वर्णो की संकरता से जाति की परीक्षा अतिकठिन हैं"॥ क्योंकि **सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः**" ॥ चारों वर्ण चारों वर्णो की स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं ॥ '**वाङ् मैथुनमथोजन्ममरणञ्च समं नृणाम्** ॥ **इदमार्षप्रमाणञ्च येयजामह इत्यपि । तस्माच्छील प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः** ॥ वाणी (बोलचाल) मैथुन (संयोग) और (जन्म) उत्पत्ति-ये सब मनुष्यों में (सम) समान (एकसीन है कुछ भी भेद नहीं. इसलिये तत्वदर्शी सदाचार को ही मुख्य मान वर्ण निर्णय करते जानते हैं किन्तु जबतक आश्रम धर्म में हैं तबतक जन्म से ही वर्णव्यवस्था को मानते है और आस्तिक सिद्धान्त भी यही है।

आज से कई वर्षो पूर्व विद्वानों द्वारा कूर्म वंश की वास्तविकता जानने और निर्णय के लिये हमारे पूर्वजों को उत्कट जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी, उस समय "**माल मालिनी भक्तस्य कूर्मनाम्नो ऋषेः कुले**" स्कन्दपु. सह्याद्रि खण्ड अध्याय ३३ श्लो. ६४।६५।६६। इस प्रमाण को उन्होंने कर्ण गोचर किया कि **महातपास्य** राजर्षि कुश के चतुर्थ पुत्र वसु के वंश में कूर्म ऋषि और कूर्म ऋषि के वंश में पहिला राजा प्राणनाथ हुवा ऐसा सुन इस विषय पर विशेष अनुसन्धान करना चाहा और किया भी जिसके फलस्वरूप क्षत्र-कुलादर्श और कूर्मक्षत्रियत्वदर्पण पुस्तक निर्माण किये गये। जिन में एतद्विषयक प्रमाणों का सङ्ग्रह है, फिर भी जिज्ञासारूपी पिपासा बनी रही कि अद्यावधि जो अनुसन्धान हुआ है वह अपूर्ण है। अतः पूर्णरूपेण प्रमाणों का संग्रह कर उस को लोकोपकारार्थ प्रकाशित कर देना उचित होगा किन्तु दौर्भाग्यवश इस विचार को लिये हुवे वे परलोकान्तरित हुए जिससे यह काम अपूर्ण रहा, उनके उसी सङ्कल्प को अब हम पूर्ण करने का प्रयत्न इस ग्रन्थ मे अपनी अल्प बुध्यनुसार किया है। कदाचित प्रमादादि से कहीं कोई भूल हो गई हो तो— सूचना होनेपर पुनरावृत्ति में सुधार की जायगी, अस्तु। कूर्म शब्द वेदोक्त हैं जैसे '**सुखि कूर्मिन्**' ऋ.। मण्डल ८। सू. ५५। मं. १२॥ ऋ.। मण्ड. ६। सूत्र ३७। मं. ४ में **कूर्मिं तमः** पद है। एवम् ऋ.। मण्डल ८ सू. ६८। मं. १ में '**कूर्मिम्**' शब्द आया है। य.। अ. २४। मं. १ में '**कूर्मः**' पद है। **कूर्मोगात्समद् ऋषिः**। य. अ. ३३। मं. ५१ के मन्त्रद्रष्टा ऋषि। य.। अ. ३३। मं. ५१। का मन्त्रद्रष्टा ऋषिः 'कूर्म ऋषि' है। एवम्

गृत्समद: शौनकः सामवेद । अष्टमीदशति १२ वां काण्ड । ऐन्द्रपर्व काण्ड अध्याय ४ ॥ अब अथर्व वेदमें देखिये ' कौरम् ' । अ. । कां. २० । सू. १२७ । मं. १ इस मन्त्र में कौरम (कुरम) क्षत्रियार्थ का विशेष्य रूप में द्योतक है । कूर्म का विषय शतपथ ब्राह्मण काण्ड ७ । अ. ५ । प्रपा. ८ । का. १ से ११ ग्यारह पर्यन्त है और फिर ३५ वें. ब्रा. में है । उपयोगी समझ कर मूल और अर्थ सहित उन सब का उल्लेख इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद के पूर्वभाग में है । तदतिरिक्त दर्शन और उपनिषद आदि के प्रमाणों का भी संग्रह है । यह ग्रन्थ पूर्वभाग और उत्तरभाग दो में विभक्त है, और यह तीन परिच्छेदों में समाप्त हुआ है । एवम द्वितीय और तृतीय परिच्छेदके उत्तरभाग में अधिकतर पुराणोंके वचनों का संग्रह है । पाठकों की सुविधा के लिये ऊपर मूल और नीचे उन सब का अर्थ किया है ।

वेदमे किसी व्यक्तिका इतिहास नहीं किन्तु मनुष्योंके लिये विद्या का उपदेश है फिरभी सायण,महीधर उवटादि भाष्यकारों ने वेद का इतिहास परक भी अर्थ किया है, उनके किये अर्थ के अनुसार यजुर्वेद अध्याय १३ । मन्त्र ३० । से ३१ । ३२ का कूर्म अर्थात कच्छप वंश परक अर्थ है शतपथ काण्ड ७ । अ. ५ । प्र. ४ । यजु. के तीनों मन्त्र हैं ।

उवट तथा महीधर का अर्थ यजुर्वेद भाष्य में है । वहां यज्ञ प्रकरण होनेसे कूर्मका अर्थ यजमान आदि होता है कच्छप नहीं । अथर्व, काण्ड २० । सू. १२७ । मं. १ में जो कौरम शब्द आया है वह वर्ण योग्यता परक है उसमें यही उपदेश है कि जो दान शीलादि गुणों वाला हो वही क्षत्रिय राजा कौरम (कुरम) कहाता है । ऐसे से चला हुवा वंश कूर्म वा कुरम कहा जायगा अन्यथा नामधारी ।

स्वायम्भुव मनूत्पन्न कूर्म ऋषि अर्थात् कश्यप कूर्मका उत्पत्तिकाल त्रेता और द्वापर की सन्धि है, सूर्य, चन्द्र, नाग और अग्नि वंशीय कूर्म क्षत्रियों की उत्पत्तिका काल सातवां वैवस्वतत मन्वन्तर है इस विषय के प्रमाण इसी ग्रन्थ के उत्तर भाग में है । गृत्समद के पुत्र कूर्म ऋषि वैवस्वतमनु में हुए हैं । गृत्समद के वंशका वर्णन महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ३० तीस में है ।

जो विषय सर्वतन्त्र सिद्धान्त से निर्णय होकर माने हुए हैं वे तो सभीको मान्यही है और जो विषय विद्वानों में अभी विवादास्पद है उसको हमने विचार कोटि में रक्खा है । कूर्मवंश क्षत्रिय है और यह सृष्टयारम्भ से चला आरहा है, इस विषयका निरूपण इस ग्रन्थ में है । वेद, वेदांग, उपांग स्मृति, सूत्र, और पुराण वचनों में उक्तविषय की पुष्टि इस में की गई है । और प्रमाणवचनों का अर्थ मूल और प्रकरणानुसारी किया गया है ।

कूर्म ऋषि का सिद्धांत वही है जो वेदों का सिद्धांत है । ऋग्वेद मण्डल (२) सूक्त २७ । २८ । २९ के आप मन्त्रद्रष्टा हुए हैं, उन सूक्तों में राजा कैसा हो राजधर्म, विद्याध्ययन और विद्वानों की संगति इत्यादि का उपदेश हैं ।

॥ ॐ शिवं शिवकर्मास्तु ॥

विनीत:—ग्रन्थकर्ता

ओ३म्

कूर्मसिद्धान्त विमर्श नामक पुस्तक श्रीमान् श्रेष्ठि रामनाथजी के सत्प्रयत्नों का फल है। इसमें महान् वेदज्ञ श्रीमान् पं. लक्ष्मीशंकरजी मिश्रार्य कोठी निवासी का सत्सहयोग भी लगा है जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। इसके पढने से कूर्मकुल के क्षत्रिय होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। पुस्तक का तृतीय और चतुर्थ परिच्छेद छप रहा है। वह भी प्रकाशित हो जायेगा। इसके मुद्रण कराने में श्रीमान् पं० शिवसहायजी शुक्ल चारमहल निवासी ने अत्यन्त तत्परता दिखलाई है अतः वे धन्यवादार्ह हैं। यह पुस्तक कूर्म शब्द का कोष है और सबके पढने और पुस्तकालयों में स्थान देने योग्य है। यथाशक्य आर्यसिद्धान्त की रक्षा की गई है और वेदार्थ तथा अन्य स्थलों पर महर्षि दयानन्दजी का मत बडे ही आदर से उद्धृत किया गया है। मैं आशा करता हूं, जनता इसे क्रय करने और अपने यहां स्थान देने में संकोच न करेगी।

संशोधक— ऋभुदेव शर्मा 'वेद-साहित्यरत्न'

स. 'शिव' सुभाषनगर हैदराबाद द.

कूर्म सिद्धान्त निदर्श प्रथम द्वितीय परिच्छेद की

विषय-सूची

ओ३म्

॥ ब्रह्मणे नमः ॥

॥ अथ कूर्म्मसिद्धान्तविमर्शः ॥

॥ तत्र प्रथमः परिच्छेदः ॥

१ चराऽचराधिपायाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ।
हृद्यन्तः शुद्ध बोधाय नमोऽस्तु कूर्मब्रह्मणे ॥१॥

२ य ईक्षातः सृष्टिं विरचयति सर्वस्य जगतो—
महाकूर्मो लोकाऽवनिकर इनश्च क्रतुमयः ॥
य ईशानः सर्वाधिपति रहितानामपि हितो.
नमस्तस्मै कस्मै चिदपि जगदीशाय सततम् ॥२॥

३ सर्वात्मा कूर्म्मब्रह्मायः स्वान्ते यस्य विराजते ।
स एव च सुखी लोके मनस्तस्य प्रसीदति ॥३॥

---

(१) चराचर अर्थात् जङ्गम और स्थावर के स्वामी, सृष्ट्युत्पत्ति, स्थिति, प्रलय कारी और हृदय में शुद्धज्ञान देने वाले कूर्म ब्रह्म देव को नमस्कार हो ॥१॥

(२). जो ईक्षण पूर्वक सृष्टि रचता, जो सब जगत् का प्रभु है, जो पृथिव्यादि का रचयिता, प्रकाश स्वरूप और पूज्यतम है जो दीनों का रक्षक एवं सुख स्वरूप जगदीश महाकूर्मदेव ब्रह्म को सदैव नमस्कार हो ॥२॥

(३) सब का आत्मा कूर्म ब्रह्म जिस के मन में विराजमान है संसार में सदा वही सुखी और प्रसन्न रहता है ॥३॥

॥ इति कूर्मसंज्ञकस्येश्वरस्य स्तुतिः ॥

(वस्तुओं के नाम कर्म और उनके परस्पर सम्बन्ध में प्रमाण)

४ सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थांश्च निर्ममे ॥
मनु० । अ० १ । श्लो० २१ ॥

वेद में इन्द्र का विशेषण ॥
'तुवि कूर्मिन्' इन्नन्त शब्द ॥

५ पूर्वीश्चिद्धित्वे तुविकूर्म्मिन्नाश सो हवन्त इन्द्रोतयः
तिरश्चिदर्यः सव नावसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम्
ऋ० मण्डल ८ सू ५५ अ०६ अध्या० ४व० ५० मं१२

पदपाठः । पूर्वीः । चित् । हि । त्वे इति । तुवि । कूर्म्मिन् । आशसः । हवन्ते । इन्द्र । ऊतयः । तिरः चित् । अर्थः । सवनाः । आ । वसो इति । गहि । शविष्ठ । श्रुधि । मे हवम् ॥ १२ ॥

(४) संसार में सभी पदार्थों के नाम और उन के काम तथा परस्पर के सम्बन्ध वेदों के द्वारा ही 'आदौ' अर्थात् आरम्भ सृष्टि में ईश्वर ने निर्म्माण किये ॥२१॥

(५) हे तुवि कूर्मिन् बहु कर्मन्निन्द्र ते त्वयि पूर्वी चिद्धीति पूरणौ बहूनि आशसः आशंसनानि स्थितानि तथा ऊतयो रक्षाश्च त्वयि अवस्थिता, लब्धुं हवन्ते आह्वयन्ति स्तोतारोऽन्ये अतोऽर्येरः सवन सवनानि तिरश्चि तिरस्कृत्य अरीन् वा तिरस्कृत्यास्मत् सवनान्यभिलक्ष्य हे वसो वासकेन्द्र आगह्यागच्छ अतो हे शविष्ठाति शयेन बलवन् ! मे हवं श्रुधि शृणु ॥१२॥

(भावार्थः) हे बहु कर्मा इन्द्र राजन् ! शत्रुओं से अपनी रक्षार्थ हम आप का आह्वान करते हैं ॥१२॥ इस मन्त्र में तुवि कूर्मिन् यह शब्द क्षत्रियार्थक इन्द्र शब्द का विशेषण है ॥

६ वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यथा वज्रिवः । परियास्यंहो मघाव धृष्णो दयसे विसूरीन् ॥
ऋ० मण्ड० ६ सू ३७ (अष्ट० ३ अ० ७) मं.४
(वेद में इकारान्त कूर्मि शब्द)

७ आत्वारथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुवि कूर्मिमृषीसहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥
ऋ० मण्ड० ८ । सू ६८ । मं. १ ॥

(६) वरिष्ठ उरुतमः तुवि कूर्मितमः अतिशयेन बहुविधकर्मा इन्द्रः मघोनां मघवतां हविर्लक्षणधनोपेतानां मध्ये अस्य यजमानस्य दक्षिणां यज्ञे दातव्याम् इयर्ति प्रेरयति" ॥ इति सायण भाष्यम् ॥

(अर्थः) अतिशय बहुत प्रकार के कर्म करने वाला इन्द्र तुवि कूर्मितम कहाता है । ऐसा इन्द्र धनवानों के बीच में यजमान को यज्ञ में दक्षिणा देने के लिये प्रेरणा करता है ॥

इस पर ऋषिवर दयानन्द कृतभाष्य यह कि "अतिशयेनबहुकर्ता वरिष्ठ इन्द्रः" अर्थात् अतिशय से बहुत क्रियावान श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव वाला इन्द्र कहाता है । दोनों ही भाष्यकार तुविकूर्मितमः पद को इन्द्र का विशेषण मानते है ॥

"स एव राजा भवितु मर्हति । यो विदुषां धार्मिकाणां चोपरि दयां करोति दुर्व्यसनानि जहाति पुरुषार्थी भूत्वा चार चक्षुः सन् प्रजा पालने यत्नवान भवति" यह संस्कृत भावार्थ ऋषि द० न० कृत है ॥

— (७) आत्वा॰ । रथम् । यथा । ऊतये सुम्नाय । वर्तयामसि । तुविऽकूर्मिम् । ऋषी सहम् । इन्द्र । शविष्ठ । सत्पते ॥१॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् आवर्तयामसि आवर्तयामः । किमर्थम् । ऊत्तये स्माकं रक्षणाय सुम्नाय सुखायच । किमिवरथं यथा ऊतये सुखायच । आवर्तयन्ति तद्वत् कीदृशं त्वां तुवि कूर्मिम् बहुकर्माणम् ऋतीषहम हिंसकाना मभि भवितारं हे इन्द्र शविष्ठाति शयेन बलवन् हे सत्पते सतां पालक स्वामिति समन्वयः" ॥ इति सा॰भा॰

८ तम्पृच्छन्ती वज्र हस्तं रथेष्ठामिन्द्रम् । वेपीवक्करी. यस्य नूः गीः । तुवि ग्रामं तुवि कूर्मिं रभोदां,गातु मीषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

(अ० कां. २० सू० ३६ मं. ५)

पद पाठः । तम् । पृच्छन्ती । वज्र हस्तम् । रथे स्थाम् । इन्द्रम् । वेपी । वक्करी । यस्य । नु । गीः । तुविग्रामम् । तुविकूर्मिम् । रभःऽदाम् । गातुम् । ईषे । नक्षते । तुम्रम् । अच्छ ॥ ५ ॥

९ सुपर्णः पार्जन्यऽतिर्वाहसो दर्विदा ते । वायवे वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलजऽआन्तरिक्षः प्लवोमद् गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावा पृथिवी यः कूर्मः ॥ य० अ० २४ । मं. ३४

(७भाषार्थः) हे धर्मात्माओं के रक्षक ! अतिशय से बलवन इन्द्र हमारा युद्धादि समय आप रक्षा कीजिये क्योंकि आप ही "तुवि कूर्मिम" * बहुत वीर कर्मा दुष्टों के बल को नाश करने में समर्थ हैं ॥

(८) यस्य स्तोतुर्यजमानस्य वेपी । वेप इति कर्म नाम । यागादि लक्षण वती वक्करी गुणानां प्रवचन शीला गीः वाक् वज्र हस्तम वज्रं हस्ते धारयन्तं रथे ष्ठाम रथे अवस्थितं तं प्रसिद्धम् इन्द्रम्पृच्छन्ती, प्रश्न कुर्व्वन्ती । अभि गच्छति । स्तौति वेति शेषः । तुविग्राम बहुनां ग्राहकं तुवि कूर्मिम् बहु कर्माणम रभोदाम् बलस्य दातारम् उक्तलक्षणम् इन्द्रं स यजमानो गातुं सुखम् इषे इच्छति । नु इति पूरणः किञ्च, तुम्रम् अभिगन्तारं स्वाययितारं वा शत्रुम अच्छ आभिमुख्येन नक्षते गच्छति" ॥ इति सा० भा० ॥ रथ में बैठा इन्द्र वही है जो बहुतों को पकडने वाला, बलदाता, तुवि:कूर्मिम्= बहु कर्मा और शत्रु से युद्ध में सामना करता है इन्द्र के ये लक्षण हैं ॥

(९) सुपर्णः गरुत्मान् पार्जन्यः अतिः आडी वाहसः दर्विदा काष्ठकुट्टः तेत्रयः पक्षिविशेषाः वायवे । बृहस्पतये वाचस्पतये वाचो वाण्याः पतये इति

---

* सङ्ग्रामे नानाविध कर्मणा कर्ता बहुकर्मा इन्द्र इति" तुविकूर्मिन् का अर्थ सङ्ग्राम में अनेक प्रकार के कर्मों का कर्ता= बहुकर्मा ऐसा इन्द्र अर्थात् राजा ।

बृहस्पति विशेषणम् । ईदशाय बृहस्पतये पैङ्गः राजः पक्षिविशेषः । अथ षोडशेऽवकाशे, अलजः पक्षिविशेषः, अन्तरिक्षः अन्तरिक्षदेवता । प्लवः जलपक्षी मद्गुः कारण्डवः मत्स्यः ते नदीपतये कूर्मः कच्छपः द्यावा पृथिवीयः द्यावा पृथिवी दैवतः ॥२४॥ (इति सा० भा०)

इस मन्त्र में सायण एवम् उवट और महीधरने कूर्म शब्द का अर्थ कच्छप जल जन्तु किया है । सायण (शं० प० कां० ७। अ० ५। प्रपा०४) भाष्य करते हैं कि "द्यावा पृथिवी शुनासीरेत्यादि=सूत्रेण देवतार्थे यत् प्रत्ययान्तः।कूर्मस्याधस्तनोपारितनयोः कपालयोर्द्यावा पृथिवीरूपस्योक्तत्वात्" कूर्मो द्यावा पृथिव्यः ॥

कूर्म का उपरि कपाल द्युलोक और नीचे का पृथिवी लोक यह सायण कृत अर्थ है। भले ही यह अर्थ कूर्म के महत्व का द्योतक हो परन्तु शत-पथ कारका यह इङ्गित और चेष्टित अर्थ कदापि नहीं वहां तो यज्ञ प्रकरण के साथ खगोल और भूगोल परक अर्थ है। जैसे "द्यावा पृथिव्यौ हि कूर्मः" ॥ श० कां० ७। अध्या० ५। प्रपा०४। ब्रा०१०। अर्थात् कूर्म का अर्थ द्युलोक और पृथिवी लोक है। शतपथ के इस अर्थ की पुष्टि यजुर्वेद अध्याय २४ मन्त्र ३४ से होती है जो ऊपर लिखा है ॥ शतपथ के इस प्रकरण में यह कच्छप अर्थ अग्राह्य है हां प्राणिवर्ग पश्वादि के साथ रहे सायणादिने यहां जो पृथिवी का देवता कूर्म कच्छप को लिखा और माना वह निरुक्त से भी विरुद्ध है। निरुक्त में तिस्र एव देवताः । अग्निः पृथिवी स्थानो वायुर्वेन्द्रो ऽन्तरिक्ष स्थानः सूर्यो द्युस्थानो भवति ॥ " कहा है । अर्थात् पृथिवी का देवता अग्नि है, कच्छप नहीं फिर यहां कच्छप जलजन्तु का पृथिवी देवता अर्थ कैसे सङ्गत हो सकता है ? अस्तु ॥

यज्ञ ईश्वराज्ञा परिपालनार्थ है । यज्ञ के दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही फल वेदादिसत्य शास्त्रों में कहे गये हैं। पृथिवी लोक और द्युलोक का सुधार यज्ञद्वारा ही हो सकता है । वेद में स्पष्ट उपदेश है "घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्य्येथाम्" ॥ य०। अ०५। म०२८॥ घृतादि पदार्थों से कूर्म अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक को यज्ञ द्वारा पूरण करना चाहिये ॥

वेद में कौरम शब्द

१० इदं जनाम उपश्रुत नराशंसस्तविष्यते । षष्टिंसहस्रा नवतिं च कौरम ! रुशमेषु दद्महे ॥ १ ॥
अ० कां. २० सू० १२७ मं० १ ॥

(वेद मे इन्द्र शब्द)

११ असौ वा आदित्य इन्द्रः ॥ एष प्रजापतिः ।
कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहि० । अष्टक५- प्र.७। अ.१

—:(श्री० प० क्षेमकरणदास त्रिवेदकृतार्थं):—

(१०) हे मनुष्यो ! यह आदर से सुनो (कि) मनुष्यों में प्रशंसा वाला पुरुष बड़ाई किया जावेगा (कौरम) कौरम का अर्थ है पृथिवी पर रमण करने वाले राजन् (षष्टि सहस्राः) साठ सहस्र (च) और (नवतिम्) नब्बे (अर्थात अनेक दानों को) (रुशमेषु) हिंसकों के फेंकने वाले वीरों के बीच (आदद्महे) हम पाते हैं 'कौरम' शब्द की सिद्धि यह कि (कौरम) कौ + रमु क्रीडायाम् अच् अलुक् समासः । हे कौ पृथिव्यां रमणशील राजन् ! हे पृथिवी पर रमण शील राजन ! ॥ यहां तक उक्त भाष्यकार का किया अर्थ है ।

पूर्व मन्त्रों में 'कूर्मिन्' 'कूर्मिम्' दोनों शब्द इंद्र विशेषणके साथ क्षत्रियार्थ द्योतक हैं और 'कूर्म' य.अ. २४। मं. ३४ में यह अदन्त द्यावा पृथिवी अर्थ वाला आया है। और अ० का. २० सू. १२७ मन्त्र १ में जो सप्तमी वनान्त 'कौरम' शब्द आया है वह स्वयं विशेष्य रूप क्षत्रिय राजवाचक है।— जो व्यक्ति अपने गुण कर्म स्वभाव से स्वयं पात्र कुपात्र को विचार के साथ दान देता और प्रजाकी रक्षा करता हो उसका वैदिक नाम कौरम होगा और लोक में ङि विभक्तिका लुक्हो, समास करने पर 'कुरम' होगा. ऐसे गुण कर्म स्वभाव वाला वंश कुरम वंश के नाम से कहाता है.

(११) यह आदित्य (सूर्य) इन्द्र है ॥ यह आदित्य प्रजापति है ॥११॥

-८-१० गृत्स मदः । इन्द्रः । अ० । कां. २० सू. ५७ में
मन्त्र द्रष्टा ऋषि गृत्समद हैं

१२ "आदित्यात् सामवेदम्०" गो. पू. भा. प्र. १ ॥

१३ इन्द्रो अङ्ग महद् भय म भीषदपचुच्यवत् । सहि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८ ॥

१४ इन्द्रश्च मृल याति नो जनः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥

१५ इन्द्र आशाभ्य स्परि सर्वाभ्यो अभयं करत । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१०॥
अ० कां० २० सू० ५७ । मं० ८ । ९ । १० ॥

वेद में कूर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले इन्द्र का असाधारण माहात्म्य ॥ जैसे-

१६ यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान्-
क्रतुना पर्यभूषत । यस्य शुष्माद् रोदसी-

(१२) आदित्य (सूर्य) नामक ऋषि से परमात्मा ने सामवेद का प्रकाश किया है ॥अ. कां. २० सू ५७ मं. ८-१० तक गृत्समद मन्त्र द्रष्टा ऋषि और इन्द्र देवता है ॥ ११ ॥

(१३) का अर्थ — राजा दृढ स्वभाव और सावधान रहकर दुष्टों से प्रजा की रक्षा करें ॥ १३ ॥

(१४) का अर्थ मनुष्यों को योग्य है कि धर्मात्मा राजा के प्रबन्ध में रहकर पापों से बचकर सुख भोगें ॥ १४ ॥

(१५) राजा अपने न्याय युक्त प्रबन्ध से विघ्नों को हटा कर प्रजा की उन्नति की गहरी इच्छाओं को पूरा करे.

(१६) "विद्या और ऐश्वर्य सम्पन्न (इन्द्रः) राजा दयालु देवों और

अभ्यसेतां नृम्णस्य मन्हा स जनास इन्द्रः ॥

अथर्व० काण्ड २० सू० ३४ मं० १ ॥

१७ यः पृथिवीं व्यथमाना मदृहद्यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्। यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

१८ यो हत्वा हिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजपधा वलस्य । यो अश्मनो रन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

१९ येनेमा विश्वाच्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः। श्वघ्नीव यो जिगवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जना स इन्द्रः ॥४॥

२० यं स्मा पृच्छन्तिकुहसेति घोरमुते माहुर्नैषो अस्तीत्यैनम्।

इतर जनों को अपने असाधारण कर्म से स्वाधीन कर लेता है। इन्द्र के बलसे द्युलोकस्थ पृथिवीलोकस्थ प्राणी भय युक्त रहते है ॥१६॥

(१७) हे मनुष्यो जो राजा अपनी प्रजा की रक्षार्थ चलती हुई पृथिवी को (राजमार्ग) सड़कादि बनाकर दृढ़ करता है जिसने पहाड़ों को काटकर स्थापित किया हो, तथा पर्वतीय मार्ग सुगम कर दिया हो, जिसने यज्ञ द्वारा अन्तरिक्ष को शुद्ध किया हो वह इन्द्र है ईश्वर पक्ष में इन्द्र का अर्थ ईश्वर है ॥१७॥

(१८) जो सङ्ग्राम में शत्रुओं को भगा देता है वह इन्द्र है ॥१८॥

(१९) जो दस्युओं को यथायोग्य दण्ड देने में समर्थ हो, जो बड़े २ डाकुओं और शत्रुओं को जीतने वाला हो, जो समृद्धशाली हो, वह इन्द्र कहाता है ॥१९॥

(२०) इन्द्र बड़ा बलवान होता है, इन्द्र का नाम सुनते ही शत्रु दल

सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

२१ यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणोनाधमानस्य कीरेः। युक्तग्राव्णो यो विता सुशिप्रः सुत सोमस्य स-जनास इन्द्रः ॥६॥❀

२२ यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः। यः सूर्यं उषसं जजाघान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

काँप उठता है, इन्द्र में सब मनुष्यों को श्रद्धा करनी चाहिये अन्यत्र भी वेद में उपदेश है कि "इन्द्रो यो दस्यूनधराऽ नवाकरोत् ॥" इन्द्र वही है जो दस्युओं को नीचे गिरा देता है ॥१८॥

(२१) जो समृद्धशाली राजा आदि के शत्रु कोअपने बलसे हटा देता हो, जो निर्धनों को अभीष्ट धन का प्रेरक हो, जो यज्ञिय सोमादि पदार्थों के सम्पादन करने वाले यजमानों का रक्षक हो, हे मनुष्यो! ऐसा महानुभाव इन्द्र कहाताहै, अर्थात् धनी निर्धन स्तोता और याजक के अभिमत फल देने में समर्थ इन्द्र ही होता है ॥६॥

❀ (ऋग्वेद में तुविकूर्मि वाला अन्यमन्त्र)

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरु पुरुहूतः महान् महीभिः शचीभिः ॥१॥
स स्तोम्यः सहव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः। एकश्चित् सन्नभिभूतिः ॥२॥
तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः। इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥३॥
प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु। सासह्वांसं युधा मित्रान् ॥४॥
सनः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अतिद्विषः ॥५॥
सत्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च,। अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥६॥

ऋ० मण्ड० ८। सू. १६। मं. ७-१२

(२२) जो घोड़े गायें रथ प्रकाश और वृष्टि निमित्तक अर्थ देने में

२३ यं कन्दसी संयती विह्वयेते परेवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथ मातस्थिवांसा नानाहवेते स जनास
इन्द्रः ॥८॥

२४ यस्मान् न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे
हवन्ते । यो विश्वस्य प्रति मानं बभूव यो अच्युतच्युत
स जनास इन्द्रः ॥९॥

२५ यः शश्वतो महेनो दधाना न मन्यमानां छर्वाजघान ।
यः शर्धते नानु ददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स
जनास इन्द्रः ॥१०॥

समर्थ हो, जिसके अनुशासन में अर्थियों के देने के लिये मन्त्र के उत्तरार्द्ध में इन्द्र शब्द ईश्वरार्थ का वाचक है जो इन्द्र का इनः परमात्मा है उसने जगत् के अन्धकार को दूर करने और नाना विध पदार्थों की उत्पत्ति के लिये सूर्य्य को रचा है ॥

जिसने प्रभात वेला को उत्पन्न किया और जो जलों का देने वाला है. हे मनुष्यो ! वह इन्द्र परमेश्वर है उसीके दिये हुए पदार्थों से राजा भी इन्द्र पदवी को पाता है ॥७॥

(२३) जय पराजयापेक्षी सेनाओं के दोनों दलों में जिसकी अपेक्षा होती है अर्थात् दोनों दल जिसकी सहायता चाहते हों हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है ॥८॥

(२४) जिस बलदाता इन्द्र की सहायता बिना प्रबल और दुर्बल सभी जयार्थी शत्रुओं के पराभव में समर्थ नहीं होते और युद्ध समय अपनी रक्षा के लिये जिसको बुलाते हैं जो विश्व का प्रतिनिधि हो, जो अपराधियों को दण्ड सुनाकर कारावास से छुड़ा देता हो हे मनुष्यो ! वही इन्द्र कहाता है ॥९॥

(२५) जो महापातकियों को सबलसे रुलाने वाला हो, जो शासन

२६ यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्। ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

२७ यः शम्बरं पर्यतरत् कशीभिर्यो चारु कास्नापिबत् सुतस्य। अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्च्छत् स जनास इन्द्रः ॥१२॥

२८ यः सप्तरश्मिर्वृषस्तु विष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्। यौरौ हिणमस्फुरद् वज्रमाहुर्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१३॥

न मानने वालों को दण्ड देता. नैरपेक्ष्य से शत्रुओं में बल और उत्साह करने वालों का सहायक न, हो जो दस्युओंका हन्ता हो हे मनुष्यो वही इन्द्र कहाता है ॥१०॥

(२६) जिसके भयसे असुर राक्षसादि काँप रहे हों, जो परहानि करने वाले दस्युओं को गुप्त रीतिसे पता लगाकर नाश करने वाला हो, जो यज्ञ द्वारा बादलों के वर्षाने में समर्थ हो, जो दैत्य दानवों को नाश कर धर्मात्माओं का रक्षक हो, हे मनुष्यों! वही इन्द्र कहाता है ॥११॥

(२७) जो तीव्र वज्रादि आयुधों अलावा अपने तेजसे दुष्टों, पापियों को नाश करने में समर्थ हो अथवा पर्वत, नदी, समुद्रादि को साधनों द्वारा उल्लंघन कर सकता हो, जो सोमपान करता हो जिसके न होनेपर यज्ञों की रक्षा कदापि नहीं हो सकती, हे मनुष्यो! वही इन्द्र कहाता है ॥१२॥

(२८) सूर्यकी किरणों के प्रकाश के समान तेजस्वी हो, जो मनुष्यों की कामनाओं को पूरण कर सकता हो, जो बलवान हो और जो प्रजाजन की रक्षार्थ बहने वाले नदों का निर्माण करने वाला हो, जो हाथ में वज्र लिये पापियों के संहार करने में समर्थ हो, हे मनुष्यो! वह इन्द्र कहाता है ॥१४॥

२९ द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता
भयन्ते । यः सोमपा निचितो वज्रबाहु यो वज्रहस्तः
स जनास इन्द्रः ॥१४॥

३० यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमान
मूती । यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः
स जना स इन्द्रः ॥१५॥

३१ जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः
परस्य स्तविष्य माणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स
जना स इन्द्रः ॥ १६ ॥

---

२९. जिसके स्वाधीन द्यावा पृथिवी हों, जो पर्वतों को भी छिन्न भिन्न करने में समर्थ हो, जिसका शरीर सोमपानादि से दृढाङ्ग हो, जिसके बाहू वज्र समान सारभूत हो, अथवा जिसके हाथ में वज्र हो हे मनुष्यो ! वही इन्द्र कहाता है ॥१९॥

३० जो श्रेष्ठ धर्मवालों तथा जो धर्मानुकूल मेवाधर्मियों एवम् स्तोताओं का रक्षक हो, जिसकी स्तुति से मनुष्य उन्नति को प्राप्त हो, जिसका दिया हुआ अन्नादि पदार्थ वृद्धिका हेतु हो हे मनुष्यो ! वही इन्द्र कहाता है ॥१५॥

३१ प्रादुर्भूत (प्रकट हुआ) इन्द्र द्यावा पृथिवी के बीच प्रकाशित है परन्तु मातृभूता पृथिवी और पितृ स्थानीय द्युलोक को वह नहीं जानता है क्योंकि उसकी उत्पत्ति में द्युलोक और पृथिवी लोक कारण नहीं है। न जानने का यहाँ इतना ही अर्थ है, स्तुति करनेपर जो देवों के कामों और अर्थों को पूरण करता हो, हे मनुष्यो! वही इन्द्र कहाता है ॥१६॥

३२ यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा । यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एक वीरः स जनास इन्द्रः ॥१७॥

३३ यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः । वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथ मा वदेम ॥१८॥

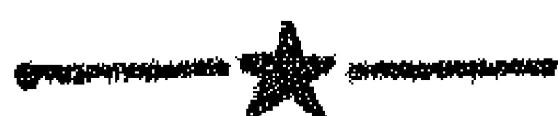
॥ अथर्ववेद । कां ।२०। सू० २४ । मं. १–१८ ॥

---

(३२) जो सोमवल्ली के रस को पीने की कामना करता हुआ अश्वों का उपयोग करता हो, जिस से प्राणी मात्र डरते हों, और जो दुष्टों के नाश करने में निपुण हो, जो असाधारण कार्यों में एक वीर हो हे मनुष्यो! वही इन्द्र कहाता है ॥१७॥

(३३) जो सोमाभिषव और पुरोडाशादि यज्ञ सामग्री को यजमान के लिये देने में समर्थ हो, जो सत्यवादी, सत्यकारी और सत्यमानी हो हे मनुष्यो! वह सर्व प्रिय और सुवीर इन्द्र कहाता है ॥१८॥

॥ वेदोक्त इन्द्र शब्द का यौगिकार्थ समाप्त हुआ ॥



—:(गोपथ ब्राह्मण):—

देहधारी इन्द्र के विषय में आख्यायिका

—:०:—

३४ देवाश्च हवा असुराश्चाऽस्पर्द्धन्त ते देवा इन्द्र मब्रुवन्निमं यज्ञं न स्तावद् गोपाय यावदसुरैः संयता महा इति ॥ गो. ब्रा. पू. भा. प्र. २ ब्रा. १९ ॥

३५ घोरा वा एषा दिग् दक्षिणा ॥ गो. पू. प्र. २ ब्रा. १९ ॥

३६ इन्द्रोऽसुरान् प्रत्यजयत् ॥ गो. उत्तर. भा. ब्रा. १८ ॥

—:(देवों का पिता प्रजापति और प्रजापति का ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र):—

३७ अथ हैतं प्रजापतिरिन्द्राय ज्येष्ठाय पुत्रायैतत् सवनं निरमिमत (गो. ब्रा. उत्तर भा. प्रपा. ३ ब्रा. २३) सवनं यन्माध्यन्दिनं सवनम्' ॥

(३४) देवता और असुर (दुष्ट प्रकृति वाले मनुष्य) आपस में ईर्ष्या द्वेष करने लगे। देवोंने इन्द्र से कहा कि आप हमारे यज्ञ की रक्षा करें, जबतक हमारा असुरों के साथ युद्ध हो । इन्द्रने स्वीकार कर लिया और यज्ञरक्षक अथर्वा देव प्रजापति सदृश हो यज्ञ की रक्षा में प्रवृत्त हुवा ।

(३५) गोपथ में लिखा है कि यह दक्षिणा 'दिशा अति भयङ्कर है ॥ अतः यज्ञ कुण्ड की दक्षिण दिशा में इन्द्र महाराज ने अपना आसन जमा दिया । आगे लिखा है — देवोंने प्रसन्न होकर इन्द्र को तीन वर दिये जोकि ऐन्द्री होत्रा, । वारुण्या, । और आग्नेयी ये तीनों इन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुवीं । इस प्रकार —

(३६) इन्द्र ने असुर प्रकृति वाले मनुष्यों को जीतकर देवों की रक्षा की थी ॥

(३७) प्रजापति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र को ३६ वर्ष का माध्यन्दिन

३८ "प्रजापतिरुवाच । यजस्व यजस्वेति" ॥ गो. पू. प्र. ५ ब्रा. ११ ॥

३९ प्रजापतिर्वै रुद्रं यज्ञान्निरभजत ॥ गो.उ.प्र.१ब्रा.२पृ.७७॥

४० "प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यकल्पयत" ॥ गो. उ. भा. प्र. १ ब्रा. ७ पृ. ८० ॥

४१ "वैश्वदेवेन प्रजापतिः प्रजा असृजत । ताः सृष्टा अप्रसूता वरुणस्य यवान् जक्षुः । ताः वरुणो वरुण पाशैः प्रत्यबध्नात् । ताः प्रजाः प्रजापतिं पितरं मुपेत्योपावदन् । उपतं यज्ञक्रतुं जानीहि । "

येनेष्ट्वा वरुणमप्रीणात् । स प्रीतो वरुणो वरुणपाशेभ्यः सर्वस्मात् पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्त इति । तत एतं प्रजापतिं यज्ञक्रतुमपश्यत् । वरुणा प्रघासं तमाहरत् ।

सवन नामक (ब्रह्मचर्य) धारण कराया था ॥३७॥

(३८) प्रजापतिने पुरुष नारायण (ब्रह्मा) से कहा कि यज्ञ कीजिये यज्ञ की० । यह भी कहा कि – यज्ञ में ब्रह्मा चतुर्वेदवित् हो । अविद्वान् नहो (गो० पू० प्र०५ ब्रा०११ पृ ६९) उत्तर में नाराय० ने कहा कि यज्ञ में वसु रुद्र और आदित्य ही बैठेंगे ।

(३९) एक समय प्रजापति ने रुद्र अर्थात् मध्यम विद्वान् को यज्ञ से भागरहित किया ॥

(४०) प्रजापति को यज्ञ में देवों के लिये भाग देने का अधिकार था ।

(४१) एक समय प्रजापति ने वैश्वदेव नामक यज्ञ करके प्रजाओं को उत्पन्न किया उत्पन्न हुई उन प्रजाओंने छिपकर वरुण के यवों को खालिया अतः वरुणने पाशों से उन्हें बान्ध लिया । प्रजायें पिता प्रजापति से बोलीं । उस यज्ञ को हे पिता आप जानते हो.

तेनाऽयजत । तेनेष्ट्वा वरुणमप्रीणात । स प्रीतो वरुणो वरुणपाशेभ्यः सर्वस्मात् पाप्मनः प्रजाः प्रामुञ्चत । प्रहवा एतस्य प्रजा वरुणपाशेभ्यः सर्वस्माच्च पाप्मनो मुच्यन्ते य एवं वेद"॥ गो.उ.भा.प्र.१ ब्रा.२१॥

—:(देहधारी इन्द्र):—

४२ इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥अथर्व०काण्ड ११ सूक्त ५ । मं. १९ ॥

४३ इन्द्रो ह ब्रह्मणः पुत्रः कर्मणः क्षत्रियोऽभवत् ॥ म. भा. शा. पर्वान्तर्गत राजधर्म. अ. २२ । श्लो. ११ ॥

जिस को करके वरुण देव प्रसन्न और तृप्त होते हैं। प्रसन्न हुआ वरुण अपने पाशों (बन्धनों) से प्रजाओं को मुक्त कर देता है। प्रजापति ने पहिले ही से प्रजापति यज्ञ को जाना था। उस का नाम वरुण प्रघास था। चातुर्मास्य यज्ञों में यह एक यज्ञ है। यह यज्ञ आषाढी पौर्णमासी को प्रति वर्ष किया जाता है। प्रजापति ने वरुण प्रघास नामक यज्ञ किया। यज्ञ से वरुण तृप्त और प्रसन्न होकर जलवर्षा या कारावास से वरुणने सब प्रजाओं को छोड़ दिया। तात्पर्य - वर्षा विना. अन्न फल मूल कन्द इत्यादि की उत्पत्ति नहीं होसकती, और वर्षा ठीक समय पर यज्ञानुष्ठान से ही होती है। और अन्नादि के बिना प्रजा अति पीडित होती है। अनावृष्टि से प्रजा में हा हा कार मच जाता है। इसलिये मेघमण्डल के सुधार के लिये यज्ञ करना अत्यावश्यक है। निरुक्त में इन्द्र को अन्तरिक्ष का देवता कहा है। अलङ्कार पक्षमें इन्द्र का अर्थ सूर्य है। दूसरा अर्थ राजाओं में महाराजाधिराज इन्द्र कहाता है। कृष्यर्थं यज्ञ साधनौ।

(४२) इन्द्र ने ब्रह्मचर्य धारण कर देवों को दिव्य सुख दिया। इन्द्र वही है जो ऐश्वर्यवान् और विद्वान् है।

(४३) ब्रह्मा का पुत्र इन्द्र कर्म से क्षत्रिय हुआ था।

४४ स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ मु. खं. १ मं. १ ॥

४५ तद्धै तद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच । प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ॥ छा० । प्रपा० ८ । खं० १५ । मं० १ ॥

४६ सोमपृष्ठाय वेधसे ॥ इन्द्रो वैधाः । तदैन्द्रं रूपम् । तेनेन्द्रं प्रीणाति ॥ गो. उत्तर. भा. प्र. २ ब्रा. २० ॥

४७ विश्वरूपं त्वाष्ट्रमिन्द्रोऽहम् । स त्वष्टा हतपुत्रोऽभिचरणीयमपेन्द्रं सोममाहरत् ॥ गो. ब्रा. उत्त. भा. प्रपा. ५ ब्रा. ६ ॥

---

(४४) ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या का उपदेश किया था ।

(४५) इस ज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति को कहा प्रजापति ने मनु को और मनु ने प्रजाओं को ॥

पूर्व अथर्व के मन्त्रों में यह उपदेश आया है कि जिसकी बात को अर्थी प्रत्यर्थी दोनों को ही मानना पड़े ऐसा दो के बीच का निर्णेता इन्द्र कहाता है । वेद में सदाचारी क्षत्रिय राजा को इन्द्र यह एक बड़ी पदवी दी गयी है ॥४५॥ इस इन्द्र के ही कूर्मिन् कूर्मि विशेषण वेद मन्त्रों में आये हैं ।

(४६) सोमवल्ली पृष्ठ भाग म जिस के ऐसे ब्रह्माजी को इन्द्र कहते हैं । ब्रह्मा इन्द्र का रूप है । उस को सोमादि से तृप्त करना इन्द्र की तृप्ति है ।

(४७) त्वष्टा हत पुत्र था, उसने इन्द्र के सोम को चोरीसे पान करलिया उसकी स्त्री से उसके इन्द्र पुत्र उत्पन्न हुआ, अश्वी और सरस्वती ने सौत्रामाण यज्ञ में उस त्वष्टा (सूर्य पुत्र) का अभिषेक (राजतिलक) किया "त तां वै स देवानां श्रेष्ठोऽभवत्" ॥ अभिषिक्त वह विद्वानों के बीच में अति श्रेष्ठ हो गया ॥४७॥

४८ तथेन्द्र मभ्यषिञ्चत् । ततो वै स देवानां श्रेष्ठोऽभवत् ॥
४९ इन्द्रो विश्वस्य भूपतिः॥ आश्व. । अ. ८ ॥
५० इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
य. । अ. ३६ । मं. ८ ॥

(४८) इन्द्र सार्व भौम राजा होता है ॥ ५० वेद में इन्द्र शब्द के दोनों अर्थ हैं एक देहधारी क्षत्रिय महाराज इन्द्र, दूसरा सच्चिदानन्द स्वरूप सब का महाराजाधिराज इन्द्र परमेश्वर है।

(इतीन्द्रमाहात्म्यविषयः समाप्तः)



-:(अथ सृष्टि विषयः):-

५१ आसीत् प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुवः पुरा ।
तस्य पुत्र द्वयं जज्ञे अति मानुषचेष्टितम् ॥
वराह पु. अ. ३५ श्लो. ५५ ॥

५२ सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्र्यवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नन्ति ॥
म. भा. विदुरनी. उद्योगपर्व ॥

५३ मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥
मनुस्मृ. । अ. १ । श्लो. १ ॥

५४ भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
अन्तरप्रभावाणाञ्च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥म.अ.१श्लो.२॥

अब इस ब्राह्म महाकल्प के आरम्भक स्वायम्भुव मनु के इतिहास को कहते हैं ।

(५१) इस ब्राह्म कल्प के प्रथम आरम्भ में पहिला स्वायम्भुव मनु राजा हुआ था उसके दो पुत्र मनुष्यों में विचित्र और चेष्टा रहित हुए।५५॥

(५२) विदुरजी बोले कि हे वैचित्र्य वीर्य के पुत्र राजेन्द्र धृतराष्ट्र ! स्वाम्भुव मनु ने १७ मनुष्यों को आकाशमें मुष्टि (मूँठी) मारने वाला कहा है। स्वायम्भुव मनु राजा थे इस विषय में इत्यादि प्रमाण हैं ।

(५३) महर्षि लोग एकान्त में बैठे हुवे मनुजी के पास जाकर उनका आदर सत्कार और प्रणामादि करके यथा न्याययुक्त यह वचन बोले ।

(५४) हे पूजित मनुजी! सब ब्राह्मणादि वर्णों और वर्ण सङ्करों के धर्मों को क्रम पूर्वक यथार्थ रीति से तुम कहने योग्य हो ।

५५ त्वमेकोह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ म. अ. १ श्लो. ३ ॥
५६ आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ म. अ. १ श्लो. ५ ॥
५७ तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा
इदम् । तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपस्तन्महिना
जायतैकम् ॥ ऋ. मण्ड. १० । १२९ । मं. १० ॥
५८ कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसोरेतः प्रथमं यदासीत् ।

(५५) हे समर्थ मनुजी इस सब अचिन्त्य अपौरुषेय परमेश्वर रचित वेद वा जगत् को ठीक २ जानने वाले तुम एक ही हो ।

(५६) "यहाँ प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द प्रमाणोंसे जगत् की कारणावस्था जानने योग्य नहीं यह अप्रज्ञातादि तीन पदों से जताया है तमो भूत शब्द से कार्य प्रकाशादि के अभाव से प्रकृतिरूप अति सूक्ष्म कारण की सूचना की है । 'और 'प्रसुप्त' पद से अभाव वाद को हटाने पूर्वक कारण की विद्यमानता प्रलयदशा में जताई है कि सुषुप्ति दशा के तुल्य सब वस्तु अपने २ कारण में लीन रहते हैं " ॥५॥

(५७) "प्रलय काल में अन्धियारा रहता है, वह सब चिह्नरहित अदृश्य जल सा अन्धियारे से आच्छादित रहता है । जैसे जल वाष्परूप होकर फिर आकाश में अदृश्य अप्रकेत हो जाता है वैसे जगत् भी अव्यक्त भाव में होता है जो जगत् तुच्छ अर्थात् सूक्ष्म अव्यक्त भावापन्न तम से आच्छादित होता है वह एक अन्धकारावृत अवस्था के पश्चात् महातत्व रूप से उत्पन्न होता है अर्थात् प्रकृति से महत्तत्व की उत्पत्ति सबसे प्रथम होती है ॥५७॥

(५८) ' महत्तत्व के पश्चात् अहङ्कार उत्पन्न होता है, उस मन का

सतो बन्धुमसतिनिरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥ ऋ. । मण्ड. १० । १२९ । मं. ४ ॥

(१४ मन्वन्तरों में प्रथम स्वायम्भुव मनु)

५९ प्रथम आद्यः स्वायम्भुवाख्यो ब्रह्मोत्पादितो मनुः स सन्धिकत् कालाधीशो ब्रह्मादिनारम्भात् प्रवृत्तोऽभूत् ततस्तद्भोगकालानन्तरमग्रे क्रमेण स्वारोचिषादयः॥ (इति प्रभा) सि.शि.म.। म. कालमानाध्याये. ।श्लो २१॥

(इदानीमनाद्यनन्तस्य कालस्य प्रवृत्तिमाह)

६० लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानो-
स्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव ।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्ष-
युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥१७॥
सिद्धान्तशि० ग्रहगणिते मध्यमाधिकारे का-
लमानाध्याये पृ० १९॥

बीज जो प्रथमथा विद्वान् लोग बुद्धिसे विचार करके अप्रतीयमान अवस्थामें प्रतीयमान जगतके बान्धने वाले कर्मको जानते हैं अर्थात् प्रकृतिसे जगदुत्पत्ति में पूर्व कल्प कृत कर्म हेतु होते हैं' ॥५८॥

(५९) ब्रह्मोत्पादित पहिला स्वायम्भुव नाम का मनु अपनी सन्धियों समेत ब्राह्मदिन के आरम्भ से प्रवृत्त हुआ ॥स्वायम्भुव मनु के बाद क्रमशः स्वारोचिषादि हैं ॥

(६०) लङ्कानगरी में चैत्रशुक्ल प्रतिपदा तिथि दिन रविवार को सूर्योदय काल में दिन, मास, वर्ष, और युग, की एक समय प्रवृत्ति हुई ॥

'एतदुक्तम्भवति । चन्द्रार्कयोर्मेषादिस्थयोः चैत्रस्य शुक्लपक्षादिः

(इदानीं ब्राह्म दिन माह)

६१ खखाभ्र दन्त सागरै, र्युगाग्नियुग्म भूगुणैः ।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः, कृतादयो युगाङ्घ्रयः ॥२१॥
६२ स्व सन्ध्यका, तदंशके र्निजार्क भाग संमितैः ।
युताश्च तद्युतौ युगं, रदाब्धयोऽयुता हताः ॥२२॥
६३ मनुः क्षमानगैर्युगै, र्युगेन्दिभिश्चतैर्भवेत् ।
दिनं सरोज जन्मनो निशाच तत्प्रमाणिका ॥२३॥
सि. शि. ग्र. ग. मध्यमाधि. कालमानाध्याय (पृ. २३)
६४ सन्धयः स्युर्मनूनां, कृताब्दैःसमा ।

प्रतिपत् । अतो मधोः सितादे दिनानां सौरादि मासानां वर्षाणां युगानां मन्वन्तराणां कल्पस्य च तदैव प्रवृत्तिः ॥"

(६१) ४३२००० संख्या को चार, तीन, दो, और एक से क्रम से गुणने से फल सत्य त्रेता द्वापर और कलियुग का सौ वर्ष मान होता है। प्रत्येक युग का १२ वां भाग आदि अन्त में उस का सन्ध्या और सन्ध्यांश वर्ष होता है अर्थात् युग के आरम्भ में युग का द्वादशांश काल युग सन्ध्या और अन्त में उतनाही युग सन्ध्यांश होता है, इसलिये सन्ध्या और सन्ध्यांशों को जोड़ने से पूरा युग प्रमाण होता है। यों महायुग का मान ४३२०००० होता है। २° ॥ एकहत्तर ७१ महायुगों का एक मनु होता है और चौदह मनुओंका एक ब्राह्म दिन और दिन के तुल्य ही रात्रि होती है ॥२३॥

४३२००० × ४ = १७२८००० = कृत
,, × ३ = १२९६००० = त्रेता
,, × २ = ८६४००० = द्वापर
,, × १ = ४३२००० = कलि

४३२०००० महायोग चारों का

(६४) इन चौदह मनुओं के आदि मध्य और अन्त में सत्य युग के

आदि मध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः ।
स्याद् युगानां सहस्रं दिनं वेधसः ।
सोपि कल्पो ह्युरात्रं तु कल्प द्वयम् ॥२४॥

६५ शतायुः शताऽनन्द एवं प्रादिष्ट-
स्तदायुर्महाकल्प इत्युक्त माद्यैः ।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोहं ।
न वेद्म्यत्र पद्मोद् भवा ये गतास्तान् ॥२५॥

इसी प्रकार सूर्य्य सिद्धान्त में भी है । जैसे

६६ युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तर मिहोच्यते ।
कृतान्त संख्या तस्यान्ते सन्धिःप्रोक्तो जल प्लवः ॥१८॥
(सू० म० श्लो० १८)

६७ स सन्धयस्ते मनवः कल्पेज्ञेयाश्चतुर्दश ।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्च दश स्मृतः ॥१९॥
(सू० सि० म० श्लो० १९)

तुल्य मनु सन्धि अर्थात् १४ मनुओं में पन्द्रह सन्धि होती है इनके सहित १४ मनुओं का प्रमाण एक हजार युग हुआ। यही ब्रह्माका दिन मान है इसी को कल्प भी कहते हैं । इस प्रकार ब्रह्मा का अहोरात्र दो कल्प का होता है ॥

(६५) ब्रह्मा की परमायु उनकी कालकी परिभाषा के अनुसार एक सौवर्ष की है । पूर्वाचार्यों ने इसी परमायु को महा कल्प कहा है ।

भास्कराचार्य कहते हैं कि काल के अनादि और अन्त होने के कारण साम्प्रत में ब्रह्मा की आयु के कितने वर्ष बीते यह मैं नहीं जानता ॥२५॥*

(६६) सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः का अर्थ उस सन्ध्या काल में सम्पूर्ण पृथिवी जल से परिपूर्ण होजाती है ॥१८॥

(६७) का अर्थ स्पष्ट है ॥

---

* इसी लिये सृष्टिओं के कर्म और जगत् प्रवाह से अनादि है ।

६८ इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः ।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥२०॥

६९ परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया ।
आयुषोऽर्द्धमितं तस्य शेषकल्पोयमादिमः ॥२१॥

७० कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः स सन्धयः ।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः ॥२२॥
सू. सि. म. ॥ वैवस्वतमनु के २७ युग बीतगये ॥

७१ अष्टाविंशाद् युगादस्माद् यातमेतत् कृतंयुगम् ।
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत ॥
सू, सि. म. श्लो. २३॥

७२ सूर्यः पितामहो व्यासो वशिष्ठोऽत्रिः पराशरः ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः ॥

---

(६८) पूर्वोक्तरीति से १००० एक हजार चतुर्युगी का जिस के अन्त में सब प्राणियों का नाश होजाता है एक कल्प का एक ब्राह्म दिन होता है दो कल्पका एक ब्राह्म अहोरात्र होता है ॥२०॥

(६९) ब्रह्मा की परम आयु अहो रात्र संख्या से जाननी चाहिये ब्रह्मा की आधी आयु बीतगयी. शेष यह आदिम ब्राह्मकल्प चलरहा है॥२१॥

(७०) इस वर्तमान कल्प के आरम्भ से अपनी सात सन्धियों के साथ छ मनु व्यतीत होगये और वर्तमान सातवें वैवस्वत मनु के २७ युग बीत गये ॥२२॥

(७१) इस वर्तमान २८ वें महा युग के आरम्भ से भी यह वर्तमान सत्य युग बीतगया, इस कृतयुग के अनन्तर अभिमत समय तक जितना गत समय हो उस को मन्वादिकों की संख्या में जोड़ देना चाहिये ॥२३॥

(७२) १. सूर्य २ पितामह (ब्रह्मा) ३ व्यास ४ वसिष्ठ ५ अत्रि

लोमशः पुलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः ।
शौनकोऽष्टादशैवैते ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकाः ॥
सि. शि. गणिताध्याय की भूमिका में ॥

७३ दिव्य त्रि ह तपति स्वयम्भूः ॥
(गो. ब्रा. पूर्व भा. । प्रपाठक २ । ब्रा. ८ ॥)

७४ ततः पृथिव्यां निर्दिष्टांस्तान् समानीय कश्यपः ।
अभ्यषिञ्चन महीपालान् क्षत्रियान् वीर्यसम्मतान् ॥१॥
राजपूत इतिहास पृ. १०८ ॥

—:(अमैथुनी सृष्टि में प्रमाण):—

७५ "मनुष्याश्च ऋषयश्च ये"॥"ततो मनुष्या अजायन्त" यह

---

६ पराशर ७ कश्यप ८ नारद ९ गर्ग १० मरीचि ११ मनु १२ अङ्गिरा १३ लोमश १४ पुलिश १५ च्यवन १६ यवन १७ भृगु १८शौनक ये अठारह ज्योतिःशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य हुये हैं ॥ सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय की भूमिका पृष्ठ ६मे लिखा है कि यह कश्यप का वचन है ॥ सू. सि मध्यमाधिकार श्लोक २३मे है कि "अष्टाविंशाद् युगादस्माद्यातमेतत् कृतं युगम्" २८वें महायुगके आरम्भसे भी यह वर्तमान सत्ययुग बीतगया।इस से सिद्ध है कि सूर्य सिद्धान्त की रचना सतयुग में हुई थी कश्यप आदि भी उस समय थे ॥

७३ प्रसिद्ध है कि स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने दिव्य तीन मात्रा जो ओ३म् की हैं उनका अर्थ जानने के लिये तप किया था ॥

७४ अनन्तर कूर्मकश्यप ने पृथ्वीपर चुनेहुए पराक्रमी वीर क्षत्रिय राजाओं को लाकर अभिषेक किया ॥ कश्यपो वै कूर्मः ॥ इस शतपथ के वचन से कूर्म प्रजापति का नाम कश्यप है ॥

७५ (प्र.)सृष्टि की आदि में एकबार अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे या क्या?(उत्तर) अनेक क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न

यजुर्वेद और उस के ब्राह्मण शतपथ १४ । २ । ३ । ५ में लिखा है (स. प्र. अष्टम समु.)

७६ प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते ॥ यजु० अ० ३१ मं. १९ ॥

७७ सपूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाःप्रजा अजयन् मनूनाम् ॥ ऋ. १।७।६।२ ॥

७८ तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च ॥ (वै. द. अ. ४ । आ० २ । सू. ६) ॥

७९ स यत् कूर्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताऽकरोत् तस्मात् कूर्मः कश्यपो वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप इति ॥ श०प० कां. ७ । अ . ५ । १,प्रा० ४ ।ब्रा०५ ॥

होते थे उन का जन्म सृष्टि के आदि में ईश्वर देता है" (स०प्र०) इस में उपर्युक्त वेद प्रमाण है ॥७५॥

(७६) जड़ और चेतन का स्वामी प्रजापति अर्थात् प्रजापालक परमेश्वर जगत् के बीच में अन्तर्यामी रूपसे व्यापक और अनुत्पन्न नित्य प्राप्त है वही बहुत प्रकार से प्रकृति को कार्य रूप में रचता है ॥

(७७) आदि सनातन सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई कार्य नहीं था तब सृष्टि की आदि में स्वप्रकाश स्वरूप एक ईश्वर ने प्रजाकी उत्पत्तिकी ईक्षणता (विचार) और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक लोकान्तर रचे हैं ॥

(७८) योनिज और अयोनिज भेद से शरीर दो प्रकार के होते हैं ॥

(७९) कूर्म संज्ञक प्रजापति ईश्वर ने प्रजाओं को उत्पन्न किया, जिस लिये उत्पन्न किया इसलिये उसका क्रियात्मक नाम कूर्म प्रजापति हुआ ॥

८० यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः सपुरुषो, लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ (मनु)
ब्रह्म वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे गो. पू. भा. प्र. १ कां १६

८१ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव, विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ मुण्ड . खं. १ मं १ ॥

८२ धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरञ्चिः कमलासनः ।
स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड् विधिः ॥(अ०को. का १ व १ श्लोक १६ ॥

८३ पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ॥
ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिःस्मृता (व. पु.)

शतपथ काण्ड ७ अ. ५ प्र. ४ । ब्रा. १ में कूर्म शब्द के जीव ईश्वर और प्रकृति ये तीन अर्थ किये हैं । "एतद् वैरूपङ्कृत्वा" का अन्वय 'कूर्मरूपङ्कृत्वा' है, और कूर्मङ्कृत्वा' का अर्थ प्रकृति (माद्दा) सहित ईश्वर ब्रह्मा है ॥

(८०) वह जानने न जानने योग्य नित्य उपादान कारण प्रकृति है उस से भिन्न वह व्यापक सृष्टि कर्ता (तद्विसृष्टः) प्रकृति सहित लोक में ब्रह्मा कहाता "एवं रचना शक्तिविशिष्टः सर्गकाले स ब्रह्मा, इत्युच्यते" इति मानवधर्मशास्त्रे गुरुवर्य श्रीभीमसेनशर्म्माणः ॥

(८१) देवों में पहिला देव ब्रह्मा अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुवे । उन के ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा थे । 'विश्वस्य कर्ता' का अर्थ-ब्रह्मा ब्राह्म कल्प के आरम्भ में सब वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी कामों को करते हैं इस से वे विश्व के कर्ता हैं ॥

८३ कश्यप देहधारी पुरुष था और कश्यपकी प्रिया पत्नी अदिति थी कश्यप-ब्रह्मा अंशथा और अदिति पृथिवी का अंश थी ॥

८४ कश्यपः कश्यपतुङ्गेऽभ्यतपत् ॥ गो. ब्रा पू. प्र. २ ब्रा. ॥

(कश्यप का अर्थ वेद में वैद्य.ज्ञानी तथा उत्तम विद्वान् है) जैसे—

८५ अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चंविवृहामसि ॥ अथर्व. कां. २० अनु. ८ सू. ९६ । मं. २३ ॥

८६ "वृषा वै कूर्मो योषाऽषाढा" ॥श.कां.७अ.५ प्र.४ब्रा.६॥

---

८४ सर्व स्रष्टा परमेश्वर रचित हिमालयादि के उच्चस्थान में कश्यप ने सुदुश्चर तप किया था ।

८५ मनुष्य देह के अङ्ग २ लोम २ और पोरों २ में जो राजयक्ष्मा रोग व्यापक होजाता है उस को दूर करने के लिये कश्यप अर्थात् ज्ञानी उत्तम विद्वान् वैद्य ही समर्थ होता है ॥ ॥ यहां कश्यप का अर्थ अथर्व वेद के भाष्य कार श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के लेखानुसार ज्ञानी उत्तम विद्वान है । शतपथ काण्ड ७ । अ० ५ । प्र० ४ । ब्रा० ६ के प्रमाण से कूर्म का यौगिक अर्थ वीर्य सेचन समर्थ युवा पुरुष कूर्म कहाता और उसीका नाम इन्द्र है । इस में प्रमाण "इमान्त्वमिन्द्र मीढ्वः" मन्त्र है ॥ऋ०॥

८६ कूर्म का योगरूढि अर्थ वृषा और अषाढा योषा (स्त्री) है ॥ 'वृषु' सेचने - इस धातु से वृषा शब्द बनता है । वृषका धात्वर्थ सेचन है । दृढाङ्ग हृष्टपुष्ट युवापुरुष कूर्म कहाता हैं ऐसे ऋषिका नाम कूर्म ऋषि है । यहां यज्ञ प्रकरण है अतः अषाढा से पत्नी का उल्लेख है क्योंकि गृहाश्रम का यज्ञ पत्नी बिना नहीं होता, "पत्युर्नो यज्ञसंयोगे॥" अष्टा. सू. अ. ४ । पा.यह पाणिनि मुनिका सूत्र है, यज्ञ के संयोग में ही पत्नी ऐसा शब्द बनता है । कूर्म शब्दका वृषा अर्थ आदि अमैथुनी सृष्टिका द्योतक है । कूर्म प्रजापति (ब्रह्मा) तक अमैथुनी सृष्टि । पश्चात् मैथुनीसृष्टि। आदि अमैथुनी सृष्टि युवा वस्था में होती है । वृषाका अर्थ भी युवावस्था समर्थ पुरुष है ।

८७ "वृषा शब्देन सेचनसमर्थत्वात् पुमानुच्यते" ॥ वर्षण समर्थः पुरुष इति सायणभाष्यम् ॥

८८ कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. कां. ७ । अ. ५ । प्र. ४ । ब्रा. १ ॥

८९ अथर्वा कश्यपः ॥ अ. कां. ८ सू. ८ मं. १-२६ मन्त्र द्रष्टा ऋषि हैं ॥

९० कश्यपः अथर्वाऽऽचार्य्यः ॥ अ. कां. १२ सू. ५ मं. १-७२ ऋषिः

९१ तस्य ह वा एतस्य भगवतोऽथर्वण ऋषेर्यथैव ब्रह्मणो लोमानि यथाऽङ्गानि यथा प्राणा एवमेवास्य सर्वं आत्मा समभवत् ॥ गो. । पू. भा. । प्रपा. १ । ब्रा. ४ ।

९२ तमथर्वाणं ब्रह्माऽब्रवीत प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति । तद् यदब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति, तस्मात् प्रजापतिरभवत् ॥ गो. ब्रा. । पू. भा. प्र. १ । ब्रा. ४ ।

---

८७ का अर्थ उपर आगया है ।

८८ कश्यप (सर्वद्रष्टा ईश्वर) और कश्यप देहधारी राजा अथवा ऋषि दोनों अर्थ कूर्म शब्द के हैं ।

८९ अथर्वा ही कश्यप हैं ।

९० कश्यपही अथर्वाचार्य्य हैं ।

९१ ब्रह्माजी के शरीर लोमों, हाथ पैर आदि अंगों और प्राणों के सदृश ही भगवान् अथर्वा के शरीर लोम, हस्तपादादि अवयव, और प्राण इत्यादि सब थे ॥९१॥

९२ ब्रह्मा (कूर्मब्रह्मा) ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा से कहाकि (प्रजापतेः) प्रजापति जो परमात्मा हैं उनकी उत्पन्न की हुई प्रजाओंका तू (पालयस्व) 'पाल रक्षणे धातु है' पालनकर इससे अथर्वा प्रजापति हुआ ॥९२॥

९३ अथर्वा वै प्रजापतिः ॥ गो. पू. भा. प्रपा. १ ब्रा. १६ ॥
९४ प्रजापतिरथर्वा देवः ॥ गो. । पू. भा. प्र. १ ब्रा. १६ ॥
९५ यामथर्वामनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ॥
(अथर्व. । ८० । १६)

९६ तदुसाहाऽथर्वा देवी ॥ गो. पू. प्र. १ ब्रा. १५ ॥

९७ सुरूपाचैव मारीची, कार्दमी च तथा स्वराट् ।
पथ्या च मानवी कन्या, तिस्रो भार्यास्त्वथर्वणः ॥
अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाताः कुलोद्वहाः ।
उत्पन्ना महताचैव तपसा भावितात्मनाम् ॥
पं. वद्रकमप्रसादविरचिते ब्राह्मणोत्पत्ति भास्करे ॥पृ.१०

९८ ब्रह्म ह्वा इदमग्र आसीत् ॥ गो. ब्रा. प्र. १ ब्रा. २ ॥

---

(९३) (९४) गोपथ कार कहते हैं अथर्वाही प्रजापति है "प्रजापति अथर्वादेव है" जैसे सब देवोंमें पहिलादेव ब्रह्मा वैसेही अथर्वा भी देव हैं।

(९५) यहां अथर्वा, दध्यङ् ये दो नाम ऋषि, आचार्य, विद्वान्, आदि के हैं। " (९६ का उक्तार्थ, स्व. श्री प. शिवशंकर काव्यतीर्थकृत जाति निर्णय में है)

९७ अथर्वाकी ३ स्त्रियें-सुरूपा, स्वराट्, और तीसरी पथ्या । मरीचि की कन्या सुरूपा,कर्दमऋषिकी कन्या स्वराट् और मनुकी कन्या पथ्या थी अथर्वाकी तीनों स्त्रियों में कुल के बढ़ानेवाले, संस्कारी, अथर्वा के बडे तप से प्रतापी सन्तान उत्पन्न हुए ॥ अथर्वा ही कश्यप कूर्म है, यही कूर्म वंशका प्रवर्तक हुवा है। ९७ ॥

९८॥९९॥का अर्थ सृष्टि से पूर्व एक ब्रह्मही था, और स्वधा अर्थात् प्रकृति (माद्दा) अपने जीव प्राण सहित परमाणुओंकी साम्यावस्था में थी

९९ आसीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥
ऋ० । १० । १२९ । २ ॥

१०० तस्माज्जाया अभवंस्तज्जायानां जायात्वं यच्चासु पुरुषो जायते ॥ गो. ब्रा० । पूर्वभाग । प्रपाठक १ । ब्रा २ ॥

१०१ हन्ताहं मदेव मन्मात्रं द्वितीयं देवं निर्मम इति ।
तदभ्यश्राम्य दभ्यतपत् समतपत् । तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य सन्तप्तस्य ललाटेस्नेहो यदार्द्र्यमाजायत तेनाऽनन्दत् तमब्रवीत महद्वैयक्षं सुवेद मविदामह इति । तद्यदब्रवीत् महद्वै यक्षं सुवेद मविदामह इति तस्मात् सुवेदोऽभवत् तं वा एतं सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते । गो. ब्रा. पू. भा. प्रपा. १ । ब्रा. १ ॥ तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य सर्वेभ्यो रोमगर्तेभ्यः पृथक् स्वेदधाराः प्रास्यन्दन्त । ताभिरनंदत् ॥ गो. ब्रा. पू. भा. प्रपा. १ । ब्रा. २ ॥ पृ. १ ॥

अत्यन्ताभाव न था, केवल कार्य दशा में न होने से व्यवहार में न थी ॥ ॥९८॥९९॥

१०० ब्रह्मोत्पत्ति के पश्चात् सृष्टि में स्वेद धाराओंसे कोमलशक्ति रूप स्त्री उत्पन्न हुई अर्थात् स्त्री क्षेत्र और पुरुष बीजरूप उत्पन्न हुए ॥ स्त्रियों में सन्तानों का होना ही उनका जायापन है । संतानोत्पत्ति सम्भव न हो तो वह बन्ध्या कहावेगी जाया नहीं ।

१०१ कोमल स्त्री शक्तिकी उत्पत्ति के पश्चात् ब्रह्मने दूसरे पुरुष रूपदेव को उत्पन्न किया उस देवके ललाट (मस्तक) में स्नेह (बीज) उत्पन्न हुआ, अर्थात् प्रकृति सहित महान् यक्ष प्रकट हुवा फिर 'सुदेव' वही स्वेद सूक्ष्म परमाणुरूप महत्तत्व के रूप में होगया, "अपएव ससर्जाऽऽदौ" (मनु ।१) से

१०२ तस्माज्जाया अभवंस्तज्जायानां जायत्वं यच्चासु पुरुषो जायते। यच्च पुत्रः पुन्नामनरकमनेकशततारं तस्मात् त्राति पुत्रस्तत् पुत्रस्य पुत्रत्वम् । तद् यदब्रवीदाभिर्वा अहमिदं समाप्स्यामि यदिदं किञ्चेति तस्मादायो अभवं-स्तदपामाप्नोति वै स सर्वान् यान् कामयते ॥ २ ॥ ता अपः सृष्ट्वा अन्वैक्षत, तासु स्वां छायामपश्यत् ता-मस्येक्षमायास्य, स्वयंरेतोऽस्कन्दत् तदप्सु प्रत्यतिष्ठत् । रेतसा द्वैधमभवंस्तासामन्या अन्यतरा अतिलवणा अपेया अस्वाद्यःअशान्तरेतः समुद्रं वृत्वाऽतिष्ठन्नथेतराः पेयाः स्वाद्यः शान्ता स्तास्तत्रैवाभ्यश्राम्यत० । यद्रेत आसीत तदभृज्यत, यदभृज्यत तस्माद्भृगुः समभवत। गो० पूर्वभा० । प्र० १ । ब्रा. ३ ॥ स भृगुंसृष्ट्वाऽन्तर धीयत ॥ सभृगुः सृष्टः प्रैजत तं वागन्ववदत् वायो वायो इति० (गो० ब्रा० पू० भा० प्र० १ ब्रा० ४)

अभिप्राय है कि प्रकृति (मादा) की पहिली अवस्था प्रकट हुई अर्थात् महत्तत्व (गो. ब्रा. प्रपा. १ । ब्रा. १) फिर ब्रह्म के तप अर्थात् पर्यालोक से पुरुषरूप देवके रोम कूपोंसे स्वेद की धारायें बहने लगीं। अर्थात स्त्री और पुरुष शक्तिके संयोगसे प्रकृति नानारूपों में परिणत होने लगी । इन स्वेद धारा ओंसे ब्रह्म बडा समृद्धिशाली हो गया । ब्रह्मने कहा कि उपादान कारण प्रकृति की इन्हीं धारणाओंसे सब कुछ धारण करूंगा धारण करने से ही ब्रह्म हिरण्य गर्भ कहाया ॥

१०२ उपादान कारण प्रकृति की परिणामिनी सत्व रजस और तमस धाराओंसे मैं ब्रह्म सब जगत् को उत्पन्न करूंगा । पुत्रका अर्थ पहरि जो अनेक सैकडों दुःखों से पिता को बचावे । अपू तत्व को रचकर ब्रह्माने फिर

सन्न्यवर्तत स दक्षिणदिश मेजततं वागन्ववदत् मातरिश्वन् मातरिश्वन् इति, सन्न्यवर्तत स प्रतीचीं दिशमेजत तं वागन्ववदत् पवमान पवमान इति,सन्न्यवर्तत स उदीचीन्दिशमेजत तं वागन्ववदद्वात वातेति. तमब्रवीन्नन्वविदाम्ह इति, नहीत्यथार्वाऽन्नमेतास्वप्सुन्विच्छेति तद्यदब्रवीदथार्वाऽन्नमेताप्स्वेवाप्सुन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत्, तदथर्वणोऽथर्वणोऽथर्वत्वम्। तस्य ह वा एतस्य भगवतोऽथर्वण ऋषेः यथैव ब्रह्मणो लोमानि यथाङ्गानि यथा प्राण एवमेवास्य सर्व आत्मा समभवत्॥ (गो० ब्रा०पू०भा.प्र. १ ब्रा. ४॥)

१०३ अथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ् चाथर्वणः सुतः॥
(वायु पु. अ० २८ श्लो. ८)

भृगु दक्षिण दिशाकी ओर चला, वाणीने कहा हे मातरिश्वन् २, मातरिश्वा का अर्थ वायु और जीवात्मा है, वह निवृत्त हुआ, फिर पश्चिम की ओर चला, वाणीने कहा हे पवमान २' पवमान का अर्थ अहित है। भृगु वहां से भी निवृत्त हुआ, और उतर की ओर जना, वाणी बोली हे व्रात २॥ वात का अर्थ यहाँ अन्तरिक्ष है। वाणीने ब्रह्मासे कहा कि हमने भृगु को जान लिया, ब्रह्माने कहा तुमने नहीं जान पाय.। भृगु न मातरिश्वन् है, न पवमान है और न अन्तरिक्ष है। भृगु की उत्पत्ति को हे वाणी इन्हीं अप् तत्वों के भीतर में तू जान वह भृगु अथर्वा हुआ है। वह अथर्वा का अथर्वपन है जो भृगु है। भृगुही अथर्वा है।

१०३ अग्नि दो प्रकार की होती है एक श्रौताग्नि दूसरी लौकिकाग्नि। अथर्वा नाम लौकिक अग्नियों का है जिनका नाम पाकयज्ञ है जो गिनती में ७ कहे हैं। अथर्वा लौकिकाग्नि से उत्पन्न अग्नि का नाम दध्यङ् है दूसरा अर्थ अथर्वा भृगु है उसका देहधारी पुत्र दध्यङ् है।

१०४ अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोप्याङ्गिराथर्वणः सुतः ॥
(वायु पु. अ. २८ श्लो. ९)

१०५ अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं, मातुर्गर्भं पितरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत. प्रणोवोचस्तमिहे ह ब्रुवः ॥९॥
(अ. कां. ७ प्र. १६ सू. ३ मं. ९)

१०६ मूर्द्धानमस्य संसीव्य अथर्वा हृदयञ्च यत् ।
मस्तिकादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधिशीर्षतः ॥२८॥
अ. कां. १० अनु. २ मं. २६।२८ ॥

---

१०४ अथर्वा ही भृगु है, अथर्वा का पुत्र अङ्गिरा है। गोपथ ब्रा. पू. भा. प्र. ४ में अथर्वा की उत्पत्ति जहाँ है वहां भी भृगु को ही अथर्वा कहा है॥

१०५ इस मन्त्र में ब्रह्मवर्चस् की कामना करनेवाले का नाम अथर्वा है। अर्थ — जिस तूने अच्छे प्रकार उपदेश किया है सो तू उस [ब्रह्म] का यहां ही उपदेश कर ॥९॥ सारांश यह कि योगी ही ब्रह्म का यथार्थ उपदेश कर सकता है। ऐतिहासिकपक्षमें ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र का नाम अथर्वा है

१०६ अर्थ — " शुद्ध स्वभाव निश्चल परमात्मा इस मनुष्य शिर जो कुछ हृदय है [उसको] भी आपस में सीकर भेजे (मस्तकमल) से ऊपर बाहर निकल गया ॥२६॥

इस मन्त्र में अथर्वा का अर्थ शुद्धस्वभाव निश्चल परमात्मा है थर्वधातु हिंसा अर्थ में है। अथर्व शब्द में न समास है 'नथर्वः। अथर्वः। अथर्वा शब्द नान्त अथर्वन् शब्द से बना है। दूसरा थर्व शब्द अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय होकर अथर्वा ऐसा स्त्रीलिंग में होता है। गोपथ में यह शब्द स्त्रीलिंग आया है, जैसे " तदुहस्माह अथर्वा देवी " अथर्वा देवी ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र की माता होती है और ब्रह्मा की पत्नी। " कल्याण्यै प्रणतामृद्ध्यै सिद्ध्यै कूर्म्यै नमोनमः ॥ " दुर्गा सप्तशती अ. ५ श्लोक ११ " शर्वाण्यै कूर्म्यै " शर्वाणी का विशेषण 'कूर्म्यै' पद है। ऐसे ही स्त्रीलिंग

१०७ कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. कां. ७ अ. ५ ब्रा. ४ ।

१०८ जज्ञे हि कश्यपोह्यादौ तस्मादत्रिरभूत् पुरा ॥

स्कन्द पु. सह्याद्रि खं. अ. ३० श्लो. ८८ ॥

(मैथुनी सृष्टौ मरीचेः पुत्रः काश्यपः) तद्यथा –

१०९ आकाशप्रभवो ब्रह्मा, शाश्वतो नित्य अव्ययः ।
तस्मान्मरीचिः सञ्जज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ।
सतु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥
(वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड ११० सर्ग)

'कूर्म्यै' पद के साथ "अथर्वायै कूर्म्यै" 'कूर्म' का अर्थ कूर्म ब्रह्मा है तो ब्रह्मा की पत्नी अथर्वा कूर्मी होगी । गोपथ पूर्वभाग प्रपा. में लिखा है कि अथर्वा अश्व विद्या के अच्छे ज्ञाता थे । अथर्वा कश्यप है और कश्यप कूर्म हैं ।

१०७ कश्यप ही कूर्म है ।

१०८ आदि सृष्टि अर्थात् मैथुनी सृष्टि में कश्यप (कूर्म) ब्रह्मा उत्पन्न हुआ

१०९ मैथुनी सृष्टि में कश्यप मरीचि का पुत्र हुआ है। आकाश अर्थात् अमैथुनी सृष्टि में ब्रह्मा उत्पन्न हुए । ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से विवस्वान् (सूर्य विवस्वान् से मनु प्रजापति हुए । मनु के पुत्र इक्ष्वाकु और शर्याति आदि हुए । (प्रश्न) "मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई" (उत्तर) "त्रिविष्टप अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं ।" (सत्यार्थप्रकाश अष्टम समु.) तात्पर्य पृथ्वी का जो स्थान प्रथम शीतल हुआ होगा वहीं सृष्टि हुई वह त्रिविष्टपही हो सकता है ।

१९० 'कूर्मः प्रजापतिरादित्यो वा' ॥ अपां गम्भन् सीद०
(य. अ. १३। मं. ३० पर महीधरभाष्य)

११० द्वे कूर्म देवत्ये। प्रजापतिरादित्यो वा ॥
(उपर्युक्त मन्त्र पर उवट भाष्य है)

१११ कूर्म ऋषिः ॥ य.। अ. ३३। मं. ५१ का ॥

११२ महाकूर्मश्च पार्थिवः ॥ हरिवंश पु.।

११३ एष कूर्मो मयाख्यातो भारते भगवानिह ॥
स्कन्द पु. प्रभास खं. अ. ११ श्लोक २८।

११४ स यः कूर्मो असौ आदित्यः ॥ श. कां. ७ अ. ५।

---

११० य. अ. १३ मन्त्र ३० अपाङ्ग गम्भन् पर महीधरने कूर्म शब्द का अर्थ प्रजापति और आदित्य किया है इस स्वायम्भुव मनु में विवस्वान् कूर्म हुए थे।

११० दो कूर्म देवता हैं, एक प्रजापति और दूसरा आदित्य अर्थात् प्रजापति कूर्म और आदित्य कूर्म। कश्यप के विवस्वान् और विवस्वान ही कूर्म हैं, अतः कूर्मदेव कश्यप के पुत्र हैं।

१११ यं. अ. ३३ मन्त्र ५१ पर कूर्म मन्त्र द्रष्टा ऋषि हुए हैं।

११२ स्वायम्भुवमनु से वैवस्वतमनु तक कूर्मवंश में कूर्म नाम के राजा होते आये हैं। राजा भीष्मक ने अपनी पुत्री रुक्मिणी के स्वयम्वर में शाल्व-सौभपति और कूर्मराजा को बुलाया था।

११३ भारतवर्ष में कूर्मदेव का जन्म हुआ था।

११४ शतपथकाण्ड ७ अ. ५ ब्रा. ४ में कूर्म का अर्थ आदित्य अर्थात् सूर्यलोक है। सूर्यलोक के तेज के समान जिसके गुणकर्म और स्वभाव हों वह आदित्य कूर्म स्वायम्भुव मनु में शासन की व्यवस्था प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र राजा के ९ पुत्र ये आग्नीध्र मनु के पौत्र थे। विपचित्ता नाम्नी अप्सरा आग्नीध्र की रानी थी आग्नीध्र के ९ पुत्रों का राज्याभिषेक अलग २ इन

११५ सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुत परिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥१८॥ तस्यामुह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिम्पुरुषेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसञ्ज्ञान् नवपुत्रानजनयत ॥ १९ ॥ सा सूत्वाथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह्ह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथा भागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥ आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमन्यमानस्तस्याः स लोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते २२ संपरेते पितरि नवभ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति सञ्ज्ञानवोदहन् ॥२३॥ श्री. भागव. स्कन्ध ५ अध्याय ८२ ॥

११६ भूमेरर्द्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं ।
जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः ॥
अर्द्धेन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये ।
क्षारक्षीरस्याम्बुधीनां निवेशः ॥२१॥
सि. शि. म गोलाध्याये भुवनकोशे.

वक्ष्यमाण ९ खण्डों में हुआ था। १ - नाभि, २ - अजनाम वर्ष, ३ - किन्नर वर्ष, ४ - हरिवर्ष, ५ - इलावृतवर्ष, ६ - रम्यकवर्ष, ७ - हिरण्मयवर्ष, ८ - कुरुवर्ष, भद्राश्वकेतुमालवर्ष यह सब स्वयम्भू कश्यपकूर्म और स्वायम्भुव मनु का ही विस्तार था। कूर्मकुल में भी अन्तिम राजा पृथ्वीराज चौहान हुए।

(गद्य)

अथ सिन्धोरुत्तरस्मिन् भूभागेऽर्द्धे जम्बूद्वीपस्थितिरित्याचार्याः प्राहुः । अन्यार्धे दक्षिणेऽस्मिन् द्वीपषट्कं तथा क्षारदुग्धादि सप्तसमुद्राणाञ्च स्थितिः ।

११७ आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः

समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥७॥

भा० स्कन्ध ८ अध्याय २४ श्लो० ७

११८ वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीन बर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥४३॥

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीष सगरा गय नाहुषाद्याः । मान्धात्रलर्क शतधन्वनुरन्ति देवा देव-व्रतो बलिरमूर्तिरयो दिलीपः ॥४४॥

---

११६ आचार्यों ने कहा है कि क्षार समुद्र के उत्तर भूभाग के अर्द्धांश पर जम्बूद्वीप स्थित है। उसके दूसरे अर्द्धांश पर क्षार दुग्धादि सात समुद्र हैं ॥ 'भूगोलमध्याद्धुत्तरं जम्बूद्वीपम् ॥' पृथिवी के मध्यभाग में जम्बूद्वीप है ॥ पुराणमत से जम्बूद्वीप का प्रमाण एक लाख योजन है।

११७ हे राजन्! अतीत कल्प में ब्राह्म नैमित्तिक प्रलय हुआ उसमें समुद्र बढ़े और भू आदि लोक लीन हो गये ॥११७॥

११८ प्रलय के पश्चात् सृष्टि और सृष्टि के पश्चात प्रलय ऐसा चक्र चलता रहता है अतः सृष्टिप्रवाह से अनादि है ॥ माल्यवान गन्धमादन ये पर्वत उत्तर-महासागर में कालवश घिर कर प्रायः अदृश्य हो गये हैं शृङ्गवान् और श्वेतगिरि बिलकुल समुद्र में लीन होगये ॥

११९ सोऽमयुतस्त्रिवित्स्त्रियोदेवल पिप्पलाद, सारस्वतोद्धव-
पराशरभूरिषेणाः । येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्त-
पार्थाष्टिषेण विदुरश्रुत देववर्याः ॥४५॥
ते वै विदन्त्यथ तरन्ति च देवमायां, स्त्रीशूद्रहूणशबरा
अपि पापजीवाः । यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा-
स्तिर्यग् जना अपि किमुश्रुत धारणा ये ॥४६॥
श्रीमद्भागवते द्वितीय स्कं० ब्रह्मनारद संवादे सप्तमोऽध्याय :

(१) सुमेरु के चारों तरफ चौकोन भूमिका नाम इलावृत है ॥१॥ इलावृत वर्ष की चारों सीमाओं पर नील, निषध, माल्यवान्, और गन्धमादन ये चारों पर्वत क्रम से उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में स्थित हैं. सुमेरुपर्वत के दक्षिण विन्ध्याचल से हेमकूट अर्थात् अल्टाईगिरि तक जो भूभाग है उसका नाम हरिवर्ष है। हरिवर्ष के पूर्व और पश्चिम सीमा में लवण समुद्र है इस समय यह एशियाटिक प्रभृति कई भागों में विभक्त है। हेमकूट से दक्षिण हिमालय तक भूप्रदेश को किन्नर वा किम्पुरुष देश कहते हैं। इसके पूर्व और पश्चिम सीमा पर लवण समुद्र वर्तमान है यह स्थान आज कल पारस, अरब, चीन, तातार प्रभृति कई महादेशों में बटा है, हिमालय से जम्बूद्वीप पर्यन्त भूभाग को भारतवर्ष कहते हैं। इसके पूर्व पश्चिम उत्तर सीमा लवण समुद्र से वेष्टित है। सुमेरु के पश्चिम माल्यवान् से जम्बूद्वीप के भाग तक भूभाग को केतुमालवर्ष कहते हैं।
इसके पूर्व और पश्चिम सीमा पर क्रम से निषधाचल अर्थात् हिन्दूकुश पर्वत और पश्चि। नीलगिरि उफाइन पर्वत अवस्थित है। और इस की दक्षिण सीमा पर लवणसमुद्र स्थित है। इस समय इसी देश को यूरोप कहते हैं। पूर्व में नीलगिरि अर्थात् रकीपर्वत पश्चिम में पूर्व निषधाचल यानें अलहेगान दक्षिण में लवण समुद्र एवं उत्तर में गन्धमादन इन चार सीमाओं के मध्य-स्थान को भद्राश्ववर्ष कहते हैं। इस समय यह प्रदेश समुद्र में मग्न होगया

१२० यावदब्दशतं दिव्यं यथाऽन्यः प्राकृतो जनः।
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः॥
स्वायंभुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्॥
मत्स्यपुराण अ० ३ श्लो० ४४

१२१ स्वायंभुवो मनुर्धीमान् तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पत्नीमवाप रूपाढ्यां, अनन्तीं नाम नामतः॥
(मत्स्यपुराण अ० ३ श्लो० ३३)

है। जिस भूप्रदेश के उत्तर नीलगिरि दक्षिण श्वेतगिरि पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र है उसको रम्यकवर्ष कहते हैं। यह देश उत्तर अमेरिका का उत्तर भाग है। इस देश का भी कितना ही अंश छिन्नभिन्न होकर लुप्त होगया है। श्वेतगिरि से शृङ्गवान् तक भूभाग को हिरण्मयवर्ष कहते हैं। और शृङ्गवान से दक्षिण जम्बूद्वीप के दक्षिण भूभाग तक भूभाग को कुरुवर्ष कहते हैं हिरण्मय और कुरुवर्ष ज्ञात होता है जब उसके सीमा के श्वेत और शृङ्गवान् पर्वत अन्यथा को प्राप्त हुए थे तभी लुप्तप्राय होगये थे। और सम्भवतः उत्तर अमेरिका में कुछ अंश और कुरु दक्षिण में परिणत होगया है। विष्णुपुराण और वायुपुराण में भी जम्बू प्रभृति द्वीपों का वर्णन है और भूगोल विषय है। उस में भास्कर का भूगोल कुछ भिन्न है परन्तु सब पुराणों के ही आधार पर है॥

(सि. शि. गोलाध्याय भुवनकोश पृ ५१) लखनऊ मुन्शी नवलकिशोर प्रेस। सन् १९११ ई०॥

१२० प्राकृत जन के समान ब्रह्मा के दिव्य १०० वर्ष व्यतीत होनेतक बहुत समय के पश्चात् अदिति के मनु नाम का पुत्र हुआ जो स्वायम्भुव नाम से विख्यात हुआ उसी का हमने विराट् नाम भी सुना है॥४४॥

१२१ तपस्वी, धीमान् स्वायम्भुव मनु की रूपवती पत्नी का नाम अनन्ती था

१२२ अहं प्रजा सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजानामसृजं, महर्षीनादितो दश ॥
मनु० अ० १ श्लो० ३४ । ३५
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥
१२३ एतान् मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ।
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥
म. अ. १ श्लो. ३६
१२४ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक
आसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै
देवाय हविषा विधेम ॥ (य. अ. १३ मं. ४)

प्रजा को रचने की इच्छावाले मुझ मनु ने अति कठिन तप करके पहिले प्रजाओं के स्वामी वा रक्षक आगे १० दश मरीच्यादि महर्षियों को बनाया ॥३४॥

१२२ मनु के मरीचि आदि १० पुत्र आरम्भ में उत्पन्न हुए ॥ १ मरीचि, २ अत्रि, ३ अङ्गिरा, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु, ७ प्रचेता, ८ वसिष्ठ, ९ भृगु, १० नारद ।

१२३ इन बडे प्रकाशवाले १० प्रजापतियों ने अन्य बडे कान्तिवाले सात मनु तथा देवताओं और उनके स्थानों और ब्रह्मर्षियों को उत्पन्न किया ॥३६॥

१२४ ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये (१।८।९।१)
शतपथे (६।७।१।२) "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भउत्पत्ति निमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः॥" (स. प्र. प्रथमसमुल्लास)

जिस में सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होकर, जिस के आधार रहते हैं । अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का 'गर्भ' नाम उत्पत्ति और

(शतपथोक्त कूर्म शब्द का अर्थ)

१२५ कूर्ममुपदधाति । रसो वै कूर्मो रसमेवै तदुप दधाति
यो वै स एषां लोकानामप्सु प्रविद्धानां पराङ्रसोऽत्यक्षरत्
स एष कूर्मस्तमेवै तदुप दधाति । यावानु वै रसस्तावा-
नात्मा स एष इम एव लोकाः ॥१॥
(श. कां. ७ अ. ५ ब्रा. ४ ऋ. १)

१२६ 'तत्र रस गतौ धातुरहरहर्गच्छतीति रसः' ॥
सुश्रु० । सूत्रस्था० । सू. १४
'रस' गतौ ॥ 'गतेस्त्रयोर्थाः' । ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च
रस गतौ 'रस' आस्वादने द्वौ धातू स्तः ।

निवासस्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम हिरण्यगर्भ है" ॥
जिस समय यह जगत प्रलय में प्रवेश करता और जिस समय उत्पन्न
होता है वही परमात्मा उस समय रक्षक होता है वही इस पृथिवी
और सूर्यलोकादि को धारण करता है ।

॥ इति स्वायम्भुव मनौ कूर्म प्रजापतेः शब्दस्तुत्पत्तिस्थिति प्रलयविषयः ॥

१२५ यजमान यज्ञ में कूर्म का उपधान (स्थापन) करें । कूर्म अर्थात रसा-
त्मक दुग्ध दधि घृत आदि और सृष्टिप्रकरण में ईश्वरोपधानकृत
पृथिव्यादि लोक कूर्म कहाते हैं । 'एषां पृथिव्यादीनां लोकानाम्'
इन पृथिव्यादि लोकों में 'अप्सु' पृथिव्यादि पञ्चभूतजन्य वृक्षादि
में प्रवृद्धानाम् (मग्नानाम्) अन्तःस्थित रस तथा ओषधियों के
खाने से गौ आदि का ओषधिसाररूप दुग्धादि रस पराङ्मुख
(अनावृत्तः) गुप्त हुआ अत्यक्षरत् (असंस्रवत्) स्रवित होता है ।
यह रस कूर्म है । इसी का उपधान करे । रसों का स्थापन और
उस की उत्पत्ति दिखलाकर आचार्य उस रस का उपयोग कहते हैं कि
"यावान् उ रसः" जितने परिणाम में रस होगा उतनाही आत्मा
अर्थात् शरीर बलवान् होगा ।

१२७ रसो गन्धे रसः स्वादे तिक्तादौ विषरागयोः ।
शृङ्गारादौ द्रवे वीर्ये देहधात्वम्बुपारदे ॥ इति विश्वकोषः

१२८ "पृथिव्या ओषधयः । ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः ।
रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥"
(तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्द व अनु० १)

१२९ रूपरसस्पर्शवत्य आपोद्रवाः स्निग्धाः ॥२॥
(वै० अ० २ आह्नि० २ सू० २)

१३० 'रसो वै मधु' ॥ श. ७।५।१।४
रसो वै सः । रसꣳह्येवायम्

१३१ प्राणो वा अङ्गानां रसः ॥ बृ० १।३।१९ ॥
लब्ध्वानन्दीभवति ॥ तै० ब्रह्मा० व० अनु० ७ । मं. ११

१३२ रसो वै दधि ॥ श. कां. ७ अ. ४ ब्रा. ३८ ॥

---

१२६ प्रतिदिन शरीर में गतिमान होने से रस कहाता अथवा स्वादुयुक्त

१२७ गन्ध, स्वाद, षड्रस, विष, राग, शृङ्गारादि, द्रव पतले पदार्थ, बल देह के रक्तादि ७ धातु, जल और पारद इन १२ अर्थों में रस शब्द आया है। यहां कूर्म का अर्थ रस और रस का अर्थ बाहुबल,। बाहुबली क्षत्रिय कूर्म क्षत्रिय हैं। रसः बलमस्यास्तीति कूर्मी ॥

१२८ पृथिवी से यवादि ओषधियें, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्यधातु, वीर्य से पुरुष। एवम यह पुरुष (जीवात्मा देहधारी) अन्न रसमय है।

१२९ रूप, रस, और स्पर्शवान् कोमल, द्रवीभूत जल कहाता है ॥

१३० मधु (शहद) पुष्पों का रस है। पुण्यरूप भगवान् ही रस कहाता है क्यों कि आनन्दप्रद है। जीवात्मा इसी रस को पाकर आनन्दयुक्त होता है ॥

१३१ शरीर में प्राण अङ्गों का रस है ॥

१३२ दही रस कहाता है। दही दूध से अधिक बलदायक है।

१३३ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ य. अ. ३१ मं. १७ ॥

१३४ एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोरसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग् रस ऋचः सामरसः साम्नः उद्गीथो रसः ॥

॥ छा. तृतीयस्य प्रथमः खण्डः । मं. २ ॥

१३५ रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते । मेदसोऽस्थि ततो मज्जा ततः शुक्रस्य सम्भवः ॥ सुश्रुते -

१३३ उस पुरुष परमात्मा ने पृथ्वी की उत्पत्ति के लिये जल से रस लेकर उसने पृथिवी रचा ऐसे ही अग्निरस अग्नि दोनों से जल रचा तथा अग्नि और वायु को बनाया और प्रकृति से आकाश की रचना की और प्रकृति को अपने अनन्त सामर्थ्य से रचा है ॥

१३४ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पांचों भूत मिले हुए रहने से पृथिवी पाँचों की रस कही गयी पृथिवी का जलरस जल की ओषधिये रस ओषधियों का पुरुषरस [ओषधियों से पुरुष का शरीर कहने से] पशुवध मांस का खण्डन है वह सर्वत्र अभक्ष्य है] है । पुरुष का वाणीरस वाणी का ऋग्वेदरस ऋग्वेद का सामवेद रस और साम का उद्गीथ (ओ३म्) उच्चस्वर से गाने योग्य रस है ॥ बस ओ३म का रस (सार) छाछ नहीं किन्तु ओ३म् सब का रस अर्थात् सार है सर्ववेदा ।

१३५ शरीर में खायेंपियें आहार का पहिला धातु रस कहाता है, रस के पश्चात् रक्त, रक्त के पश्चात् मांस, मांस के पश्चात् मेदस्, मेद के पश्चात् अस्थि (हड्डी), अस्थि के पश्चात् मज्जा और मज्जा के पश्चात शुक्र(वीर्य) बनता है। जीव के गर्भ में प्रवेश करने पर यह रसादि का परिणाम होता है ॥

१२६ सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्यो
मित्येतत् ॥

॥ कठोपनिषद् । वल्ली (२) मं. १५ ॥

१२७ 'स एषः कूर्मः ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १
"एतत्सर्वलोकात्मक इत्यर्थः ॥ इति सा. भा.

१२८ इमानेवैतल्लोकाननुपदधाति ॥
श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. २

१२९ द्यावापृथिव्यौ हि कूर्मः ॥
श. ब्रा. । अ. ५ । मं. ७ । प्र. ४ । ब्रा. १०

---

१२६ जिसको चारो वेद कहते, सब तप कहते, जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, हे नचिकेता उस पद को सङ्क्षेप से कहता हूं, वह ओ३म् है ॥

१२७ सायण ने 'एतत्' का अर्थ "एतेन कूर्मोपधानोपहितवान् भवति" अर्थात् इस कच्छप कूर्म के स्थापन से रस का उपधान होता है लिखा है सो यह अर्थ चिन्त्य है क्यों कि शतपथ के इस ७ वें काण्ड में ८ अर्थों में से कहीं भी मूल में कच्छप अर्थ नहीं है॥ यह कूर्म सब लोकों में व्यापक है यह अर्थ ईश्वरपक्ष में होता परन्तु मूल शतपथ में "यावान् उ रसस्तावानात्मा" है, तब अन्वय यह होना चाहिये कि स एषः' रसवान् आत्मा सो यह रसवाला शरीर है ॥

१२८ कूर्म का सृष्टिप्रकरण में पृथिव्यादि लोक अर्थ होने में "इमानेवैतत्०" यह मूल शतपथप्रमाण है ॥

१२९ स्वर्ग तथा भूलोक भी कूर्म हैं।

१४० तस्य यदधरं कपालम् । अयं स लोकस्तत् प्रतिष्ठितमिव भवति । प्रतिष्ठित इव ह्ययं लोकः ॥

श. कां. ७ अ. ५ ब्रा. ४ कं. १

(कूर्म के उपधान में प्रमाण)

१४१ अमद्भमक्रमक्रान्तर्गगने गगनेचरैः ।
वृता धृता धरा केन येन नेयामियादधः ॥१॥
किमाकारा कियन्माना नाना शास्त्रविचारणात् ।
कीदृग् द्वीपकुलाद्रीन्द्रसमुद्रैर्मुद्रितोच्यताम् ॥२॥

॥ सि० शि० गोलाध्याय श्लो. १ । २ ॥

१४० (तस्य) कूर्मस्य, कोऽर्थः ब्रह्माण्डान्तर्गतस्य भूगोलस्य पृथिवीलोकस्य वा (यत्) (आधारम्) (कपालम्) पृष्ठभागः कन्दुक जालवत् कदम्बपुष्पवद्वा खर्परसदृशं वर्तते (सः) (अयम्) प्रत्यक्षः पृथिवीलोकः (प्रतिष्ठितम्) (इव) सूर्यस्य परितः गतिशील अत एव स्थिर इव (भवति) अस्ति (हि) (अयं लोकः) पृथिवीलोकः (प्रतिष्ठित इव) सर्वेषां गुरुपदार्थानामयं पृथिवीलोक एवाऽऽधारभूतत्वात् प्रतिष्ठित इवेत्युच्यते । स्पष्टीकरोति तद्यथा - (हि) (अयम्) (लोकः पृथिवी लोकः प्रतिष्ठित इवेति ।

१४० मूलानुसारी कूर्म शब्द का अर्थ ब्रह्माण्डान्तर्गत भूलोक अथवा पृथवी है उपर द्युलोकापेक्षा यह पृथिवी लोक नीचे गुरुपदार्थों का आधारभूत आधेकपाल के समान है। यह पृथिवी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है। गतिशीला होने से स्थिर सी है अर्थात् गतिपूर्वक अपने स्वरूप में स्थिर है। वेद में उपदेश है "ध्रुवाद्यौः ध्रुवा पृथिवी०" द्यु और पृथिवी ध्रुव हैं। ध्रुव धातु गति और स्थिरता अर्थ में है 'ध्रुव' गतिस्थैर्ययोः। मूल में "अयं स लोकः।" इस प्रमाण से "तस्य का" अर्थ कूर्म और कूर्म का अर्थ-पृथिवी है। कूर्म का उपधान कहने से यज्ञ में यजमान और रसात्मक द्रव्यों का उपधान है।

१४२ भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञ कवेरविकुजेज्यार्किनक्षत्र कक्षा।
वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिलव्योम तेजो मयोऽयम्॥
नान्याधारः स शक्त्या वियति नियतं तिष्ठतीहास्यपृष्ठे।
निष्ठं विश्वञ्च शश्वत् सदनु मनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥
सि. शि. गो. श्लो. २॥

१४३ मध्ये समन्ताद् दण्डस्य. भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥
(सू. सि. भूगो० श्लो० ३२)

सायणाचार्य यह अर्थ करते हैं कि "तस्य कूर्मस्य यदधस्तनं 'कपालं' कठिन त्वक्। अयं लोकः पृथिवी।" कछुवे के नीचे का तला कपाल कहाता है उसको कड़ीखाल मानों पृथिवी है। इत्यादि अर्थ प्रकरण विरुद्ध है।

१४१ कूर्मोपधान दो प्रकार का है। एक ईश्वरकृत और दूसरा मनुष्यकृत। ईश्वरकृत उपधान में ये प्रश्न हैं। यह पृथ्वी ग्रहनक्षत्रों से वेष्टित भ्रमण करते हुए राशिचक्र के भीतर कैसे रहती है? जिससे नीचे नहीं गिर सकती! इसका स्वरूप और मान क्या है! इस पर द्वीप, समुद्र, पर्वत किस प्रकार स्थित हैं। यह विविध प्रमाणों के विचारपूर्वक कहो॥१२॥

(पृथिवी का स्वरूप)

१४२ "जो यह, पृथिवी, वायु, आकाश, तेजोमय, भूतोंवाला भूमि का पिण्ड गोलाकार है वह चन्द्रमादि कक्षाओं से घिरा हुआ अपनी शक्ति से ही नियुक्त आकाश में स्थित है इस भूमि के पृष्ठभाग में जगत है अर्थात् दानव मनुष्य देव और असुर सब ओर से बसे हुए हैं॥" भूमि का स्वरूप कहा गया, यह पृथ्वी आकाश में कैसे ठहरी है इसका उत्तर —

१४३ "ब्रह्माण्ड के केन्द्ररूप मध्यस्थान में ईश्वर की धारणात्मिका शक्ति

१४४ मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धरा क्रमात् ।

गुणैकवृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥२३॥

(सू. सि. भूगो० श्लो० २३)

१४५ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ॥

(ऋ. मण्ड. १० सू. १९० । मं. ३)

(ग्रहों की उत्पत्ति)

१४६ अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः ।

तेजोभूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥२४॥

(सू. सि. भूगोलाध्याय श्लो. २४)

१४७ ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते ।

तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोधः क्रमशस्तथा ॥३०॥

(सू० सि० भूगोलाध्याय श्लो० ३०)

का धारण करता हुआ यह भूगोल आकाश के बीच स्थित है। भूमि का आकार कैसा है और इसका आश्रय क्या है? दोनों का उत्तर दिया गया।

१४४ परमात्मा के मनन सामर्थ्य से शब्द गुणवान् आकाश, आकाश से शब्द, स्पर्श, दो गुणयुत वायु, वायु से शब्द, स्पर्श रूपात्मक तीनों गुणोंवाला अग्नि, अग्नि से शब्दस्पर्श रूप रसात्मक चारों गुणोंवाला जल और जल से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों गुणोंवाली भूमि उत्पन्न हुई ॥२३॥

१४५ सृष्टिकर्ता ने पूर्ववत् सूर्य और चन्द्रमा का प्रादुर्भाव किया।

१४६ अग्नि स्वरूप सूर्य सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के पश्चात् तेजसे मङ्गल भूमि से बुध आकाश से गुरु जल से शुक्र और वायु से शनि ये पाँच तारा ग्रह उत्पन्न हुए ॥२४॥

१४७ ब्रह्माण्ड परिधि को आकाश कक्षा कहते हैं उसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं ॥३०॥

१४८ मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोधस्थाः सिद्धा विद्याधरा घनाः ॥
सू. सि. भूगोलाध्याय श्लो. ३१

१४९ तथा लोकां अकल्पयन् ॥
॥ य. अ. ३१ मं. १३ ॥

(अथ प्रथमो ब्राह्मणः)

१५० अथ यदुत्तरः ऽसा द्यौस्तद्व्यवगृहीतान्तामिव भवति ।
व्यवगृहीतान्तेव द्यौः ॥
(श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १)

---

१४८ नक्षत्रों के नीचे अधोधः क्रम से शनि, बृहस्पति, भौम, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्र, भ्रमण करते हैं ॥३१॥

१४९ (अर्थ) "उसी प्रकार सर्व लोकमय सामर्थ्य से अन्य सब लोकों और उन लोकों में स्थावर जङ्गम पदार्थों को उसी परमेश्वर ने रचा है।" ॥ यह मन्त्र का अर्थ है ॥

कमलाकर ने भूमि के ऊपर जलगोल और उस के ऊपर अग्निगोल भी माना है अर्थात् भूगोल के ऊपर जलगोल, जलगोल के ऊपर आकाश में अग्निगोल, अग्निगोल के ऊपर चन्द्रगोल, भूगोल और चन्द्रगोल के भीतर सिद्ध विद्याधर और मेघ स्थित हैं। चन्द्रमा के ऊपर बुध, बुध के ऊपर शुक्र, शुक्र के ऊपर सूर्य, सूर्य के ऊपर मङ्गल, मङ्गल के ऊपर बृहस्पति, बृहस्पति के शनि, शनि के ऊपर भगोल अर्थात् नक्षत्र-मण्डल ये सब आकाश के भीतर भ्रमण करते हैं यह विश्वज्योति विश्वतश्चक्षु स्वयम्भू कूर्म कश्यप की यह स्थापना तथा रचना उस की महिमा का द्योतक है और उसकी सत्ता में प्रमाण है कि वही सृष्टिकर्ता है इसी से उस का अन्वर्थ नाम 'कूर्म कश्यप' है। मुख्य निमित्त कारण कूर्म कश्यप से यह जगत् उत्पन्न होने से इस ब्रह्माण्ड और भूगोल का नाम कूर्म है।

१५० कूर्म पृथिवी के उपाख्यान कथन के पश्चात् शतपथकार महर्षि याज्ञवल्क्य

१५१ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ ऋ. १।२।७।१६ ॥

१५२ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥
(य० । अ० ५ मं. १५)

अनन्तर द्युलोक का उपधान (स्थापन) करते हैं 'ध्रुवपदुत्तरम्' इत्यादि पृथिवी के ऊपर द्युलोक है। यह द्युलोक व्यवगृहीतान्त के समान है। व्यवगृहीतान्त का अर्थ यह कि "विविधमवगृहीतः अवनतः प्रान्तो यस्य" (शा. भा.) अर्थात् अनेकों प्रकार से नम्रीभूत है नीचे की ओर जिसका प्रान्त (किनारा) ऐसा यह द्युलोक है। कूर्म का अर्थ द्यावापृथिवी, इसी सातवें काण्ड के १० वें ब्राह्मण में आचार्य कहेंगे वही अर्थ यहां भी है। जैसे धूप के निवारणार्थ छत्र (छाता) सब ओर से नीचे की ओर नमा रहता है वैसे ही इस द्यौः का उपधान पृथिवी की ओर नमा हुआ है। जैसे मनुष्य लोग घरों की रक्षार्थ नीशार अर्थात् छावनी छप्पर छाने से पूर्व ठाट बनाते हैं फिर उस पर तृण (तिन घास) आदि छाते हैं इसी प्रकार यह द्युलोक भी नक्षत्रों का ठाट है, अहर्पति सूर्य इसी द्युलोक का देवता है "अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रोऽन्तरिक्षस्थानः सूर्योद्युस्थानः ॥" निरु० ॥ अग्नि पृथिवी का देवता वायु और विद्युत् अन्तरिक्ष का देवता और सूर्य द्युलोक का देवता है।

१५१ "उस विष्णु व्यापक परमात्मा ने जीवों के पापपुण्य भोगने तथा पदार्थों के स्थित होने के लिये पृथिवी से लेकर ऊंचेनीचे स्थानों से युक्त ७ सात लोक रचे"।

१५२ अन्तरिक्ष में जो परमाणवारब्ध जगत् है वह आंखों से नहीं दिखता है पांसु अर्थात् परमाणु सङ्घात रूप २ द्रव्यों से उत्पन्न होते हैं। इसी लिये उत्पन्न हुवे सब पदार्थ अदृश्य होकर ईश्वरीय नियम में रहते हैं गुरुपदार्थ पृथिवी में और लघु (हलके) परमाणु आदि अन्तरिक्ष में

१५३ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥
य० अ० १३ । मं. १४ ॥

१५४ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
म. अ. ३ श्लो. ७६

१५५ यज्ञाद्भवति पर्जन्यः ॥ भगवद्गीता अ. ३ श्लो. १४ ॥

१५६ द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ॥ ऋ. मण्ड. १ सू. १६४ मं. ३३

और मधु = आपश्चिमार शहद सब सारभूत द्युलोकमें स्थापित किये हैं ।

१५३ सृष्टि में अग्नि मस्तक स्थानी द्युलोक टाट है जहां वही सूर्य का स्थान है, वह जल कणों को उठानेवाला है ।

१५४ अग्नि में अच्छे प्रकार होम की हुई आहुति सूर्यलोक को पहुंचती है सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी पर वर्षा करता वर्षा से अन्न उत्पन्न होता अन्न से प्राणियों के शरीर बनते हैं ।

१५५ गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है कि यज्ञ से बादल बनते हैं ।

१५६ द्यौः अर्थात् सूर्य का प्रकाश (पिता) रक्षक और (जनिता) सब व्यवहारों का उत्पादक है । प्रकाश में ही सब उत्तम व्यवहार किये जाते हैं । नाभि (प्रधान) बन्धु है । यह पृथिवी माता है । अर्थात् पृथिवी 'द्यौः' सूर्य की माता है । माता का अर्थ 'मानकर्त्री' मान करनेवाली है । पृथिवी अपनी गतिद्वारा सूर्य की परिक्रमा करती हुई उसके प्रकाश की रक्षा करती है ।

१५७ उद्गीथादीनि कर्माङ्गान्युपादाय श्रवणात् । यथा

इयमेव पृथिवी जुहूरादित्यः कूर्मः स्वर्लोक आहवनीयः २१

शाङ्करभाष्ये ब्रह्मसूत्रम् अ. ३ पा.४ सू. २१

कूर्मश्च नयनगतः गत्वादित्य इति आहवनीयोऽग्निः ।

इति गोविन्दकृत रत्नप्रभाभाषितटीकायाम् ।

॥ इति प्रथमो

ब्राह्मणो व्याख्यासहितः समाप्तः ॥

१५७ यज्ञसमाप्ति में घृत भर कर जिस स्रुव से पूर्णाहुति दी जाती है उस स्रुव को जुहू कहते हैं। यह पृथिवी सब पदार्थों का आधार होने से जुहू सदृश है, जैसे जुहू घी का आधार है वैसे ही पृथिवी पर ही सब पदार्थ धरे जाते हैं। पृथिवी से सम्बन्ध रखनेवाला आदित्य अर्थात् सूर्य कूर्म स्थानी है। गोविन्दकृत टीका में नयनगत कूर्म को आदित्य कहा है। नयन अर्थात् आंख सूर्य के तेज से बनी है, अत एव वह आदित्य है "सूर्यं चक्षुर्गच्छतु" वेद में भी है कि चक्षु अपने कारण सूर्य में मिल जावे। यज्ञ प्रकरण में यह अर्थ है जिस में यज्ञकुण्ड बना हुवा हो। ऐसी पृथिवी जुहू समान है उस यज्ञकुण्ड में दाता यजमान की दृष्टि रखने वाला कूर्म है और आहवनीय नाम की अग्नि स्वर्लोक द्युलोक है। यहां कूर्म का अर्थ आदित्य है।

॥ इति प्रथम ब्राह्मण व्याख्यार्थं समाप्त ॥

(अथ द्वितीयो ब्राह्मणः)

१५८ यदन्तरा तदन्तरिक्षं स एष इम एव लोका इमानेवै-
तल्लोकानुपदधाति ॥२॥

(श. कां. ७ अ. ५ ब्रा. ४ आ. ७)

१५९ दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

ऋ. मण्ड० १० सू. १९० मं. ३

१६० तथा या एता आन्तरिक्ष्ये सूक्ष्मा आपस्तासां विकारो धूमःसधूमः आकाशे निवाते नैवतिर्य्यग्-गच्छति नार्वागवरोहति। अब् विकारोऽप एव गच्छत्यान्तयाति ॥

(छ. भा. अ. ? पा. १ आ. ७)

१५८ आचार्य्य पृथिवी और द्युलोक का उपधान (स्थापन) कहकर अब अन्तरिक्ष का उपधान करते हैं। पृथिवी और द्युलोक के बीच को अन्तरिक्ष कहते हैं। 'अन्तरा' यह अव्यय मध्य अर्थवाला है जैसे "त्वाञ्च माञ्चान्तरा कमण्डलुः" तेरे और मेरे बीच में यह कमण्डलु है।

'स' 'एषः' सो यह जो कूर्म है। 'इमे' 'एव' 'लोकाः' ये ही पृथिव्यादि लोक ही कूर्म कहाते हैं। एतत् (ब्रह्म) (इमान्) (एव) (लोकान्) ब्रह्म ने ही इन पृथिव्यादि लोकों की स्थापना की है। उसी प्रकार यज्ञ में जो यजमान कूर्म है वह सब चतुर्विध द्रव्यों की स्थापना करे।

१५९ द्युलोक पृथिवीलोक अन्तरिक्षलोक और स्वर्लोक का रचयिता 'धाता' सब जगत् का धर्ता परमात्मा है।

१६० सूक्ष्म रूप से अन्तरिक्ष में जो यह जल व्याप्त है उसका विकार धूम सदृश वाष्परूप जल है वह वातरहित आकाश में न तिरछा जाता और न ऊपर किन्तु जल का विकार समीपता से जल ही में आता है।

१६१ नाड्यो वायु संयोगादारोहणम् ॥

वैशे० अ० आ० सू.

॥ इति द्वितीयो ब्राह्मणो व्याख्यासहितः समाप्तः ॥

१६१ वायु के संयोग से सूर्य की किरणें जल को अन्तरिक्ष में ऊपर चढ़ाती है। पृथिवी से ऊपर ४८ कोश पर भू वायु है वहाँ बादल विद्युदादि सब अन्तरिक्ष में हैं।

तात्पर्य – लघुपदार्थों की स्थापना परमात्मा ने अन्तरिक्ष में की है जिस लघु अर्थात् परमाणु पदार्थ का आद्यन्त नहीं है, सृष्टि के आदि में इन्हीं परमाणुओं से प्रकृति का विस्तार होता है। (इस का नाम उपधान है)

॥ इति द्वितीयब्राह्मणव्याख्यार्थ समाप्त ॥

(अथ तृतीयो ब्राह्मणः)

१६२ तमभ्यनक्ति । दध्ना मधुना घृतेन, दधि हैवास्य लोकस्य रूपं घृतमन्तरिक्षस्य मध्वमुष्य स्वेनैवैनमेतद्रूपेण समर्द्धयत्यथो दधि हैवास्य लोकस्य रसो घृतमन्तरिक्षस्य मध्वमुष्य स्वेनैवैनमेतद्रसेन समर्द्धयति ॥

श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ३

(इति तृतीयो ब्राह्मणः)

१६२ तम् (कूर्मम) पृथिव्यादि लोकत्रयम (अभ्यनक्ति) व्यक्तीकरोति दृष्टान्तत्रयेणानादार्थः । आचार्य शतपथकार पृथिवीलोक, द्युलोक और अन्तरिक्षलोक की स्थापना का प्रयोजन सूचित करने के लिये निम्न लिखित तीन दृष्टान्त देते हैं १. दधि, २ घृत, ३ मधु । ईश्वर ने दहीसमान गुरुपदार्थ पृथिवी में और घृततुल्य परमाण्वादि हल्के पदार्थ जलादि अन्तरिक्ष में और म [illegible] ओषधि सार शहदसमान सारभूत सात्विक पदार्थ द्युलोक में स्थापित किये हैं तथा जीवों को पापपुण्य का फल भोगने के लिये भी उक्त लोकों की स्थापना की है 'स्वेनैवेनम्' इत्यादि का अर्थ यह कि यजमान कूर्म अर्थात् रसादि पदार्थों से इस यज्ञ को अच्छे प्रकार बढाता अर्थात् अलङ्कृत करता है । यह एक अर्थ है दूसरा 'तम्' कूर्मम् यज्ञकुण्डे स्थापितमग्नि यजमानः घृतादिना (अभ्यनक्ति) सिञ्चति, प्रदीप्तं करोति । यजमान कूर्म अर्थात आधान अग्नि को घृतादि से उद्बोधित करता है । तिसरा अर्थ यह कि 'यजमानः (तम्) कूर्मम् नाम कर्मठं क्रियाविधिज्ञं, चतुर्वेदविदं, प्रजापतिं वक्ष्यमाणं ब्रह्माणम् (अभ्यनक्ति) मधुपर्केण सत्करोति यज्ञारम्भे ॥

॥ इति तृतीयब्राह्मणव्याख्यार्थः समाप्त ॥

(अथ चतुर्थो ब्राह्मणः)

१६२ मधुवाता ऋतायत इति । यो वै देवता मृगभ्यनूक्तायां
यजुः सैव देवता मरुतो देवता तद् यजुस्तद्वैतन्मध्वेवैष
त्रिवो रसो वै मधु रसमेवास्मिन्नेतद्दधाति गायत्रीभि-
स्तिसृभिस्तस्योक्तो बन्धुः ॥४॥

श. कां ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ४

१६३ मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१॥
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः ।
मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥२॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३॥

॥ य. अ. १३ मं. २७।२८।२९ ॥

१६४ घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम् ॥ य. अ. ५ मं. २८ ॥

"मधुवाता ऋतायते०" इत्यादि मन्त्रों में वासन्तिकयज्ञ का उपदेश है कि क्षत्रियलोग वसन्तऋतु में यज्ञ कर के युद्धार्थ यात्रा करें ।

१६२ सायणाचार्य, 'ऋतायते' का अर्थ करते हैं कि "ऋतं यज्ञमात्मन
इच्छतीति ऋतायन्, यजमानः ॥" जो अपने कल्याणार्थ यज्ञ करना चाहता है वह 'ऋतायन्' यजमान कहाता है। सकाम और निष्काम भेद से यज्ञ दो प्रकार के हैं। सकामपक्ष में

१६३ पूर्वशेष का अर्थ — ब्रह्मा आदि की ओर से यजमान को आशीर्वाद कि
जैसे हमारे लिये ये मधु आदि सुखदायक हैं वैसे ही यजमान के लिये भी सुखदायक हों। निष्कामपक्ष में 'समभ्यनक्ति' का यह अर्थ है कि 'द्यावापृथिवीयं नाम कूर्मं मधुना घृतेन यजमानः (अभ्यनक्ति)

१६५ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिस्सर्वꣳशान्तिश्शान्तिरेवशान्तिःसामा-शान्तिरेधि ॥१७॥ य. अ. ३६ मं. १७

(इति चतुर्थो ब्राह्मणो
व्याख्यासहितः समाप्तः)

सिञ्चति पूरयति यज्ञकर्मणेति ॥ इस में "घृतेन द्यावा" यह याजुषक प्रमाण है। मनुष्यादिकों के मलमूत्रादि से पृथिव्यादि लोकस्थ पदार्थ दूषित होजाते हैं उनके दूषित होने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माण्ड का वायु दूषित होता है, इन सब की शुद्धि के लिये द्यावा पृथिवी नामक कूर्म को घृतादि पदार्थों से यज्ञद्वारा पूर्ण करने के अर्थ यहां कहा है ॥ १६३ । १६४ ॥

१६५ वेद में भी उपदेश है कि द्युलोक पृथिवीलोक और अन्तरिक्षलोकादि मनुष्यों के लिये शान्तिदायक (निरुपद्रव) हो।

(शतपथ काण्ड ७ अध्याय ५ प्रपाठक ४ का
यह (४) चौथा ब्राह्मण समाप्त हुआ)

(अथ पञ्चमो ब्राह्मणः) तत्रेश्वरविषयः ।

ब्रह्मकूर्म्महोराभ्यम् ॥ इति बृहत पाराशरे ॥

सः स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः ।

एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ऋग्वेद ८।१६।८ ॥

१६६ स यत् कूर्मो नाम । ए द्वै रूपङ्कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताकरोत् तद्यदकरोत तस्मात् कूर्म्मः कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप इति ॥

(श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ५)

प्रजापतिर्वै यत् प्रजा असृजत । ता वै तान्ता असृजत ॥

गो. ब्रा. उ. भा. प्र. ५ ब्रा. १

१६७ दक्षिणतोऽषाढायै वृषा वै कूर्मो योषाषाढा दक्षिणतो वै वृषा योषामुपशेतेऽरत्निमात्रेऽरत्निमात्राद्धि वृषा योषामुपशेते ॥

श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ६

१६८ अमरकों. काण्ड १ श्लो. २० में जैसे 'धातृ' 'अब्जयोनि' 'द्रुहिण' 'विरञ्चि' 'कमलासन' 'स्रष्टा' 'प्रजापति' 'वेधस्' 'विधातृ' 'विश्वसृज्' 'विधि' ब्रह्मा के इन ११ नामों में प्रजापति भी ब्रह्मा का नाम है ।

१६९ अथो प्रजापतिर्ब्रह्मा ॥ गो. ब्रा. उत्तरभा. प्र. ५ ॥

१७० ब्रह्मा रथन्तरं सर्पति ॥ गो. ब्रा. उ. भा. प्र. ब्रा. १ ॥

वह 'तुविकूर्मिः' महान् सृष्टिकर्ता कूर्मिसञ्ज्ञक ईश्वर स्तुतियोग्य है वह सत्कार योग्य है वह सत्यस्वरूप है वह सत्ताधारी महा बलवान् है वह अकेला रह कर भी विघ्नबाधाओं तथा शत्रुसमूहों से कभी पराजित नहीं होता वह सदा विजयी है ।

१७१ ब्रह्मैव विद्वान् यद् भृग्वङ्गिरो वित् सम्यगधीयानश्चरित ब्रह्मचर्योऽन्यूनातिरिक्ताङ्गः अप्रमत्तो यज्ञं रक्षति ॥
गो. भा. २ प्र. २ ब्रा. ५

यहां से आगे ५ वें ब्राह्मण का आरम्भ है। इस पांचवें ब्राह्मण से पूर्व महर्षि याज्ञवल्क्य ने पृथिवीलोक द्युलोक और अन्तरिक्षलोक का कूर्म नाम और कूर्मसञ्ज्ञक पृथिव्यादि लोकों की स्थापना, उत्पत्तिक्रम और उनका उपयोग कहा है, अब इस पांचवें ब्राह्मण में उपर्युक्त पृथिव्यादि लोकों के उत्पादक स्थापक सृष्टिकर्त्ता कूर्म प्रजापति ईश्वर को कहते हैं।

(प्र.) 'कूर्ममुपदधाति' से इस ५ वें ब्राह्मण में भी कूर्म शब्द की अनुवृत्ति आसकती थी पुनः आचार्य्य ने कूर्म शब्द क्यों पढा, (उत्तर) पूर्व कथित कूर्म शब्द के पृथिव्यादि लोक अर्थ की निवृत्त्यर्थ 'स यत् कूर्मो नाम०' यहां पुनर्वार कूर्म शब्द को आचार्य्य ने पढा है। यहां कूर्म शब्द का अर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है पृथिव्यादि लोक नहीं।

'एतद्वै रूपङ्कृत्वा' में रूप का अर्थ प्रकृति है अर्थात् प्रकृतिसहित कूर्म प्रजापति ईश्वर ने प्रजाओं को रचा, जिस लिये रचा इस लिये उसका कूर्म नाम हुआ। कश्यप ही कूर्म है इसी लिये समस्त प्रजा में कश्यप की उत्पन्न की हुई काश्यपी कहाती है।

१८७ यहाँ 'कूर्मप्रजापति के दो अर्थ हैं एक सृष्टिकर्त्ता ईश्वर और दूसरा ज्ञान, वैराग्यवान, क्रियाविधिज्ञ, चतुर्वेदवित् प्रजापति ब्रह्मा है। कश्यप का अर्थ सर्वद्रष्टा परमेश्वर है इस में प्रमाण श्रूयते हि। कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्। (तैत्तिरी० १.८.८) कश्यप का दूसरा अर्थ 'ज्ञानी उत्तम विद्वान्' है। प्रमाण अन्यत्र इसी ग्रन्थ में है। वास्तव में आचार्य याज्ञवल्क्य के मत से इस यज्ञ का यजमान कूर्म प्रजापति ब्रह्मा है। और इस यज्ञ का सम्बन्ध कूर्म प्रजापति अग्नि से

१७२ आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ॥

अथर्व० काण्ड ११ सू. ५ मं. १६

है श. कां. ७ ब्रा. ८ में ब्राह्मण लिखते हैं कि 'अपाङ्ग्मन्' 'त्रीन्समुद्रान्' 'मही द्यौः' इन तीन मन्त्रों से कूर्म की स्थापना करे। कूर्म का अर्थ कच्छप नहीं किन्तु कूर्म का अर्थ कूर्म यजमान और प्राण (बल) है। अथर्व० काण्ड २० सू. १२७ में एक मन्त्र आया है जिसमें "कौरम्" शब्द है कौरम का अर्थ पृथिवी में रमणशील राजा, कौरम क्षत्रिय दानशील हो यह भी मन्त्र में कहा है, एवम् श. कां. ७ ब्रा. ८ में कूर्म यजमान के लिये कहा है कि हे यजमान् यज्ञ में तू 'अछिन्न पर्वाः प्रजा अनुवीक्षस्व' (अर्थः) — जिन के शरीर के हस्तपादादि अवयव कटे न हों अर्थात् हाथ, पैर आदि रहित तो कोई नहीं है यह देख कर उनकी तू रक्षा कर, तू अपनी प्रजाओं को देख कि तेरी प्रजायें सब प्रकार आरोग्य हैं? पीडित तो नहीं हैं? इस यज्ञ में क्षत्रियवर्ण के अनुकूल 'प्रजानां रक्षणदानमिज्याध्ययनमेव च' ये कथितलक्षण अन्तर्भूत हैं। दानशील होना, प्रजा की रक्षा करना, यज्ञ करना, विषयों में न फँसना ये लक्ष इस यज्ञकर्ता के लिये इस यज्ञ में कहे गये हैं। "कूर्मो वै वृषा०" इसका यही अर्थ है कि कूर्म क्षत्रिय वही है जो विषयों में नहीं फँसता। जो गृहाश्रम के अपत्योत्पादनादि धर्मों का पालन करता हो और जो याज्ञिक हो वह कूर्म प्रजापति क्षत्रिय है कूर्म प्रजापति (ब्रह्मा) से कूर्मवंश की उत्पत्ति को शतपथकार मानते हैं। इसमें प्रमाण दक्षिणतोऽषाढायै वृषा वै कूर्मो योषाढा० इत्यादि स्पष्ट है कि वृषा कूर्म यजमान वीराङ्गना भी या अपनी अषाढा पत्नी के दक्षिण भाग में यज्ञ करते समय बैठे।

१६७ का अर्थ ऊपर आगया है। १६६। १६७

१७३ ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥

अथर्व० काण्ड ११ सू. ५ मं. १७

१७४ अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः ।

वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च ॥

म० अ० २ श्लो० ७६

१७५ त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत् ।

तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥

म. अ. २ श्लो. ७७

१७६ यत् तत् कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।

तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥

म. अ. १ श्लो. ११

---

१६९ और १७० में गोपथ के प्रमाण के प्रजापति का अर्थ ब्रह्मा देहधारी है।

१७० में ब्रह्मा रथ के पहिये को यज्ञ में सरकाता है।

१७१ ब्रह्मा सम्यक् अधीयान, आचरित ब्रह्मचर्य हस्तपादादि अङ्गों से न न्यून और न अधिक हो, अप्रमादी, पूर्ण विद्वान् और विशेष कर अथर्ववेद का ज्ञाता हो ऐसा ब्रह्मा होगा।

१७२ ब्रह्मचारी आचार्य प्रजापति कहाता है।

"आचार्यः कस्मात्। आचिनोत्यर्थान्, बुद्धिं वा, इत्याचार्यः॥ नि०

१७३ राजा ब्रह्मचर्य से ही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है।

१७४ में 'प्रजापति' का अर्थ परमेश्वर है। अ, उ, म्, और भूर्, भुवः, स्वर् को प्रजापति ने ऋगादि तीनों वेदों से निकाला।

१७५ परमेष्ठी प्रजापति अर्थात् प्रजापालक परमात्मा (ब्रह्मा) ने सावित्री ऋचा के एक २ पाद को तीनों वेदों से दुहा अर्थात् निकाला। परमे

१७७ 'स यत् कूर्मो नाम०' इस पर सायणभाष्य निम्न लिखित है।

१७७ – अथ कूर्म इति नाम्नः प्रवृत्ति निमित्तं दर्शयति। 'स यत् कूर्म इति' 'एतत्' कूर्मसन्निधिरूपम् 'रूपम्' आत्मनः 'कृत्वा' 'प्रजापतिः प्रजा असृजत'। असृजदित्येवस्य व्याख्यानम्। "यदसृजता करोदिति। असृजतेति यत्, तदकरोदित्यर्थः। 'यत्' तेन रूपेण 'अकरोत्' इति 'यत्' तस्माद् अकरोदिति। 'कूर्मः – इति कूर्म-शब्दो नामधेयमित्यर्थः। करोतेरौणादिके मक् प्रत्यये 'बहुलं-छन्दसि' इत्युत्वे 'हलिच' इति दीर्घे च कृते कूर्म इति रूपं भवति 'कश्यपो वा' इत्यादिकस्यायमर्थः। कूर्म शब्दस्य करणे प्रवृत्ति निमित्तकत्वात्' कश्यपस्य प्रजापतित्वेन प्रजा कारकत्वात्, 'कश्यपः 'कूर्मः खलु' अत एव सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति 'आहुः' जनाः। अतश्च कूर्मस्य कश्यपात्मकत्वात् तदुपधानं प्रशस्तमिति" ॥८॥

सर्वोत्कृष्टे स्वस्वरूपे तिष्ठतीति परमेष्ठी प्रजानस्य, चराचरस्य पालकः परमात्मा ॥

१७८ जो यह अप्रकट जानने वा न जानने योग्य नित्य उपादान कारण प्रकृति है उससे भिन्न वह व्यापक सृष्टिकर्ता (तद्विसृष्टः) प्रकृतिसहित लोकों में ब्रह्मा कहाता है। 'एवं रचनाशक्ति विशिष्टः सर्ग काले ब्रह्मा इत्युच्यते, तत्पूर्वं ब्रह्म' रचनाशक्तियुक्त ईश्वर नाम लोक में ब्रह्मा है और रचना के पहले ब्रह्म नपुंसकलिङ्ग है, सर्जनकाल में पुंलिङ्ग है।

१७७ सायणाचार्य ने यहां कूर्म को करण (साधन) माना है और कश्यप को सृष्टिकर्ता यह मूल शतपथ से विरुद्ध है क्यों कि 'यदसृजता ऽकरोत् तस्मात् कूर्मः' इस यौगिकार्थ से शतपथकार कूर्म को ही मुख्य सृष्टि का कर्ता मानते हैं उसकी पुष्टि में कश्यप का प्रमाण देते हुए कूर्म और कश्यप को एकार्थक कहते हैं। 'एतद्रूपङ्कृत्वा' इसका

१७८ ज्ञाऽज्ञौ द्वावजा वीशाऽनीशा वजाह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपोह्यकर्ताऽत्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥
श्वेताश्व. अ० १ मं. ९॥

१७९ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
ऋ. मं. १ सू. १६४ मं. २०

समाधान पूर्व में किया है कि 'रूपङ्कृत्वा' से प्रकृतिसहित कूर्म प्रजापति सृष्टि का कर्ता है यह अर्थ है। क्यों कि यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में 'अकायम्' पद से ईश्वर के शरीर धारण का त्रैकालिक निषेध है। दूसरा विचार यह कि 'असृजत्' क्रिया की पुनरावृत्ति शतपथकार ने की है परन्तु 'रूपं कृत्वा' को 'तद् यदकरोत् तस्मात् कूर्मः' के साथ न लिखा इससे स्पष्ट है कि इतना अंश शतपथकार का नहीं। एक प्रमाण अन्यभी है कि जहां शतपथ काण्ड ७ अ. ५ ब्रा. ४ में शतपथकार ने कूर्म शब्द के आठ अर्थ लिखे हैं वहां भी 'एतद्रूपं कृत्वा' वाला अर्थ नहीं है।

१७८ दो अज एक सर्वज्ञ दूसरा अल्पज्ञ, एक (ईश) स्वामी दूसरा अनीश तीसरा भोक्ता और भोगार्थ से युक्त अजा है भोक्ता अनन्त, सर्वव्यापक है, रोगादि से सृष्टि न करने से अकर्ता है तीनों मिल कर ब्रह्म कहाते हैं।

१७९ जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं, और (सनातनम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्नभिन्न होजाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ, इन तीनों के गुणकर्म और स्वभाव भी अनादि हैं।

१८० जन्माद्यस्य यतः वे० अ० १ सू. १

१८१ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।
योगद० । प्रथम समाधिपा० सू. २४

१८२ स हि सर्वकर्ता ॥ सांख्यद० अ० ३ सू० ५६ ॥

१८३ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्।

१८४ तस्य वाचकः प्रणवः ॥ योगद० प्रथमसमाधिपा० सू.२७

१८५ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ योगद० प्रथमसमाधिपा० सू. २८

१८६ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥

१८७ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुवा चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान होरहा है। स. प्र. अष्टमसमु. ॥

१८० जिस के होने से इस [जगत्] के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होते हैं [वह ब्रह्म है] उसीका दूसरा नाम कूर्म है।

१८१ अविद्यादि क्लेश, कुशल और अकुशल कर्म तथा उन कर्मों का फल वासना इनसे रहित जीव से भिन्न ईश्वर कहाता है।

१८२ कपिलमुनि कहते हैं कि वह ईश्वर सर्वज्ञ और सब का कर्ता है।

१८३ ईश्वर पूर्वमहर्षियों के भी गुरु है क्यों कि वह काल के बन्धन में कभी नहीं आता।

१८४ वाच्य ईश्वर का वाचक ओ३म् है।

१८८ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥
ऋ. मं. १० सू. १९० मं. १।२।३ ॥

१८९ सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मना नामरूपे व्याकरवाणि ॥ छा. ६।३।२ ॥

१९० तत् तेजोऽसृजत् ॥ छा. ६।२।१ ॥

१९१ सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ, तासुबीजमवासृजत् ॥
म. अ. १ श्लो. ८

---

१८६ इस प्रणव का जप अर्थात् उसके अर्थ का विचार है।

१८७ अभीद्धात् (जाज्वल्यमानात्) तपसः (अनन्त सामर्थ्यात्) तप इति पर्यालोचनम् इति सायणः। यदासावीश्वरः स्रष्टुमिच्छति तदा पर्यालोचनं करोति। तप इति पर्यालोचनमिति शास्त्रेषु निगद्यते ऋतम् (वेदम्) सत्यम् (त्रिगुणात्मिकां प्रकृतिम्) अध्यजायत ततः रात्रीः (महाप्रलयः) अजायत ॥ ततः, अर्णवः, समुद्रः। समुद्र इति-अन्तरिक्ष नामसु पठितं निघण्टौ। अन्तरिक्षम् - अजायत ॥ १।२।३ ॥

१८९ उस देवता (परमात्मा) ने विचारा कि मैं इन तीनों देवताओं (तेज, अप्, अन्न) में इस जीवात्मा के साथ अनुप्रवेश करके नाम-रूपों को प्रकट करूं।

१९० उस ब्रह्म ने तेज को उत्पन्न किया। सांख्यशास्त्र में इसी को महत्तत्व नाम से कहा।

१९१ वह परमात्मा उपादान कारण प्रकृति (माया) से ईक्षण के पश्चात् अनेक प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा करता हुआ सृष्टि

१९२ ता आपः सृष्ट्वाऽन्वैक्षत । तासु स्वां छायामपश्यत तामस्येक्षमाणस्य स्वयं रेतोऽस्कन्दत् तदप्सु प्रत्यतिष्ठत् ॥

गो० पू० भा० प्रपा० १ ब्रा. २

१९३ अद्भ्यः स्थावरजङ्गमो भूतग्रामः सम्भवति ।

१९४ सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोऽमयम् ॥

गो. ब्रा. पू. भा. प्रपा. १ ब्रा. ३९

१९५ वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगव एत इदं सर्वं समाप्याययन्त्ये-कमंस्थं भवति ॥ गो. पू. प्र. २ ब्रा. ९

की आदि में अप् तत्व को उत्पन्न कर उसमें इसने (बीज) उत्पादक शक्ति को रक्खा ।

१९२ कोमल स्त्री शक्ति और कठोर पुरुष शक्ति के संयोग से परमात्मा ने सृष्टि रची ।

१९३ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आदि सृष्टि अमैथुनी होती है अर्थात् सृष्ट्यारम्भ में अयोनिज शरीर उत्पन्न होते हैं प्रकृति और पुरुष का परमात्मा संयोजक और वियोजक है। 'उस समय जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के योग्य होते हैं ऐसे अनेक अयोनिज शरीर आदि सृष्टि में उत्पन्न होते हैं और जिन के कर्म जैसी सृष्टि में उत्पन्न होने योग्य होते हैं उनके योनिज शरीर होते हैं।

जलतत्व से (स्थावर) वृक्षादि और (जङ्गम) चलने फिरनेवाले प्राणी समूह उत्पन्न होते हैं अर्थात् जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं ।

१९४ यह सब चराचर प्रकृतिमय जगत् वायु जलादि पञ्चभूतों से बना है और इसका बनानेवाला ईश्वर है ।

१९५ वायु, जल और चन्द्रमा इनका नाम भृगु है येही वायु आदि सब पदार्थों के बढाने और शुद्ध करने हारे होते हैं ।

१९६ निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते।
सत्ता मात्रेण देवेन तथाचायं जगज्जनः ॥१॥
अत आत्मनि कर्तृत्वमकर्तृत्वञ्च संस्थितम्।
निरिच्छत्वादकर्ताऽसौ कर्ता सन्निधिमात्रतः ॥२॥

१९७ तत् सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्।
सांख्यद० अ० १ सू. ९६

१९८ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
सदाधारः पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋ. अ. ८ अ. ७ व. ३ मं १

---

१९६ उपर्युक्त दोनों कारिकायें महादेव वेदान्ती ने सांख्यवृत्ति में लिखी हैं (अर्थ) जैसे इच्छारहित चुम्बक के निकट लोहे के होनेमात्र से ही उस लोहे में सञ्चालन क्रिया होती है वैसे ईश्वर की सत्ता (विद्यमानता) मात्र से प्रकृति में सृष्टिरचना की सर्व क्रिया और चेष्टा हुआ करती है इस प्रकार ईश्वर में कर्तृत्व अकर्तृत्व दोनों हैं क्यों कि निरिच्छ होने से वह अकर्ता है और बिना उसकी सन्निधि (विद्यमानता समीपता के) प्रकृति कुछ भी नहीं करसकती इससे वह कर्ता है।

१९७ प्रकृति क्रियारहित है उसको क्रियाशक्ति ईश्वर की समीपता से प्राप्त होती है जैसे मणि को कांच की समीपता से सुरखी प्राप्त होती है। बिना उस ईश्वर की समीपता के प्रकृति करने में असमर्थ है। जैसे बिना हाथ के जीव उठा नहीं सकता इस लिये कहते हैं कि उठाना जीव का धर्म नहीं परन्तु हाथ में जीव के बिना क्रियाशक्ति नहीं इस लिये जीवात्मा को कर्ता माना जाता है। सिद्धान्त, प्रकृति में क्रिया स्वाभाविक नहीं किन्तु नैमित्तिक है।

१९८ "सृष्टि के प्रथम विद्यमान जगत् का एकमात्र पति हिरण्यगर्भ परमात्मा था उसीने द्युलोक और पृथ्वीलोक को धारण कर रक्खा है।

१९९ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्
कठोपनि० वल्ली ५ मं० १२

२०० अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते
कठोपनि० वल्ली ४ मं. १५

२०१ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्
श्वेताश्व. नि. अ. ३ मं. १९

२०२ न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च
श्वे. अ. ६ मं. ८

---

१९९ सब को वश में रखनेवाला परमात्मा एक जगत् के कारण प्रकृतिरूप बहुत प्रकार से करता है।

२०० वह परमात्मा न आकाश जिसका गुण शब्द है न वायु है न अग्नि है वह हाथ-स्पर्शरहित है, वह रसना का विषय नहीं, नित्य है वह नासिका का विषय नहीं अनादि और अनन्त है (महान) अति सूक्ष्म है, एकरस है, गतिरहित है, उसको जान कर मनुष्य मौत के मुख से छूट जाता है।

२०१ "परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सबका रचन-ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब जगत् को यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सब की बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् जानता है और सबको अवधिसहित जाननेवाला कोई नहीं उसी को सनातन सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं"।

२०२ "परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधक

२०३ एषोह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतो
मुखः ॥ श्वे. अ. २ मं. १६ ॥

२०४ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः
॥ य. अ. १७ मं. १९ ॥

२०५ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥
श्वे. अ. ३ मं. १७

दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति जिसमें अनन्त बल, अनन्त ज्ञान और अनन्त क्रियायें है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है"।

२०३ यही वे देव हैं जो दशदिक् स्वरूप, सर्व पूर्वजात तथा अन्तर्गर्भगत हैं। वे उत्पन्न होकर भी अजात हैं, भविष्य में उत्पन्न होनेवाले हैं। प्राणिमात्र के सर्वतोभाव से सम्मुख हैं अर्थात् जीवमात्र के सृष्टि, उत्पन्न, प्रलयकारक हैं।

२०४ सब जगत् में जिसका चक्षु तथा सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि भी हैं, जिस की दृष्टि में सर्वदृक्, सर्ववक्ता, सर्वाधारक और सर्वगत व्यापक है, वह अद्वितीय है, अनन्त बल और अनन्त पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् प्राप्त होनेवाले सुखदुःख-फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है।
जैसे "हिसि हिंसायाम्" इस धातु से सिंहः। और "कृती छेदने" धातु से तर्कुः सिद्ध है।

२०५ सब इन्द्रियों के गुणों का जिस में प्रकाश है, परन्तु सब इन्द्रियों से

२०५ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥
सामवेदस्योत्तरार्चिके त्रिकम् ॥ १२ ॥

२०७ बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥
मुण्डके. तृतीये. खं. १ मं. ७

२०८ तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥
य. अ. ४० मं. ५

२०९ कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽसृजत् ॥
अथर्व० कां० ८ सू. ५ मं. १४

अलग है, जो सब जगत् का प्रभु और रचयिता है जो, सब का बड़ा शरण है वही परमेश्वर है ।

२०६ जिस के समान कोई दिव्य पार्थिव पदार्थ नहीं है न हुआ और न होगा परमात्मा वही है ।

२०७ वह परमात्मा महान् अर्थात् सर्वव्यापक प्रकाशस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) जो अचिन्त्यरूप है, जिस के स्वरूप चिन्तन में पार न पा मन थक कर वहीं स्थिर होजाता है, जो सूक्ष्म से अति सूक्ष्म है, जो इन्द्रियारामों से दूर और सदाचारियों के निकट है, जो गुहारूपी बुद्धि में स्थित है ।

२०८ वह ईश्वर सब जगत् को यथायोग्य नियमपूर्वक चला रहा है परन्तु आप नहीं चलता क्योंकि निष्कम्प है वह दूर भी है और निकट भी है वह सब जगत् के भीतर और बाहर व्यापक है ।

२०९ "कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्त्या पश्यतीति पश्यः

२१० प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च । जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ २७॥ अ. कां. १७ मं. २७ ॥

२११ परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च । मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ अ. कां. १७ अनु. १ मं. २८

सर्वज्ञतया सकलं जगत् विजानातीति पश्यः निर्भ्रमतयातिसूक्ष्ममपि वस्तु यथार्थं जानात्येवातः पश्यक इति । आद्यन्तविपर्ययेणादिसेः सिंह कृन्तेस्तर्कुरित्यादिवत् "कश्यप" इति । "हयवरट्" अष्टा. अ. १ पा. १ सू. ६ अस्योपरि महाभाष्यम् । पश्यकः यह कश्यप से बना है । सर्वज्ञता से सकल जगत् को जानता है अतः ईश्वर पश्यः कहाता है । निर्भ्रमता से सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु जानने से पश्यक नाम है, इस में आदि अक्षर 'प' और अन्तिम अक्षर 'क' है दोनों के विपर्यय अर्थात् पश्यक यहां अन्त के 'क' वर्ण को आदि में और आदि के 'प' वर्ण को अन्त में करने से कश्यप शब्द बनता है । जैसे 'हिसि' हिंसायाम् इस धातु से सिंहः और कृती छेदने धातु से तर्कुः सिद्ध है इसी प्रकार कश्यप की सिद्धि जाननी चाहिये । अथवा दूसरा प्रकार यह है कि " कृआदिभ्यः संज्ञायां, वुन् ॥ उणादिपा० पा. ५ सू. ३५ कृ आदि धातुओं से परे सञ्ज्ञा (नाम) अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है । 'दृशिर्' प्रेक्षणे धातुः । वुन् पश्यादेशः । 'युवोरनाकौ' ॥ अष्टा. अ. ७ पश्य+अकः । शकन्ध्वादि के नियम से पररूप होकर पश्यकः । आदि अन्त के अक्षर विपर्यय से कश्यपः बनता है । जो मनुष्य परमेश्वरकृत नियमों पर श्रद्धा रखता है वह विजयी होता है ।

२१० कश्यप का अर्थ सर्वद्रष्टा है । मनुष्य सुकर्मों से सदा आनन्द भोगे ।
२११ आधिदैविक और आधिभौतिक क्लेशों से बचना चाहिये । (क.स.प.)

२१२ यतो अर्कं कश्यप रोचनावत्संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्तसाकम् ॥ अ. कां. १३ सू. ३ मं. १०

२१३ कण्वः कक्षीवान्पुरुमीढोऽगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥
अ. कां. १८ सू. ३ मं. १५ ॥

२१४ कालः प्रजा असृजत, कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥
अ. कां. १९ सू. ५३ मं. १०

२१४ विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा ॥
वै. अ. ७ आ. १ सू. २२

२१५ कारणे कालः ॥ वै. अ. ७ आ. २ सू. २५

(पञ्चमब्राह्मणे इतीश्वरविषयः)

---

२१२ कश्यप का अर्थ सर्वद्रष्टा परमेश्वर है।

२१३ यह बुद्धिमान्, शासन करनेवाला, सबका मित्र, [शिल्प और यज्ञादि में] अग्नि प्रकाश करनेवाला, सदा प्राणियोग (कश्यपः)सूक्ष्म दर्शी उत्तम व्यवहारवाला [ये सब गुणी पुरुष] हमारी रक्षा करें।

२१४ सृष्टि के पश्चात् ही परमात्मा रचनाओं और नियमों के कारण प्रसिद्ध होता है। २१४ कश्यप का अर्थ सर्वद्रष्टा परमेश्वर है।

२१४ व्यापक होने से आकाश और परमात्मा महत्व परिमाण भी नित्य हैं।

२१५ कारण में काल यह सञ्ज्ञा है। जीव, ईश्वर, प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं। सृष्टि का मुख्य निमित्त कारण ईश्वर, उपादान कारण प्रकृति (मादा) और काल दिशादि साधारण कारण हैं।



(इतीश्वरविषयः)



पञ्चमो आम्नणः (अथ जीवविषयः)

२१६ वृषा वै कूर्मो योषाऽषाढा ॥ श.कां.७ अ.५ प्र. ४ ब्रा.६

२१७ कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४

२१८ इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥

न्या. अ. १ सू. १०

२१९ प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः

सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ।

वै. अ. ३ आ. २ सू. ४

२२० युगपज्ज्ञानाऽनुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् । न्या.अ.१आ.१सू.१६

२२१ द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२०॥

योगद० २ साधनपा० सू. २०

---

२१६ वीर्यसेचनसमर्थ युवा पुरुष कूर्म कहाता है ऐसा—दृढाङ्ग कूर्मेन्द्र यजमान वीराङ्गना भीमा अषाढा पत्नीके दक्षिण भागकी ओर यज्ञमें बैठे।

२१७ कश्यप अर्थात् ज्ञानवैराग्यसम्पन्न, ज्ञानी, उत्तम विद्वान्, सूक्ष्मदर्शी, उत्तम व्यवहारवाला ब्रह्मा कश्यप कूर्म कहाता है।

२१८ जीव के लक्षण — (इच्छा) राग (द्वेष) वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ सुख-दुःख (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा कहाता है।

२१९ (प्राण) भीतर से वायु को निकालना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन, विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (अन्तर विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर-पीडादि विकारों का होना, सुखदुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

२२० जिससे एक कालमें दो पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता उसको मन कहते हैं।

२२१ द्रष्टा, ज्ञानस्वरूप और शुद्ध भी (बुद्धिकृत प्रत्ययों के अनुसार) देखने जाननेवाला है।

२२२ असङ्गोऽयं पुरुषः ॥ सांख्यद० अ. १ सू १५ ॥

२२३ जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः ॥सां.अ.६सू.५०

२२४ जडाऽप्रकाशयोगात्प्रकाशः ॥ सां० अ० १ सू. १४५

२२५ जीवो हि नाम चेतनः शरीराऽध्यक्षः प्राणानां धारयिता। वे० अ० १ पा० सू० ६ पर शाङ्करभाष्यः ॥

२२६ स्मरणन्त्वात्मनोज्ञस्वाभाव्यात् ॥ न्या. अ. ३ सू. ४२

२२७ इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः ॥वै.अ.३

२२८ क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषो गन्ता साक्षी धाता वक्ता योऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते ॥ दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहाऽन्वक्षं सत्वरजस्तमोभिर्देवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ॥ सु. शा. अ. ३ सू. ३ ॥

---

२२२ यह पुरुष तो सङ्गरहित है संगवाले पदार्थों की व्यवस्था बदलती है।

२२३ जड़ से भिन्न चिद्रूप जड़ को प्रकाशित करता है।

२२४ जड़ में (प्रकाश) ज्ञान के अयोग से (पुरुष) (प्रकाश) ज्ञानस्वरूप है।

२२५ जीव उस वस्तु का नाम है जो चेतन शरीर का अध्यक्ष प्राणों का धारण करनेवाला है।

२२६ ज्ञाता का स्वभाव होने से स्मरण भी आत्मा का धर्म है।

२२७ इन्द्रियों के अर्थों की प्रसिद्धि (हेतुः) साधक है, इन्द्रियार्थों से अन्य अर्थ का।

२२८ क्षेत्रज्ञ पुरुष जीवात्मा (वेदयिता) ज्ञाता, (स्पष्टा) छूनेवाला, (घ्राता) सूंघनेवाला, एकशरीर से दूसरे में जानेवाला (द्रष्टा) देखनेवाला (श्रोता) सुननेवाला (रसयिता) स्वाद लेनेवाला (गन्ता) चलनेफिरने

२२९ वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
जीवो भागः स विज्ञेयः सचानन्त्याय कल्पते ॥ श्वे.अ.५ मं.९

२३० शुक्रशोणितजीवसंयोगे तु खलु कुक्षिगतगर्भसञ्ज्ञा भवति
च० सं. अ. ४ शा. स्था.

२३१ तद्धृदयं विशेषेण चेतनाधिष्ठानम् ॥ सु. शा. स्था. अ. ४

२३१ हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम् ॥
सुश्रुत० शा० अ० ४ श्लो० ४४

२३२ आत्मायमात्मनि गतो हृदयेऽपि सूक्ष्मः। बृ.सं.अ.७५श्लो.४

२३३ न शक्यते चक्षुषा द्रष्टुं देहे सूक्ष्मतमो विभुः ।
दृश्यते ज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुभिरेव च ॥ सुश्रु.शा.अ.६श्लो.५६

वाला (साक्षी) इन्द्रियों का साक्षी (धाता) शरीर धारण करनेवाला (वक्ता) वाणीसे बोलनेवाला जो इन पर्याय वाचक नामोंसे कहा जाता है वह दैवसंयोगसे अविनाशी, अव्यय और अचिन्त्य होकर सूक्ष्म शरीरके सहित गर्भाधान समय तत्क्षण सत् रजस् तम और देव असुर अन्य भावोंसहित वायु से प्रेरित हो गर्भाशय में ठहरता है।

२२९ यहां जीव की सूक्ष्मता का वर्णन है कि वह बाल के अग्रभाग के यदि १०० टुकडे किये जाय और फिर उसके भी १०० टुकडे अर्थात् बाल के हजारवें भाग के बराबर वह सूक्ष्म है और मुक्ति के लिये समर्थ है।

२३० वीर्य और रज-द्वारा जीव के संयोग होने पर माता की कुक्षि में प्राप्त जीव की गर्भ सञ्ज्ञा होती है।

२३१ सुश्रुत में कहा है कि जीव के रहने का स्थान विशेष कर शरीर में हृदय है।

२३२ वराहमिहिरने भी अपनी बृहत्संहिता में लिखा है कि आत्मनिगत यह जीवात्मा हृदय में सूक्ष्म है।

२३३ सुश्रुतकार कहते हैं कि जीवात्मा आंख से देखने में नहीं आसकता

२३३ अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः ॥ श्वे. अ. ५ मं. ८
"अङ्गुष्ठपरिमितं हृदयदेशापेक्षया" तु. स्वा.

२३४ तदभावादणु मनः ॥ वै. अ. ७ आ. सू. २३

२३५ एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्योयस्मिन्प्राणः पञ्चधासंविवेश प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥
मुण्ड. ३ खं. १ मं. ९

२३६ सप्तदशैकं लिङ्गम् ॥ सां. अ. ३ सू. ९

२३७ दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥
ऋ. मण्ड. ५ सू. ७८ मं ९

२३८ सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ।
तैत्तिरी० आनन्द व० अनु० १

क्यों कि वह देह में इन्द्रियों के साथ विभु और सूक्ष्मतम है, वह ज्ञानचक्षु और तपरूपी चक्षुओं से दीखता है।

२३४ सर्वव्यापक न होने से (मनः) मनवाला आत्मा जीवात्मा अणुत्व परिमाणवाला है।

२३५ जीवात्मा अणुपरिमाणवाला है वह शुद्धचित्त से जाना जाता है उस में प्राण आदि पाँच प्रकार के प्रवेश किये हुए हैं प्राणों के साथ सारी प्रजा का चित्त ओतप्रोत है जिस के शुद्ध होजाने पर जीव अपने स्वरूप को जानता है।

२३६ सत्रह का (अर्थात् पञ्चतन्मात्रा, दशइन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से) एक लिङ्गदेह होता है।

२३७ चान्द्रमास के लेखा से वह जीवात्मा १० मास गर्भाशय में रहकर जन्म धारण करता है। जीवात्मा अक्षत अर्थात् अविनाशी है। जीवन्ती एक औषध का नाम है।

२३९ रसो वै सः । रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ॥
तैत्तिरीयोपनि. ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवा. ७ मं. ११
२४० भेदव्यपदेशाच्च वे. १।१।१७ ॥
२४१ व्यवस्थातो नाना ॥ वै. अ. ३ आ. २ सू. २०
जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ सां० अ० १ सू० १४९
२४२ आयुर्वेदशास्त्रेष्वसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च, तिर्यग्योनि-मानुषदेवेषु सञ्चरन्ति ॥१८॥ धर्माधर्मनिमित्तं त एतेऽनुमा-नग्राह्याः परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः शाश्वता लोहितरेतसोः सन्निपातेष्वभिव्यज्यन्ते ॥१९॥
सुश्रु० शा० स्था० अ० १ सं. १६ ॥

२३८ वह मुक्तात्मा उस व्यापकरूप ब्रह्म में स्थित हो कर उस 'विपश्चित्' अनन्त विद्यायुक्त ब्रह्म के सब कामों को प्राप्त होता है अर्थात् जिस २ आनन्द की कामना करता है उस २ कामों को प्राप्त होता है।
२३९ जीव रस अर्थात् परमात्मा को प्राप्त होकर आनन्दयुक्त होता है।
२४० जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है यदि ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है। यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और होने वाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता इस लिये जीव और ब्रह्म एक नहीं हैं।
२४१ व्यवस्था से जीव अनेक हैं।
२४२ जन्मादि व्यवस्था से पुरुष (जीव) अनेक हैं।
२४३ आयुर्वेद में जीवों को सर्वगत (सर्वव्यापी) नहीं कहते हैं, हां नित्य कहते हैं। आयुर्वेद में असर्वगत जीव नित्य हैं, वे धर्म और अधर्म के निमित्त से तिर्यग्योनि (पशु आदि) एवम् मनुष्य देह तथा देवों के शरीर में विचरते हैं॥ परमसूक्ष्म वे जीवात्मा अनुमानग्राह्य और चेतन तथा नित्य और मातापिता के रजोवीर्य से प्रकट होते हैं।

अथ पञ्चमो ब्राह्मणे जीवविषये पुनर्जन्मविषयः

२५० आत्मा मातुः पितुर्वा यः सोऽपत्यं यदि सञ्चरेत् ।
द्विविधं सञ्चरेदात्मा सर्वो वाऽवयवेन वा ॥ १ ॥
सर्वश्चेत्सञ्चरेन्मातुः पितुर्वा मरणं भवेत् ।
निरन्तरं नाऽवयवः कश्चित् सूक्ष्मस्य चात्मनः ।
बुद्धिर्मनश्च निर्णीते, यथैवात्मा तथैव ते ।
येषाञ्चैषा मतिस्तेषां, योनिर्नास्ति चतुर्विधा ॥
विद्यात्स्वाभाविकं षण्णां धातूनां यत्स्वलक्षणम् ।
संयोगे च वियोगे च, तेषां कर्मैव कारणम् ॥

"आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ॥" न्याद० । आत्मा नित्य है इसी लिये पुनर्जन्म सिद्ध है ।

२५० वैदिक सिद्धान्त यही है कि जीवतत्त्व अनादि अविनाशी और अमृत है । एक शरीर से दूसरे में जाता है । अब जो लोग ऐसा नहीं मानते उनका भी कुछ विचार लिखा जाता है, वे मानते हैं कि मातापिता के आत्मा से सन्तान के शरीर में आत्मा आजाता है बाहर से नहीं आता । इसके प्रश्नोत्तर चरकसंहिता अ. ११ सू. स्थान में श्लो. ९ से १६ तक है वहां यह उत्तर है कि यदि बाहर से जीव आकर गर्भ में प्रवेश नहीं करता तो फिर दो ही प्रकार हैं । पहिला यह कि मातापिता का आत्मा पूर्ण सब सन्तान के शरीर में चला जाय अथवा कुछ चला जाय और कुछ (अवयव) टुकड़ा मातापिता के शरीर में रहजाय । प्रथम पक्ष माना जाय तो मातापिता जीवित नहीं रह सकते, यदि दूसरा पक्ष माना जाय तो सूक्ष्म आत्मा का कोई निरन्तर (अवयव) टुकड़ा नहीं है यह तो निराकार है इस लिये यह भी नहीं होसकता । यदि बुद्धि और मन को कहो तो जो दोष आत्मा के विषय में कहे हैं वेही बुद्धि और मन के विषय में हैं ।

[illegible]

[illegible] [illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible] में [illegible] पृथ्वी [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] ये [illegible] हैं [illegible], जो कि [illegible] है। [illegible] आकाश और [illegible] ये [illegible] धातु हैं, [illegible] पृथिव्यादि चार धातुओं का स्वाभाविक [illegible] है [illegible] जड़ है। उनका संयोग-वियोग केवल जीवात्मा के [illegible] बिना असम्भव है।

२८१ पर निर्वाण अर्थात् [illegible] जो [illegible] वह जीव को उत्पन्न करता है यह भी यथार्थ नहीं, क्योंकि जीवतत्व अर्थात् चेतना धातु स्वरूप से अनादि है उसका दूसरे से उत्पन्न होना असम्भव है। हां पर जो परमात्मा उसको हेतु कहते हो तो ऐसा परनिर्वाण हम भी मानते हैं कि जीवतत्व के अनादि होने पर भी ईश्वर हेतु कर्त्ता है अर्थात् प्रेरक है। जीव फल भोगने में परतन्त्र है।

२८२ सत और असत की चार प्रकार से परीक्षा कही है, परन्तु नास्तिकवाद यह कुछ भी मानने को तैयार नहीं, उसका कथन है कि न परीक्षा है न परीक्ष्य है, न कर्त्ता है, न कारण है, न देव है, न ऋषि हैं न सिद्ध हैं, न कर्म है और न कर्मफल है।

२८३ (यदृच्छा) बिना कारण इत्तिफाक से ही यौव हो जाती है, नास्तिक वाद में कोई अनादि आत्मा नहीं है यह एक प्रकार का मिथ्या हठ है। पातकों में बड़ा पातक है।

२५४ [illegible] विमुच्यैनां [illegible] बुधः ।
सतां बुद्धिप्रदीपेन पश्येत्सर्वं यथायथम् ॥
[illegible] ११ । [illegible] १९

२५५ प्राणापानौ निमेषोन्मेषौ जीवनं मनसो गतिः ।
इन्द्रियान्तरसंचारः प्रेरणं च धारणं यत् ॥७०॥
देशान्तरगतिः स्वप्ने पञ्चत्वग्रहणं तथा ।
दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सव्येनावगमस्तथा ॥७१॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः ।
बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारो लिङ्गानि परमात्मनः ॥७२॥

२५४ विद्वान् को उचित है कि कुमार्ग में प्रवृत्त ऐसी बुद्धि को छोड़कर सज्जनों की प्रदीप रूपी बुद्धि से सत्य और असत्य का यथायथ जाने ।

२५५ जीव के लक्षण (प्राण) भीतर से वायु को लेना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष) आंख को नीचे ढांकना आदि (जीवन) प्राण का धारण करना, मन का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना (इन्द्रियान्तर संचार) अर्थात् इन्द्रियान्तर विकार जिससे नींबू आदि का खट्टा रस प्रथम कभी चखा है, फिर दुबारा उसको देखने से जिह्वा में स्मरण हो पानी आजाता है, उचित तो यह था कि आंख से देखा था अतः आंख में ही जल आता परन्तु आंख और जिह्वा से भिन्न एक स्मर्त्ता आत्मा अलग है । (प्रेरणा) (धारणा) स्वप्न-सोने के समय मन का एक स्थान से दूसरे में जाना (पञ्चत्व का ग्रहण) पञ्चत्व को प्राप्त होना । (दाहिने आंख से देखी वस्तु को बाईं आंख से भी देखना) (इच्छा) राग (द्वेष) घृणा (सुख) (दुःख) (प्रयत्न) पुरुषार्थ (चेतना) ज्ञान (धृतिः) धैर्य (बुद्धि) निश्चय करना (स्मृति) स्मरण (अहङ्कार) मैंपना ये सूक्ष्म जीवात्मा के चिह्न (कर्म और गुण) हैं ॥ इन से जीवात्मा की पहिचान होती है ॥

तस्मात् संमुपलभ्यन्ते लिङ्गान्येतानि जीवतः ।
न मृतस्यात्मलिङ्गानि तस्मादाहुर्महर्षयः ॥७३॥
शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम् ।
पञ्चभूतावशेषत्वात् पञ्चत्वं गतमुच्यते ॥७४॥
च. सं. शा. स्था. अ. १ श्लो. ७०, ७१, ७२, ७३, ७४
आत्मलिङ्गानि प्राणादीनि ॥ न्यायद० ॥

॥ इति जीवविषये पुनर्जन्मविषयः समाप्तः ॥

जिस हेतु जीव शरीर में रहने से पूर्वोक्त प्राण अपानादि चिन्ह होते हैं और जब जीवात्मा कर्मानुसार परमात्मा की व्यवस्था से एक शरीर से निकल दूसरे शरीर में चला जाता है उस समय मृत शरीर में ये लक्षण नहीं पाये जाते, इस लिये महर्षि लोग प्राणादि सब लक्षण जीव के ही कहते हैं मृतक शरीर के नहीं ।

जीवात्मा एक शरीर से जब दूसरे शरीर में चला जाता है, तो जिस प्रकार प्रत्यक्ष में जिस घरमें मनुष्य हों और वे सब उस गृह को खाली कर दूसरे में चले जायें तो वह पहिला घर शून्य होजाता है इसी प्रकार जीवात्मा के निकल जाने पर वह शरीर (शून्यागार) पड़ा रह जाता है उस समय वह शरीर आंख, नाक, कान आदि इन्द्रियों के रहते हुए भी कुछ भी चेष्टा नहीं करता, क्यों कि चेष्टा करनेवाला जीवात्मा नहीं है, इस प्रकार जीवात्मा के नित्य होने से एक शरीर से दूसरे शरीर में आने जाने से उसका पुनर्जन्म सिद्ध है ।

जीवविषय में पुनर्जन्म विषय समाप्त

पञ्चमब्राह्मणे जीवविषये प्रकृतिविषयः

(तत्र प्रकृतेर्लक्षणम्)

'रसो वै कूर्मः' ।। शतपथ काण्ड ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा० १

२५६ सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ।।

साङ्ख्य दर्शन । सू० ६१

२५७ अव्यक्ताज्जायते बुद्धिर्बुद्ध्याहमिति मन्यते ।।
परंखादीन्यहङ्कारादुत्पद्यन्ते यथाक्रमम् ।। ६६ ।।
(चरक संहिता) शा० स्था० । अ० १ । श्लो० ६६

शतपथ काण्ड ७ । अ० ५ । प्र० ४ ब्रा. १ में 'रसो वै कूर्मः' कूर्म का अर्थ रस इत्यादि कहा है । रसात्मक द्रव्यों की उत्पत्ति का मूल प्रकृति है अतः प्रकृति का लक्षण लिखते हैं जैसे

२५६ "(सत्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जडता तीन वस्तु मिल कर जो एक संघात है इस का नाम प्रकृति है उस से महत्तत्व बुद्धि उस से अहङ्कार उस से पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और १० दश इन्द्रियां तथा ११ वां मन पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये चौबिस और पचीस वां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है" । स० प्र० समु० इन में प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल भूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति का उपादान कारण और न किसी का कार्य है।

२५७ चरक में भी ऐसा ही कहा है कि अव्यक्त अर्थात् प्रकृति से (बुद्धि) महत्तत्व बुद्धि उत्पन्न होती है । बुद्धि से जीव 'अहम्' मैं ऐसा मानता है।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।

वे० अ० १ पा० ४ सू० २३ ।

२५८ प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ यो० सा० पा० सू० १८ ॥

२५९ "तम आसीत्०" ॥ ऋ० मं०१० । १२९ । मं. १० ॥

२६० कामस्तदग्रे समवर्तत०॥ ऋ. मं. १० । १२९ । मं. ११ ॥

२६१ सोऽहङ्कारं जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ।

(सू० सि० भू० श्लो० २००)

२६२ अभिमानोऽहङ्कारः ॥ सां. अ. २ सू. १६ ॥

२६३ महदाख्यं कार्यं तन्मनः ॥ सां. । अ. २ सू. ७१ ॥

२६४ संकर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु बीजमवासृजत् ॥१३॥

(सू सि. गोलाध्याये श्लो. १३)

प्रतिज्ञा और दृष्टान्त में बाधा न आने से त्रिगुणात्मक प्रकृति भी जगत् के जन्मादि का कारण है ।

२५८ प्रकाश, क्रिया और स्थिति स्वभाववाला, [पञ्च] पञ्चभूत स्वरूप और इन्द्रिय स्वरूप भोग और मुक्ति प्रयोजनवाला [पदार्थ] दृश्य है ।

२५९ प्रलयावस्था में अन्धकार था ।

२६० महत्तत्त्व के पश्चात् (काम) अहङ्कार उत्पन्न हुआ, प्रकृति से जगदुत्पत्ति में पूर्व कल्प कृत कर्म हेतु होते हैं ।

२६१ उस प्रभु ने जगत् के सर्जन निमित्त अहंकार तत्त्व रूप ब्रह्मा को उत्पन्न किया, पांच स्थूल भूतों को ब्रह्मा और अहंकार कहते हैं ।

२६२ अभिमान करना अहङ्कार का लक्षण है ।

२६३ महत् नामक पहिला कार्य है वह मननात्मक (बुद्धि-शुद्धि) है ।

२६४ आदि में सङ्कर्षण ने प्रकृति के पहिले परिणाम (अप्तत्त्व) महत्तत्त्व को रचकर उस में (बीज) उत्पादक शक्ति रचा ।

२६५ [illegible] ॥

२६६ [illegible] ।

([illegible])

२६७ मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ सां० अ० १ सू० ६७ ॥

२६८ विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥

(यो० सा० पा० सू० १९)

२६९ प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम् ॥ सां० अ० ५ सू० ७२ ॥

२७० सदकारणवन्नित्यम् ॥ वै० अ० ४ आ० १ सू० १

२७१ तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥ वै० अ० ४ आ० १ सू० १

---

२६५ यह सीन [illegible] गोलाकार [illegible] भीतर अन्धकार से आच्छादित अन्धकार सहित आकाश में सान के चक्रवाले गोले के समान प्रकट हुआ ।

२६६ और सूक्ष्म [illegible] (अलिङ्ग) आवरण है ।

२६७ मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता ।

२६८ [illegible] अर्थ– विशेषों अविशेषों लिङ्गमात्रों और अलिङ्गों को गुणों के पर्व (अवस्था भेद) कहते हैं । आकाशादि पांच स्थूलभूत श्रोत्रादि ५ ज्ञानेन्द्रिय वाणी आदि ५ कर्मेन्द्रिय और १ मन ये षोडश विकार विशेष कहाते हैं । आकाशादि के कारण सूक्ष्म भूत (तन्मात्रा) अपने २ से पहले २ के लक्षण मिलकर १ । २ । ३ । ४ । और ५ लक्षणों वाले शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये पांच और ६ ठा अहङ्कार ये छ अविशेष कहाते हैं । महत्तत्व के लिङ्ग और प्रकृति को अलिङ्ग कहते हैं ।

२६९ भगवान् कपिल मुनि कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त अन्य सब कार्य पदार्थ अनित्य हैं ।

२७० जो सत् विद्यमान हो, और जिस का अन्य कोई कारण न हो उसको नित्य कहते हैं जैसे प्रकृति ।

२७१ उस कारण का कार्य (घटपटादि पदार्थ, लिङ्ग) [चिह्न] है ।

२७२ कारणाभावात् कार्याभावः ॥ वै. अ. ४ आ. सू. १

२७३ न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परं किञ्चनास ॥

ऋ. १० । १२९ । २

२७४ तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।

तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥

ऋ. मण्ड. १० । १२९ । मं. १० ॥

२७५ कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥

(ऋ. मं. १० । १२९ । मं. ११)

(इति शतपथब्राह्मणस्य सप्तमकाण्डे पञ्चमो ब्राह्मणः समाप्तः)

---

२७२ कारणके अभावसे कार्य नहीं होता है। २७३ का अर्थ अन्यत्र आ चुका है।

२७४. प्रलयकालमें अन्धियारा रहता है और यह सब चिन्हरहित अदृश्य जल सा अन्धियारे में आच्छादित रहता है। जैसे जल वाष्प रूप हो कर आकाश में अदृश्य अप्रकेत होजाता है वैसे जगत् भी अव्यक्त भाव में रहता है जो जगत् तुच्छ अर्थात् सूक्ष्म अव्यक्त भावापन्न तम से आच्छादित होता है वह एक अन्धकारावृत अवस्था के पश्चात् महत्तत्त्व रूप से उत्पन्न होता है।

२७५. [तदग्रे कामः समवर्तत] उस महत्तत्व के पश्चात् काम— अहङ्कार होता है उसी को मन कहते हैं (मनसः रेतः प्रथम यत् आसीत्) उस मन का बीज जो प्रथम था [कवयः मनीषा हृदि प्रतीष्य] विद्वान् लोग बुद्धि से हृदय में विचार करके [असति सतो बन्धुं निरविन्दन्] असत् अप्रतीयमान अवस्था में सत्— प्रतीयमान जगत् के— बान्धने वाले कर्म को जानते हैं अर्थात् प्रकृति से जगदुत्पत्ति में पूर्व कल्पकृत कर्म हेतु होते हैं।

पञ्चम ब्राह्मण समाप्त

॥ अथ सप्तमकाण्डे षष्ठो ब्राह्मणः ॥

२७६ स यः स कूर्मोऽसौ आदित्यः । अमुमेवैतदादित्यमुपदधाति । तम्पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुपदधात्यमुं तदादित्यं पुरस्तात् प्रत्यञ्चं दधाति । तस्मादसावादित्यः पुरस्तात् प्रत्यङ् धीयते दक्षिणतोऽषाढायै वृषा वै कूर्मो योषाऽषाढा दक्षिणतो वै वृषा योषामुपशेतेऽरत्निमात्रेऽरत्निमात्राद्धि वृषा योषामुपशेते सैषा सर्वासामिष्टकानां महिषी यदषाढा तस्यै दक्षिणतः सन्त्सर्वासामिष्टकानां दाक्षिणतो भवति ॥६॥ (श० कां० ७ । अ० ५ । प्र० ४ ब्रा० ६)

२७६ 'सः' प्रकृतो 'यः' कूर्मः अस्ति असौ आदित्यः । आचार्य पूर्व कह चुके हैं कि "अस्य यदुत्तर ऽ सावौः" नीचे ब्रह्माण्डान्तर्गत अधर कपाल पृथिवी उसके ऊपर द्युलोक जहां कि सूर्य है, मध्य में अन्तरिक्ष है। आचार्य यज्ञारम्भ से पूर्व कूर्म शब्द का अर्थ आदित्य [सूर्य] करते हुए यज्ञ में आदित्य के उपधान को कहते हैं 'अमुम्' 'एव' 'एतत्' 'आदित्यम्' 'उपदधाति' यज्ञ में इसी आदित्य का उपधान यजमान करे । क्योंकि 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते' । मनुजी लिखते हैं कि अग्नि में होम की हुई आहुति आदित्य अर्थात् सूर्यलोक को पहुंचाती है मनुस्मृति में यह भी है कि 'उदिते जुहोति' 'अनुदिते जुहोति' समयाध्युषिते जुहोति' ॥ सूर्योदय में होम करे अथवा (उषः काल) (समयाध्युषित) में करे परन्तु उत्तम पक्ष सूर्योदय में ही करना है । और उसी पक्ष को यहां रक्खा गया है। उस आदित्य के प्रकाश को यजमान पश्चिम बैठ कर धारण करे! अर्थात् पूर्वाभिमुख बैठे । तस्मादादित्यादि का यह अर्थ कि जब यज्ञ हो, उस समय अषाढा के दक्षिण भाग में यजमान आदित्य के प्रकाश को धारण करे आचार्य ने ऊपर कूर्म शब्द का आदित्य अर्थ किया है अब यहां उसी का दूसरा अर्थ

अथोपधान मन्त्राः

२७७ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ य. अ. १३ मं. ४६ ॥

२७८ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ य. अ. ३६ मं. २४

करते हैं कि "वृषा वै कूर्मो योषाषाढा"। यौगिक अर्थ में कूर्म का अर्थ युवा वीर्य सेचन समर्थ पुरुष है और योगरूढि अर्थ में कूर्म यजमान का नाम है जो इन्द्ररूप क्षत्रिय राजा हो अर्थात् प्रजा जनरक्षक, स्वाध्यायशील दानी, यज्ञकर्ता और विषयों में न फँसनेवाला ऐसे कूर्म नामके ऋषि इस ब्राह्मकल्प में हुए हैं उन का वंश अद्यावधि भारत के कोने २ में कूर्म नाम से विद्यमान है। यहां पर आचार्य का कथन है कि कूर्म यजमान अपनी अषाढा पत्नीसहित यज्ञ में बैठे। उत्तर भाग में अषाढा और दक्षिणभाग में कूर्म यजमान का आसन हो। ऐसा नियम क्यों है, इस पर कहते हैं कि विवाह के पश्चात् स्त्रीपुरुषको गर्भाधान के समय इसी प्रकार से सन्तानोत्पत्ति का नियम शास्त्र में हैं। और इसी लिये स्त्री (पत्नी) पुरुषकी अर्द्धाङ्गिनी कही गयी है 'दक्षिणतो वै वृषा योषामुपशेतेऽरत्निमात्रे' यज्ञ में भी पति-पत्नि पास २ बैठकर यज्ञ करें। आचार्य ने इस यज्ञका फल वर्षा होना लिखा है इस का नाम कूर्म यज्ञ है। यहां से आगे कूर्म यज्ञ का विषय हैं "सैषा सर्वासामिष्टकानां महिषी यदषाढा" अर्थात् अषाढा जो क्षत्रियपत्नी अथवा ब्राह्मणादि वर्णस्था वीराङ्गना भीमा ही सब इष्टकाओं में बैठ सकती है।

२७८ का अर्थ तच्चक्षुर्देवहितम् इस मन्त्र से यजमान सूर्यावलोकन करे।

२७९ मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां
मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां
मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी
भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

आश्वला० कण्डिका २१ सू. ४

२८० असौ आदित्य इन्द्रः । एषः प्रजापतिः ॥

कृ. य. तै. सं. अष्टक ५ प्र. ७ अ. १

अग्न्याधानमन्त्रः

२८० ओ३म् भूर्भुवःस्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा तस्या-
स्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायाऽऽदधे ॥

य. अ. ३ मं. ५

२८० अनक्षेरणादूर्ध्वं ध्रापणं विधत्ते । अश्वमवघ्रापयत्यसौ वा
आदित्य इन्द्र एषः प्रजापतिः । प्राजापत्योऽश्वस्तमेव
साक्षाद्दृनक्षाति ॥

इति शतपथब्राह्मणस्य सप्तमकाण्डे षष्ठो ब्राह्मणः समाप्तः

---

२७९ २८० मयि सूर्यो भ्राजो दधातु० सूर्य अपने गुणों को मुझ यजमान में धारण करे अर्थात् सूर्य के तेजादि गुणों को यजमान अपने में धारण करे यही आदित्य का उपधान है।

२८० यह जो आदित्य अर्थात् सूर्य है वही इन्द्र है उत्पादक शक्तिवाला होने से यह प्रजापति है एवम् आदित्य के समान गुणकर्मस्वभाववाला होने से यजमान कूर्म भी इन्द्र है।

२८१ में अग्नि का आधान है।

२८२ इन्द्र घोडे को समृद्धशाली करता है।

षष्ठ ब्राह्मण समाप्त

अथ सप्तमो प्रमाणः

२८१ यद्वेव कूर्ममुपदधाति । प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति प्राणमेवै तदुपदधाति तं पुरस्तात् प्रत्यञ्च प्राणं दधाति तस्मात् पुरस्तात् प्रत्यङ् प्राणो धीयते, पुरुषमभ्यावृत्तं यजमाने तत् प्राणं दधाति दक्षिणतोऽषाढायै ॥ ७ ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ७

२८२ "प्राणिभिरेव प्रजानामुत्पादनात्" इति सायणभाष्यम्

२८१ यज्ञ में कूर्म का उपधान करे। इस से पूर्व ६ छठे ब्राह्मण में कूर्म शब्द का आदित्य अर्थ आचार्य ने किया है। आदित्य के तेजादि गुणों को यजमान अपने में धारण करे यही आदित्य का उपधान है परन्तु सायणाचार्य कुछ और ही अर्थ करते है कि 'विप्रकृष्टः आदित्यः' सूर्य पृथिवी से बहुत दूर है 'आदित्यात्मकं मण्डलाकार साम्यात्" अर्थात् यज्ञ में कूर्म (कच्छप) का (उपधान) स्थापन आदित्यमण्डल के गोलाकार की समता में है जैसे आदित्य गोल वैसे ही कूर्म (कच्छप) गोल है। यह अर्थ मूल शतपथ से विरुद्ध है। प्राण ही कूर्म है। प्राण ही सम्पूर्ण प्रजाओं को उत्पन्न करता है इस अर्थ से स्पष्ट है कि आचार्य यहां प्राण का अर्थ उत्पादक शक्तिवाला सूर्य कहते हैं। यह प्राण नामक सूर्य(जिसका स्थान द्युलोक है)पूर्व दिशा में उदय होकर पश्चिम को धारण करता है। वेद में इस का नाम 'सप्ताश्व' है सात किरणोंवाला होने से सप्ताश्व नाम है। वर्षाऋतु में आकाश में ये सात रंगवाली किरणें प्रत्यक्ष दीखाते हैं जो गोलाकृति में धनुष् की आकार में होती हैं इसी का नाम इन्द्र धनुष है। इन्द्र अर्थात् सूर्य का धनुष। सूर्य का धनुष। अषाढा के दक्षिण ओर बैठा हुआ यजमान अपने में पुरुषत्वयुक्त सूर्य को धारण करे।

२८२ आचार्य यहां कूर्म शब्द का प्राण अर्थ करते हैं जिस का मुख्यार्थ सूर्य है प्रलयावस्था में प्रकृति का नाम वेद में 'स्वधा' है, स्वधा का

२८३ आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः प्रश्नोपनि. प्रश्न १ मं. ५

२८४ प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलᳪ सत्यादो जीयः ॥ श. कां. १४ अ. ८ ब्रा. १ कं. ६।७ ॥

२८५ प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी गो.ब्रा.उ.प्रा.प्र. २ ब्रा. १

२८६ प्राणो वाऽस्य स रम्याः तनूः प्राणमेवाऽस्मिन्नेतं मध्यतो दधाति ॥ श. कां ७ अ. ४ प्र. ३ ब्रा. १७ ॥

२८७ एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥

मुण्डकोपनि. प्रथम खं. मं. ३

अर्थ प्रकृति का जीवप्राण सहित कारणावस्था में रहना है। प्राणियों में ही प्रजाओं की उत्पत्ति होने से कूर्म का अर्थ प्राण अथवा प्राणी है। प्राण सञ्ज्ञक कूर्म से हुई सृष्टि यजमानकी कूर्म वंशीय सृष्टि है।

२८३ महर्षि पिप्पलाद का उत्तर। आदित्य अर्थात् सूर्य का नाम प्राण है, सृष्टि में सूर्य पुरुषशक्ति और चन्द्र स्त्रीशक्ति है अर्थात् स्त्री चन्द्र और पुरुष सूर्य है दोनों के संयोग से जो प्रजोत्पत्ति होती है वही यजमान कूर्म की कूर्मवंशीय प्रजा कहाती है।

२८४ प्राण का अर्थ बल है वह बल प्राण में रहता है, बल ओज है शरीर में ओज न रहे तो मनुष्य मर जाता है। बली पुरुष क्षत्रिय का नाम ही कूर्म है। हृदय में ईषत् पीत शुद्धरक्त का नाम ओज है।

२८५ प्राणापानावेवाऽस्मिन् धत्तो आयुष्मान् भवति (गो.ब्रा.प्र. २ ब्रा. १) इन्द्र और अग्नि के धारण से मनुष्य दीर्घायु होता है।

२८६ पुरुष के शरीर में प्राणादि देव रमण करते हैं जिसमें प्राणादि देव रमण करते हैं उसी का सुन्दर शरीर है, प्राण की स्थापना देह के मध्यभाग नाभि और हृदय में है।

निमित्त कारणरूप परमेश्वर और प्रकृति (माद्दा) से प्राण (महत्तत्त्व) की उत्पत्ति होती है।

२८७ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च
हिरण्ययेन सविता रथेन देवोयाति भुवनानि पश्यन्
य० अ० ३३ मं. ४३ तथा य० अ० ३४ मं. ३१ ॥
२८८ ज्येष्ठश्च हवै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च
श्रेष्ठश्च. ॥ अ० ॥ प्र० ६ । मं. १ ॥
२८९ दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशा ते यदाऽस्माच्छ-
रीन्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥
"बृह०" उ

(शतपथ ब्राह्मण के सातवें काण्ड का ७ वां ब्राह्मण)

२८७ "जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षा आदि का कर्ता, प्रकाश स्वरूप प्राणि रूप, तेजोमय, रमणीय स्वरूप के साथ वर्तमान, सब प्राणि अ प्राणियों में अमृत रूप, वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्ति मान् द्रव्यों को दिखलाता हुआ सब लोकों के सा आकर्षण गुण से सह वर्तमान अपनी परिधि में घूमता रहता है किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता ॥" (सत्यार्थ प्र. स.मु.८)

२८८ शरीरस्थ देवों में सब से बड़ा और श्रेष्ठ कौन है (उ. शरीरस्थ देवों में प्राण ही ज्येष्ठ और प्राणा ही श्रेष्ठ है वही जीवन का मुख्य साधन है ॥१॥

२८९ पुरुष में १० दश प्राण हैं जैसे १ प्राण २ अपान ३ व्यान ४ उदान ५ समान ६ नाग ७ कूर्म ८ कृकल ९ देवदत्त १० धनञ्जय ॥
११ वां जीवात्मा। ये जब शरीर से निकलते हैं तब लोगों को रुलाते हैं इसलिये रुद्र कहाते हैं॥ सारांश इन दश प्राणों में पूं. स्तव और स्त्री शक्ति है इस लिये इस ब्राह्मण में कहा है कि "प्राणो हीमा सर्वाः प्रजाः करोति" अर्थात् प्राण ही समस्त प्रजा को उत्पन्न करते हैं ॥

२९० ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः ॥ य० प्र० १३ मं. ३॥

२९१ असौवा आदित्यो ब्रह्म अहरहः पुरस्ताज्जायते ॥ शतप । अ० ४

२९२ अपां सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वं समुदीषति स प्राणो भवति ॥ छा० । ६ मं. ३ ॥

२९३ पुरुषो वाव यज्ञ स्तस्य यानि चतु र्विंशति वर्षाणि तत्त ः संवन, चतुर्विंशत्य क्षरा गायत्री गायत्रं प्रात ः सवनं तदस्य वसवोन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीद ॐ सर्वं वासयन्ते छा० । खं. ६ मं. ४ ॥

---

२९० शतपथ में ब्रह्म का अर्थ सूर्य है और ब्रह्म का अर्थ ईश्वर है ।

२९१ (असौक) यह आदित्य ही ब्रह्म है आदित्य ही प्रतिदिन पूर्व दिशा में उत्पन्न होता है ।

२९२ हे सोम्य। जल पिया हुआ सूक्ष्म रूप से शरीर के उपर भाग में जाता है वह प्राण होता है, जीवात्मा का नाम पुरुष है क्यों कि यह शरीर में शयन करता है इसके २४ वर्ष प्रातः सवन है। २४ वर्ष ब्रह्मचर्य्य धारण करने से प्राण वश में हो जाते हैं। प्राण ही व सु हैं क्यों कि ये सब को बसाने हैं ॥ १ ॥

४४ वर्ष का ब्रह्मचर्य्य माध्यन्दिन सवन है। ४४ अक्षर का त्रिष्टुप

२९४ छन्द है ४४ वर्ष के ब्रह्मचर्य्य धारण करने से इस के प्राण वश में हो जाते हैं । व्याख्या ४४ मे ८ वर्ष जन्मोत्पत्ति के हैं इनके निकाल देने से ३६ वर्ष रहते हैं "षट् त्रिंशदाब्दिकं चर्यम्" मनुस्मृति में ३६ वर्ष का ही लिखा है ।

२९४ चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिन ? सवनं, तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीद॰ सर्वं रोदयन्ति ॥ छा॰ खं॰ १६ मं॰ २॥

२९५ अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत् तृतीय सवनं मष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीय सवनं तदस्याऽऽदित्यान्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या एते हीद॰ सर्वमाददते ॥ छा॰। खं॰ १६। प्रपा॰ ३ मं॰ ५॥

२९६ प्राणो वै कूर्मो वागषाढ़ा ॥ शतपथ काण्ड ७ अ॰ ५ प्रपा॰ ४ ब्रा॰ ७॥

---

२९५ ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य्य धारण करने वाले ब्रह्मचारी की आदित्य सञ्ज्ञा है, ४८ वर्ष का जगती छन्द होता है। ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण से ब्रह्मचारी के शरीर में प्राण उस के वश होजाते हैं प्राण ही आदित्य हैं ॥ ५॥

इति शतपथस्य सप्तमे काण्डे सप्तमे में ब्राह्मणेषु
"प्राणा हीमाः प्रजाः करोतीति" प्रकरणं समाप्तम्

शत पथ ब्राह्मण के ७ वें काण्ड के "प्राण ही सब प्रजाओं का उत्पादक है यह प्रकरण समाप्त हुआ ॥

२९६ वाच् शब्द हलन्त स्त्रीलिङ्ग है और अषाढा शब्द भी स्त्रीलिङ्ग है। कूर्म का अर्थ प्राण और अषाढा का अर्थ वाणी है। शरीर में मन अन्नमय है। आपोमय प्राण और तेजोमयी वाणी दोनों मिलकर कूर्म कहाते हैं। जिस मनुष्य के वाग्बल और प्राणबल दोनों उत्तम

२९७ तेजोऽशितंत्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातु
स्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः
स वाक् ॥ छा० खं. ५ मं. ३

२९८ अन्नमय ॐ हि सोम्य! मन, आपोमय प्राण स्तेजो
मयी वाक् ॥ छा० खं.५। मं. ३ ॥

२९९ "शतायुर्वै पुरुषः" ॥

३०० अतिवादोऽतिमानश्च, तथाऽत्यागो नराधिप !
क्रोध श्चात्म विधित्साच, मित्रद्रोहश्चतानिषट् ॥१॥

३०१ एत एवाऽसयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान् घ्नन्ति, न मृत्यु र्भद्र मश्नुते ॥२॥म.भा

हों उसकी कूर्म क्षत्रिय सञ्ज्ञा है। सत्योच्चारण से वाणी में बल आता है और ब्रह्मचर्य धारण से प्राण वश में होकर बलवान् होते हैं।

२९७ छान्दोग्य में लिखा है कि खाये पिये हुवे तेज (अन्न) का जो स्थूल धातु है उससे अस्थि (हड्डी) बनती है, जो मध्यम धातु है उससे मज्जा बनती है और जो (अणिष्ठः) अन्न का सूक्ष्म भाग है उससे वाणी बनती है।

२९८ हे सौम्य ! मन अन्न मय है अर्थात् अन्न के सूक्ष्म भाग से बना है। शरीरस्थ नाडियों में वह अन्न सूक्ष्म भाग जाकर मन बनने का कारण होता है प्राण जल मय है। वाणी तेजोमय अर्थात् अग्नि तत्व से बनी है"

२९९ धृतराष्ट्र ने विदुरजी से पूंछा कि मनुष्य की आयु वेद में १०० वर्ष की लिखी है वह अब क्यों नहीं होती। " ॥

३०१ अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्॥ऐतरेयोपनि. खं. २ मं.३

३०२ यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभि सम्पद्यते ॥ यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है ॥

३०३ अग्नि में माप गच्छतु शरीरात् ॥ चरक संहितायाम् ॥

३०४ तथैवेद्वत यजमानो वाचमेवो पाधत्ते ॥ श. कां. ७ आ. ४ प्र. १ ब्रा, १

३०५ वाचि वै प्राणेभ्योऽन्नं धीयते श. कां. ७ प्रपा ३ब्रा. २

---

३०० विदुरजी ने उत्तर दिया कि हे राजन ! बहुत बोलने, बहुत घमण्ड करने, दान न देने, असमय क्रोध करने, (आत्मविधित्सा) मेरा ही पेट भरे , मित्र से द्रोह रखने, येही तीक्ष्ण तलवारे हैं जो मनुष्य की आयु को काटती हैं मृत्यु नहीं, तेरा भला हो ॥२॥

३०१ भगवान् का आदेश पाकर वाक् (वाणी) इन्द्रिय का देवता अग्नि बनकर मुख में प्रविष्ट हो गया ॥ ३॥

(व्याख्या) बहुत बोलने अर्थात् वाणी का संयम न रखने के कारण शरीर मे अधिक परिमाण में अग्नि तत्व के पुरमाण निकल जाने से आयु क्षीण हो जाती है। ऐसे ही मिथ्या घमण्ड आदि से शरीर में साम्यावस्था नहीं रहती है अतः आयु की क्षीणता होती है ॥

प्रथमः परिच्छेदः

३०१ जो मनुष्य मन से ध्यान करता है वही वाणी से कहता है जो वाणी से कहता है वही कर्म से करता है वैसा ही वह फल पाता है ॥१॥

३०६ क्षुद्रेभ्यः प्राणेभ्यो बहून् देवान् (निर्मिमत) इति शेषः

३०७ चत्वारो वा इमे देवा अग्नि र्वायु रादित्य श्चन्द्रमाः॥

गो. ब्रा. पूर्व भाग। प्रप. २ ब्रा. १६ ॥

३०८ कफशोणित मांसानां, सारो जिह्वा प्रजायते ॥ सुश्रुते

३०९ देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमः स्वधा ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वा ङ्गिरसामसि ॥ प्रश्नो पनि प्रश्न द्वि, म. ८॥

---

३०३ मनुष्य अपना आहार विहार ऐसा रक्खे कि जिससे उनके शरीर से अग्नि तत्व न निकल जावे क्यों कि अग्नि जीवन का साधन है।

३०४ यज्ञ में यजमान अपनी वाणी का संयम रक्खे सत्य ही भाषणकर अर्थात् जितना बोलना हो उतना ही बोले न न्यून और न अधिक ॥

३०५ यव गोधूमादि अन्न प्राणियों का प्राण है वह मुख द्वारा शरीर में पहुंचाया जाता है ॥

३०६ अन्यत्र कहा है कि पुरुष के शरीर में १० प्राण हैं और जीवात्मा ११ वां है, परमात्मा ने इन क्षुद्र प्राणों से इन्द्रियादि की रचना शरीर में की है ॥

३०७ अथर्व वेदीय गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्रमा ये चारों देव कहाते हैं। इनकी रचना उस धाताने की है। ये व्यावहारिक जड देवाता हैं, दिव्य गुणों के कारण इनकी देव सञ्ज्ञा है॥ ये चेतन नहीं किन्तु जड हैं॥

३०८ कफ, रक्त और मांस इन सबका जिह्वा सार है। वर्णों के उच्चारण में में जिह्वा ही मुख्य साधन है। प्राण का वाणी के साथ सम्बन्ध है।

३१० साळ्हैं साळ्हा साढेति निगमे ॥ अष्टा अ. पा. सू. इत्यत्र अषाढा शब्दो निपातितः। ततो नञ् समासः। व्यत्ययेन मूर्द्धन्यादेश ॥ इति सायण भाष्यम् ॥

३११ न, कर्म कर्तृ साधन वैगुण्यात् ॥ न्याय । अ. २ आ. १ सू ५७

३१२ यज्ञोपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति ॥ ऐतरेय ब्रा. पंचि का १ आ० २॥

---

३०९ प्राण तूही वसु रुद्रा दित्यादि देवताओं के कार्य का चलाने वाला है। तूही पिताओं को सन्तान की उत्पत्ति के समान आनन्द का कारण है अर्थात् जब सन्तान प्राण सहित उत्पन्न होती है तभी पिता आदि प्रसन्न होते हैं।

अङ्गिरसा आदि ऋषियों का सत्याचरण भी तूही है अर्थात् तपस्वी ऋषिजन प्राणायामादि से ही सत्य को प्राप्त होते हैं॥

जिस की वाणी में दुष्टों के दूर करने का विशेष बल हो उस स्त्री का नाम अषाढा है। न साढा अषाढा। नञ् समास हो कर व्यत्यय से मूर्द्धन्यादेश हुआ है॥

३१० पूर्व ५८ सूत्र में पूर्व पक्ष है कि मिथ्यात्व, व्याघात, और पुनरुक्त दोष से शब्द की प्रमाणता नहीं हो सकती इस के उत्तर में यह सूत्र है कि नहीं, कर्म, कर्ता, और साधन के वैगुण्य से जब ये तीन यथार्थ होंगे, निश्चय फल की सिद्धि होगी इस में कुछ भी सन्देह नहीं जैसे कर्ता मूर्ख अथवा दुष्ट आचार वाला हुआ तो वह कर्ता का वैगुण्य (दोष) हुआ। मिथ्या प्रयोग किया तो यह कर्म का वैगुण्य

३१३ रंजिता स्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम् ।
अव्यापन्न शरीरेण रक्तमित्यभि धीयते ॥ सुश्रुते
सूत्र स्थाने अ० १४। श्लो० ७॥

(दोष) कहा वेगा। ऐसे ही जो होमादि का द्रव्य अच्छा न हुवा तो यहा साधन वैगुण्य हुवा इन तीनों में एक भी दुष्ट होगा तो फल का सिद्धि नहीं होगी। श्री० पं० तुलसीराम स्वामी

३११ यज्ञ भी संसारोपकारक तभी हो सकता है जब कि उस में होता आदि विद्वान् हों, यज्ञ में सब से अधिक उत्तर दायित्व ब्रह्मा का है॥

३१२ जल तत्व के सूक्ष्म अंश से शरीर में प्राण बनता है वही जल तत्व जब तेज स्तत्व से रञ्जित हो जाता है तब उसकी रक्त (खून) सञ्ज्ञा होती है ॥ ७ ॥

पूर्व "प्राणो वै कूर्मोवागषाढा" यह शतपथ का प्रमाण लिखा है इस प्रमाण से कूर्म का अर्थ प्राण और अषाढा का अर्थ वाणी है, । नाभि स्थान से जो ऊपर को श्वास निकलता है उसको प्राण वायु कहते हैं "नाभि प्रदेशात् प्रयत्न प्रेरित प्राणो नाम वायुः॥ वर्णोच्चारण शिक्षायाम। पाणिनि मुनिः॥ शब्दों अर्थ में आकाश और वायु दोनों का संयोग कारण शरीर में है जिस के प्राण और वाणी दोनों वश होते हैं वह कूर्म क्षत्रिय कहा वेगा॥

॥ इति प्राणो वै कूर्मोवागषाढेति कूर्म शब्दार्थः समाप्तः ॥

कूर्म का अर्थ प्राण और वाच का अर्थ
अषाढ़ा दोनों का प्रकरण समाप्त हुवा

(तत्र)

शतपथीय सप्तम काण्डस्य सप्तमो ब्राह्मणः ।

२१४ प्राणो वै वाचो वृषा प्राणो मिथुनमिति ॥ श० प० कां० ७। अ० ५ प्रपा० ४ ब्रा० ७॥

२१५ सामाहमस्मिऽ॥ पारस्करगृ० काण्ड१ कण्डि का ६।३॥

२१६ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥ ता यदस्यायनं पूर्वं, तेन नारायणः स्मृतः॥ मनु० अ० १ श्लो १०

२१३ प्राण ही कूर्म और प्राण ही ही वाणी है । वाच शब्द स्त्री लिंग होने से कर्म काण्ड के यज्ञप्रकरण में पत्नी का वाचक है । दूसरा अर्थ प्राण का वृषा है वृषा का अर्थ सायणाचर्य लिखते है कि "वीर्य सेचने में समर्थः प्रमान् अर्थात् जो सन्तानोत्पत्ति करने में समर्थ ऐसा क्षत्रिय युवा पुरुष वृषा कहाता । पति और पत्नी दोनों जोडा रूप होने से मिथुन कहाते हैं ।

२१४ प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि "आदित्यो ह वै प्राणो रयिर्वै चन्द्रमा" ॥" अर्थात् आदित्य (सूर्य) प्राण और चन्द्रमा रयि है । सूर्य कठोर शक्ति होने से तत्स्थानीय पुरुष है और चन्द्रमा जल विम्ब होने से कोमल शक्ति है । सूर्य में उत्पादक शक्ति है तो चन्द्रमा में उत्पाद्य शक्ति है सूर्य स्थानीय पति और चन्द्रस्थानीय पत्नी है । कर्म पति पत्नी दोनों यज्ञ करें और ऋतु गामी हो सन्तानोत्पत्ति भी करें ॥

२१५ हेवरानने, मैं सामवेद केतुल्य हूँ तू ऋग्वेद के तुल्य है । मै सूर्य हूँ तू पृथ्वी है दोनो मिलकर विवाह करें किस लिये सन्तानों की प्राप्ति के लिये इत्यादि अर्थ जानो

(तत्र)

(यज्ञेकूर्मो पस्थान मन्त्रः ।)

२१७ स्व स्वा मि शक्त्यां रूपलब्धिहेतुसंयोगः॥ योगद०

२१८ अपाङ्ग गम्भ न्त्सीद मात्वा सूर्योऽभिथ्सीत् पूनीत्। माग्नि वैश्वानर। अच्छिन्नपत्रा प्रजा अनु वीक्ष स्वा, नुत्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥

य० । अ० १३। म० ३०।

२१९ स्वशक्ति और स्वामि शक्ति के प्राप्ति का हेतु संयोग है॥ (व्या) शतपथ कारने यहां स्त्री कोमल और पुरुष कठोर शक्ति है यह अर्थ प्राणादि शब्दों से कूर्म शब्द का अर्थ दिखाया है कि यह सब सृष्टि कूर्म प्रजापति की है।

(इस मन्त्र पर शतपथ भाष्य निम्न लिखित है)

२१७ "अपांग म्भन्त्सी दति एतद्वा गम्भिष्ठं यत्रैष यतन् तपति मात्वा सूर्योऽभितात्सीन माग्निर्वैश्वानर इति नैव त्वा सूर्योऽभिता प्सात्, मोवैग्नि श्वानर इत्येत दच्छिन्न पत्रा प्रजा अनुवीक्ष स्वती मावे सर्वा प्रजा या या इमाइष्ट का स्ता अरिष्टा अनार्ता अनुवीक्ष स्वेत्येतश्नुत्वा दिव्या वृष्टिः सचतामिति यथैनं दिव्या वृष्टिरनु सचैतवमेत दाह॥",

शतपथ । काण्ड ७। अध्याय ५। प्रपा ४। ब्रा० ८।

२१८ अपाङ्ग म्भिष्ठ यह जलों का गहिरा कुण्ड है जहां यह सूर्य तपता है, सूर्य की तीव्र धूप से जहां तुम को कष्ट नहो और जहां वैश्वानर अग्नि की धधकती हुई ज्वाला की लपटों से किञ्चिन्मात्र भी ऐसे शीतल और सुखदायक स्थान में कष्ट नहो यजमान यज्ञवेदी की रचना करे।

(अच्छिन्न पत्राः-) अर्थात् हाथ, पैर आदि अवयवों से सब प्रजा दृढाङ्ग हैं वा नहीं? हे कूर्म (क्रियाशील) यजमान ! तू भलीभांति प्रजाओं को देख उनकी रक्षाकर । जो ये इष्टका अर्थात् सुख प्राप्ति साधिका वे येही सब प्रजायें हैं,अथवा इष्टका का अर्थ पकी हुई ईंटें हैं उनके समान एकत्रित (इकट्ठी) तथापि पृथक् २ हैं ऐसी प्रजाओं का तू अन्वीक्षण कर कि ये सब प्रजायें अशान्त, एवं दुःखित तथा अन्य किन्हीं पीडाओं से पीडित तो नहीं हैं। जिस प्रकार इस यज्ञ को लक्षित कर यज्ञ के पश्चात् दिव्य वर्षा होवे यत्न कर ब्रह्मा यजमान से ऐसा कहे ॥

कूर्म शब्द के अर्थ रसात्मक दुग्धादि पदार्थ, कश्यप, आदित्य, प्राण, वाणी, और वृषा, अषाढा इत्यादि शतपथ के ७ वें काण्ड में लिखे हैं परन्तु सायण ने कूर्म का जल जन्तु कच्छप अर्थ करके उसकी स्थापना यज्ञ में लिखी है जो मूल शतपथ से विरुद्ध है यह यज्ञ प्रकरण है, कूर्म का अर्थ क्षत्रिय है। शतपथ के ७ वें काण्ड काही यह वचन है कि "पुरुष मभ्यावृत्तं प्राणं यजमाने, तद्दधाति" ॥ अर्थात जो नासिका के भीतर से बाहर को और बाहर से भीतर को जाने-वाला पुरुष (पुंस्त्व) प्राण है उसको यजमान में धारण करे सायण ने उक्त वचन पर भाष्य करते हुवे लिखा है कि पुरुष अर्थात कूर्मराज की सुवर्ण की मूर्ति बना कर वह स्थापन करे परन्तु यहां यजमान ही कूर्म है अतः उसकी अलग मूर्ति स्थापित करनी व्यर्थ है। 'पुरुष' प्राण का विशेषण है पुरुष का अर्थ पुंस्त्व शक्तियुक्त प्राण, यजमान को

प्राणायामाभ्यासी होने के लिये उक्त वचन है। कूर्म और क्षत्रिय शब्द के अर्थ में शतपथ ब्राह्मण भेद नहीं मानता, कूर्म ही क्षत्रिय है और क्षत्रिय ही कूर्म है इस अभिन्न अर्थ को ही शतपथ मानता है। द्वितीय विवेक यह है कि क्षत्रिय वर्ण में जब कूर्म ऋषि उत्पन्न हुए तब उसी समय से इनके नाम से यह वंशलता चल पडी इनसे पूर्व यह वंश केवल क्षत्रिय ही था,। मनुजी के पुत्र शर्याति चक्रवर्ती राजा हुये उन्हीं के वंश में कूर्म ऋषि का जन्म हुआ था।

शर्यातिवंश के अन्तर्गत हैहय और ताल जंघ दो राजे हुवे थे। हैहय की १० स्त्रियों में से १०० पुत्र थे, इनमें ज्येष्ठपुत्र वीतहव्यथा वीतहव्य का पुत्र गृत्समद और गृत्समद का सुतेजा कूर्म हुवा इत्यादि वर्णन इस ग्रन्थ में सप्रमाण अन्यत्र लिखा गया है। गृत्समद सूर्य वंश के अतिरिक्त दूसरा इसीनामका चन्द्र वंश में भी हुवा है जिसका उल्लेख सप्रमाण इस ग्रन्थ में हैं। कूर्म ऋषि अपनी वेदविद्या और अपने सदाचार से बडे प्रतापी हुए इस कारण इन के नाम से वंशलता चली कूर्म ऋषि से पूर्व यह वंश क्षत्रिय ही है। कूर्म क्षत्रिय यजमान को यज्ञ में बैठाने के लिये पहिला मन्त्र "अपाङ्गम्मन् (२) दूसरा मन्त्र "त्रीन्स मुद्रान् और (३) तीसरा मन्त्र "मही द्यौः,, है जैसे-

तत्र यज्ञे कूर्मोपधानविषयः ॥

२१८ अपां गम्भन्त्सीद०॥ अस्योपरि सायणभाष्यम् 'यत्र स्थाने' 'एषः' 'सूर्यः' 'एतत्' तपनं करोति 'एतत्' खलु 'अपां गम्भिष्ठम्' गम्भीरतमम्' ह्रद इत्यर्थः। सूर्यस्य वृष्टिहेतुत्वात् तस्यावस्थान प्रदेशस्य ह्रदत्वमुच्यते। ततश्च कूर्मस्यापामन्त रेणावस्थानाद् 'अपां गम्भिष्ठम्' सूर्यावस्थान समीपदेशलक्षणे 'अपां' ह्रदे 'सीद' उपविशेति मन्त्रमाह" ('अपांगम्भन्' त्रीन्त्समुद्रान्' 'महीद्यौ इति त्रिभिः मन्त्रैः अयंकूर्म उपाधीयत इति सा० भा०)

---

२१८ सायणाचार्यलिखते हैं कि "अपाङ्गम्भन्०' त्रीनसमुद्रान्०' 'महीद्यौः इन तीन मन्त्रों से कूर्म का उपधान करो परन्तु इन मन्त्रों में 'त्वा' पद से कूर्म को यजमान होने के लिये उपदेश है। जिस स्थान में यह सूर्य तपता है वहां जल कुण्ड है। सूर्य वर्षा का कारण है इस लिये सूर्य्य के अवस्थान प्रदेश को जल-कुण्ड कहते हैं। हे कूर्म तू जल कुण्ड में बैठ" यह सायणभाष्य का अर्थ है।

(पा.) कूर्म का अर्थ यज्ञ प्रकरण में जल जन्तु करना शतपथ के विरुद्ध है। "मान्वा सूर्योभितास्पीत्" यहां "त्वा,, पद यजमान के लिये आया है। "त्वामौ द्वितीयायाः ॥,, इस पाणिनीय सूत्र से 'त्वाम्, को 'त्वा, आदेश हुआ है। 'त्वाम्, पद से क्षत्रिय यजमान का ही ग्रहण है। शतपथकारने प्रजारक्षण कहकर "इज्या,, यज्ञ विशेष करना कूर्म अर्थात् क्षत्रिय के लिये कहा है अत एव तत्रादौ कूर्मोपधानं विधाय तं रसात्मना स्तौति,, अर्थात् कूर्म की स्थापना

करके रसादि से इस की स्तुति करे यह विधान सर्वथा चिन्त्य है क्योंकि कूर्म का रस आदि अर्थ यज्ञ में उपयोगार्थ है कि रस (दुग्धादि) से यज्ञ करे। तीनों मन्त्र कूर्म अर्थात् क्षत्रिय राजा को यजमान होने का उपदेश देते हैं। शतपथ के सातवें काण्ड में कूर्म का कच्छप अर्थ कहीं नहीं है। तब उस का उपधान यज्ञ में कैसे हो सकता है?

प्रजापति श्चरति गर्भे और जायमानो बहुधा विजायते॥ य० अ० ३१ मं. १९ स एव प्रजापतिः सर्वस्य स्वामी जीवस्याप्यन्यस्य च जडस्य जगतो० न्तर्गर्भे मध्येऽन्तर्यामिरूपेणाऽ जायमानोऽनुत्पन्नोऽजः स नित्यं चरति०" इस मन्त्र में 'अजायमानः" पद से ईश्वर के शरीर धारण का निषेध है। ऐसे ही यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र (८) में "अकायम्" पद से ईश्वर के जन्म धारण का सार्वकालिक निषेध है तब "यत् सकूर्मो नाम"। एतद्रूपकृत्वा" का अर्थ प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ने कच्छप का रूप धारण करके प्रजाओं को उत्पन्न किया। ऐसा कदापि नहीं हो सकता किन्तु प्रजापति कूर्म्म अर्थात् क्रियात्मक रूप प्रकृति सहित होकर प्रजाओं को उत्पन्न किया अर्थात् परमात्मा के सान्निधान से जब उपादान कारण प्रकृति में क्रियाशक्ति प्रकट हुवी तब प्रकृति जीव ग्राम सहित नानारूप में परिणत हुवी परन्तु सायणाचार्य ने आरम्भ में ही भ्रमात्मक जल—जन्तु कूर्म का उपधान लिख कर सर्वत्र सातवें काण्ड में वैसा ही अर्थ लिखा जो मूल शतपथ से विरुद्ध है इन तीन मन्त्रों में भी कूर्म का अर्थ शतपथ के अनुसार क्षत्रिय यजमान ही है।

इति शतपथब्राह्मणस्य सप्तमकाण्डे सपत्नीक-क्षत्रिययजमानस्य यज्ञानुष्ठानेऽष्टमं ब्राह्मणं समाप्तम्

यह शतपथ ब्राह्मण के ७ वें काण्ड में सपत्नीक क्षत्रिय यजमान के यज्ञानुष्ठान में आठवां ब्राह्मण समाप्त हुआ।

(प्रथमः परिच्छेदस्तत्र यज्ञे कूर्मोपधानविषयः)

(अथ द्वितीयो मन्त्र.) अ प । कां. ७ । अ. ५ । प्र. ४ । ब्रा. १

२१९ त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत्स्वर्गानपां पति
वृषभ इष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके
तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेता ॥य०॥ अ० १३। मं० ३१॥

(उक्त मन्त्र पर शतपथ ब्राह्मण)

अथैनमेजयति । त्रीन्त्समुद्रान् त्समसृपत्, स्वार्गानितीमे वै त्रयः समुद्राः स्वर्गा लोकास्तानेष कूर्मो भूत्वानुसंससर्पापांपति वृषभ इष्टकानां मित्यपां पति वृषभ इष्टकानां पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोक इति, पशवो वै पुरीषं पशूनां वसानः सुकृतस्य लोक इत्येतत् तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः तत्र गच्छ यत्रैतेन पूर्वे कर्मणेयुरित्येतत् ॥१॥ श० कां० ७ अ० ५ प्र० ४ ॥

२१९ शतपथ का अर्थ— (अथ) अनन्तर (एनम्) ब्रह्मा इस कूर्म अर्थात् क्रियाशील पूर्वोक्त क्षात्रधर्मयुक्त यजमान को (एजयति) चलाता हुआ (उपदधाति) यज्ञवेदी के पूर्व दिशा में बैठने की आज्ञा दे कात्यायन सूत्र में भी कहा है कि 'एजयति मध्यमयेति'॥ का. १७।५।२॥ अर्थात् त्रीन्त्समुद्रान्' इस मध्यमऋचा से कूर्म यजमान को चलावे अर्थात यज्ञ कुण्ड में पूर्व ओर बैठावे 'इमेवैत्रयः समुद्राः स्वर्गालोकाः' द्युलोक, पृथ्वी लोक और अन्तरिक्षलो यही तीन समुद्र कहाते हैं इन्हीं तीनों लोकों का नाम स्वर्गलोक है। "त्रीन्त्समुद्रा न्त्समसृपत"

तानेषकूर्मो भूत्वा०,, उन लोकों में यह कूर्म प्रजापति अर्थात् सृष्टि कर्त्ता ईश्वर पृथिव्यादि लोकों को रचकर क्रियात्मक हो अपने सान्निधान मात्र से इन पृथिव्यादि को नियमपूर्वक गतिमान् कर रहा है, वह तीनों लोकों में व्यापक है। 'एष: कूर्मोभूत्वा' का दूसरा अर्थ यह कि 'प्रजापति' अर्थात् यह वैश्वानर अग्नि अग्नि में दी हुई आहुतियों को सूक्ष्म कर पृथिव्यादि लोकों में व्याप्त होता है। प्रजापति का अर्थ यज्ञ है इसमें प्रमाण "प्रजापतिर्यज्ञ:" । बृहदारण्यकोपनि० । अ० ४ । ब्रा ०९ ॥ "घृतेन द्यावा पृथवी पूर्येथाम्" ॥ य० । अ० ८। म० २८ ॥ अर्थात् घृतादि पदार्थों से द्युलोक और पृथिवी लोक को तुम दोनों स्त्रीपुरुषो पूर्ण करो" ॥ "अपां पति र्वृषभ इष्टकानाम्" अन्वय यहकि "एषः कूर्मो नाम क्रियात्मको वैश्वानरो यज्ञ. सृष्टि कर्त्ते श्वरो वा 'हि' निश्चयेन अर्थात यह क्रियात्मक वैश्वानर यज्ञ अथवा सृष्टिकर्ता ईश्वर निश्चय से (अपांम) जलानाम् (जलों का (पति:) रक्षक: (रक्षक) है अथवा यह वैश्वानर यज्ञ 'अपां पति:' जलानामुत्पादक:) जलों का उत्पादक है। "यज्ञाद् भवति पर्जन्य:॥ (गीता) यज्ञ से बादल बनते हैं। "वृषभ इष्टकानाम् "इज्यन्ते सङ्गम्यन्ते कामा:, यैः पदार्थों स्तेषाम्." यह वैश्वानर यज्ञ ही कामनाओं के हेतुभूत पदार्थों का वर्षाने वाला अर्थात् कामनाओं का पूर्ण करने वाला है अथवा श्रेष्ठ है। पुरीषं वसान: सुकृतस्य लोक इति) "पशवो वै पुरीषम्" (श०प.) (पशून् वसान:) आच्छादयन् (रक्षाङ्कुर्वन् सन्) पशुओं की रक्षा करता हुआ हे कूर्म (क्रियाशील) यजमान सुष्ठुकृतो धर्मो येन' 'तस्य' 'लोके' लोक्यतेऽनेनेतिलोकस्तस्मिन् (धर्मयुक्त मार्गे' द्रष्टव्य स्थाने वा' अच्छे प्रकार धर्म का आचरण किया है जिसने उसके धर्म युक्त मार्ग में-हे कूर्म (क्रियाशील) यजमान तू प्राप्त हो "यत्र" यस्मिन् धर्मयुक्त मार्गे 'जिस धर्मयुक्त मार्ग में एतेन)

(कर्मणा) एतेन निष्कामयज्ञानुष्ठानेन कर्मणा (पूर्वे) प्राक्तना विद्वांसोऽथवा क्रियाशीलाः क्षात्र धर्माचरिताः (ईयुः) गताः सद्गतिं वा प्राप्ताः। अर्थात् जैसे इस निष्काम यज्ञानुष्ठान कर्म से प्राक्तन विद्वान् अथवा कूर्म (क्रियाशील) क्षात्रधर्म के आचरण करने वाले क्षत्रिय गये हैं, अथवा सद्गति को प्राप्त हुये हैं उसी मार्ग में तूभी चल और सद्गति को प्राप्त हो॥

(व्याख्या) शतपथ में पशुवध परक अर्थ नहीं है कि हे कूर्म यजमान तू यज्ञाग्नि में भस्म होकर स्वर्ग को चला जा इस लिये सायणादि कृतार्थ त्याज्य है॥

(उक्त विषय में मानव धर्म शास्त्र का भी प्रमाण है।)

येनास्य पितरो याता, येन याताः पितामहाः।

तेनयायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्त रिष्यते॥

मनु० अ० ४। श्लो० १७८

अतस्त्वां ब्रवीमि 'पुरीषम्' इष्टका रूपान् पशून् 'वसानः' आच्छादयन्' 'सुकृतस्य' सुष्ठु सम्पादितस्याग्नेः 'लोके' स्थाने स्थितव तत्रा गच्छ एतेन कर्मणा पूर्वे कूर्माः' 'यत्र परेताः परागताः सद्गतिं प्राप्नुवन्ति' यह सायण भाष्य है अर्थ यह कि हे कूर्म! मैं तुझ से कहता हूं कि तू इष्टका रूप पशुओं की रक्षा करता हुआ अग्नि के बीच स्थित हो भस्म हो कर इस भस्म वध कर्म से वहां जा जहां तेरे पहिले के कूर्म लोग जाकर सद्गति को प्राप्त होते हैं॥ यह शतपथ काण्ड ७ अ० ५ प्रपाठक ४ ब्रा. १० पर सायण कृत भाष्य का अर्थ है "किञ्च 'यत्र' यस्मिन् स्थाने। (महीधर भाष्य निम्नलिखित है) (पूर्वे) पूर्वतनाः कूर्माः, अन्येष्वग्निषूपहिताः 'परेताः' परागता 'सुकृतस्य' शोभन कृतस्याऽग्नेस्तत्र तस्मिन् लोके स्थाने त्वंगच्छ' किंकुर्वन्। इतान् पशून् वसानः (आच्छादयन्"॥

(अर्थ) जिस स्थान में तेरे पुरातन (पिछले कूर्म लोग) अन्य अग्नियों के बीच स्थित हो, स्वर्ग गये हैं उसी शोभन रची हुवी अग्नि में होम किये हुवे पशुओं की रक्षा करता हुआ। तू भी जा"

(उवट भाष्य निम्न है) जैसे—

सुकृतस्थाऽग्नेर्लोके स्थाने स्थित्वा तत्र गच्छ 'यत्र' 'पूर्वे कूर्माः' अन्ये अग्निभूरहिताः सन्तः 'परेताः' 'परागताः"

(अर्थः) सुकृत यज्ञाग्नि के बीच स्थित हो के हे कूर्म उस स्वर्ग स्थान में जा जहां तेरे पहिले कूर्म गये हैं वहीं तू भी जा ॥४

[व्याख्या] यहां सायण महीधर और उवट तीनों भाष्यकारों ने य० अ० २१ मन्त्र १३ वें में आये हुवे सर्वनाम शब्द प्रथमा विभक्ति "पूर्वे" इस बहुवचनान्त पद का अर्थ प्रथम उत्पन्न हुवे कूर्म और हे कूर्म ऐसा एकवचनान्त सम्बोधन भी लिखा है और कूर्म का अर्थ सर्वत्र अवतारवाद परक किया है (व्य.) उक्त सायणादि तीनों भाष्यकारों ने अपने ऐतिहासिक और अवतार वाद पक्षानुसार ईश्वर को भी उसी प्रकार कूर्मावतार रूप में माना है और कूर्म की वंश परम्परा 'कूर्माः' इस बहुवचनान्त पद से लिखी है जो "मन्त्रोक्त 'पूर्वे' का अर्थ है।

इन भाष्यकारों ने अपने पक्षानुसार एक उच्च श्रेणी में ईश्वर के रूप में कूर्म को माना है जैसा कि भगवान् कृष्णजी और महाराज राम आदि को ईश्वरावतार रूप में मानते हैं, और इन सब की वंश परम्पराभी मानी जाती है ऐसे ही कूर्मराज के विषय में भी समझना चाहिये। परन्तु यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र (८) आठ में आये हुवे "अकायम्" पद से ईश्वर के शरीर धारण का निषेध होने से अवतारवाद का निराकरण होजाता है। और ऐसे ही वेदों में महर्षि जैमिनि किसी भी व्यक्ति विशेष का इतिहास नहीं मानते। अस्तु।

तत्र कूर्मोपधान वि०

(महर्षि दयानन्द कृत भाष्य)

पदार्थः— अषाढा शत्रुभिरसह्यमाना (असि) सहमाना पत्यादीन् सोढुमर्हा सहस्व अरातीः शत्रून् सहस्व (पृतनायतः) आत्मनः पृतना सेनामिच्छतः (सहस्रवीर्या) असंख्यातपराक्रमा (असि) (सा) (माम्) (जिन्व) प्रीणीहि ॥

अन्वयः—हे पत्नि! या त्वमषाढासि, सा त्वं सहमाना सती पतिं मां सहस्व सात्वं सहस्रवीर्यासि सात्वं पृतनायतोऽरातीः सहस्व यथाहं त्वां प्रीणामि तथा मां च जिन्व ॥२६॥

शतपथ के ७ (सातवें) काण्ड में कूर्म का अर्थ 'वृषा' और 'योषा (अषाढा) लिखा है यौगिक पक्ष में कूर्म का यह अर्थ क्षात्रियार्थ का द्योतक है। राजा और राजपत्नी 'वृषा' और योषा का अर्थ है, योषा का अर्थ शतपथ में अषाढा है 'अषाढा का अर्थ राजपत्नी है। वर्तमान कूर्म वंशके क्षत्रिय होने के प्रमाण में शतपथ का यह अर्थ पोषक है। वेद में अषाढा 'शब्द' जैसे अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व" (य० । अ० १३ । मं० २६)

अषाढा ऽिति इस मन्त्र का देवता [प्रतिपाद्य विषय] क्षत्र पति है। क्षत्रपति का अर्थ इन्द्र है जो विश्व का अधिपति होता है। शतपथ काण्ड ७ अ० ५ प्रपाठक ४ में "कूर्मो वै वृषा योषाऽषाढा" लिखा है वह अषाढा शब्द यहाँ वैदिक है। इस प्रमाण से क्षत्रिय पति और क्षत्रिया पत्नी का नाम कूर्म है। यह वासन्तिक यज्ञ विशेषकर

राजाओं के लिये है। इस यज्ञ का नाम वैश्वानर यज्ञ है। अषा-ढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः। सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व॥ यजु० अ० १३ मं० २६ में "अषाढासि" शब्द आया है। मन्त्र का भावार्थ यह है कि जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य सेवन से की हुई अत्यन्त बलवती, जितेन्द्रिय वसन्तादि ऋतुओं के पृथक् २ जानने, पति आदि के अपराध क्षमाकारिणी, और शत्रुओं का निवारण करने वाली, उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को तृप्त करती है उसी को पति भी नित्यानन्द युक्त करे। सारांश-कूर्म अर्थात् सपत्नीक राजा वसन्तऋतु में यज्ञकर के युद्धार्थ यात्रा करे। "अषाढामु पदधाति" ॥ य० अ० १३ मं० २७ में उवट लिखते हैं कि यजमान यज्ञ में अषाढा नाम की इष्ट का जिसे यजमान की पत्नी ने बनाया हो स्थापित करे ऐसे ही महीधर ने भी लिखा है कि "हे इष्टके त्वमषाढासि" ॥ अर्थात् हे इष्टके तू अषाढा है। परन्तु मन्त्र में इष्ट का शब्द नहीं और न उसका अर्थ ही मूर्ति है अतः अषाढा का यह अर्थ त्याज्य है और उपर्युक्त अर्थ सपत्नीक क्षत्रिय ग्राह्य है कि कूर्म अर्थात् सपत्नीक राजा यज्ञ वेदी में बैठकर यज्ञ करे।

वैश्वानर शब्द का अर्थ "विश्वेषां सर्वेषां प्राणिनां नरो नायकः" ॥ जो सब प्राणियों का नायक है ऐसा अग्नि वैश्वानर कहाता है। उवट अर्थ लिखते हैं कि "वैश्वानरः सर्वत्र हितोऽग्निश्च" अर्थात् जो समस्त विश्व को लाभ पहुचाने वाला अग्नि है उस का नाम वैश्वानर अग्नि है।

"मात्वा सूर्योऽभितापसीन्मोऽग्निर्वैश्वानरः ॥ शतपथकार लिखते हैं कि "मैवत्वा सूर्यो हिंसीत्, मोऽग्नि वैश्वानइति "तुम कूर्म अर्थात् क्षत्रिय यजमान को जहां वसन्त ऋतु में सूर्य के तीव्र भाप से प्रकाश से, और वैश्वानर अग्नि के प्रचण्ड ताप से कष्ट नहीं, ऐसे नदी आदि के समीप स्थान में देवयजन (यज्ञशाला) बनाकर यज्ञ करे जिससे विश्व के उपद्रवों की शान्ति हो।

यही वैश्वानर शब्द प्रश्नोपनिषद् प्रथम प्रश्न के ७ वें मन्त्र में भी आया है ; जैसे–सएष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्नि रुदयते ॥" (सः) पूर्वोक्त आदित्यः । वह पूर्वोक्त आदित्य (एषः) प्रत्यक्षः । यह प्रत्यक्ष (वैश्वानरः) सब प्राणियों का नायक 'सर्वात्मा' है । अधिदेव पक्ष में ज्योतिरूप से सूर्य अवस्थित है । और अध्यात्म पक्ष में सूर्य प्राणरूप से सब को चलाता है अर्थात् मन्दाग्नि को दूरकरने और जाठराग्नि को दीप्त करने वाला यही वैश्वानर सूर्य है जो वैश्वानर अग्नि का भी कारण है ।

वर्ष समाप्ति के पश्चात् नूतन वर्ष के आरम्भ में मनुस्मृति में मनुजीने लिखा है कि वैश्वानरी इष्टि करे । जसे

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं, कुर्यादब्द विपर्यये ॥ म. अ. १.

अर्थात्:— जब वर्ष समाप्त हो और नूतन आरम्भ हो तब वैश्वानरी इष्टि करे

यजुर्वेद अ॰ १३ मन्त्र २७ में उवटने लिखा है कि "कूर्मं दधिमधुघृतै रभ्यनक्ति" ॥ ऐसे ही महीधरने भी लिखा है कि "मिश्रितैर्दधिमधु घृतैस्त्रिकत्रयेण कच्छपमभ्यनक्ति" ॥ महीधर और उवट ने यहां कूर्म का अर्थ कच्छप किया है वह शतपथ से विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है । शतपथ काण्ड ७ सातवें में कूर्म का अर्थ सपत्नीक क्षत्रिय लिखा है और दूसरा कूर्म का अर्थ ब्रह्मा है । ऋत्विग्वरण से पूर्व यजमान मधुपर्क से ब्रह्मा आदिका सत्कार करके यज्ञारंभ करे । अथव अन्याधान की अग्नि का नाम कूर्म है "ओम्समुद्रान्तसमृपत०, य० । अ० १३ । मं. ३१ पर यह शतपथ भाष्य है कि "त्रयः समुद्राः स्वर्गा लोकास्तानेष कूर्मो भूत्वाऽनुस ॐ ससर्प" ॥ एषः (प्रजापति-यज्ञः) प्रजपाति का अर्थ यज्ञ है और "एषः" का अर्थ प्रजापति है इसमें प्रमाण " प्रजापति र्यज्ञः " ॥ ऋ० नि० । अ० ४। ब्रा. ९॥ यज्ञ प्रजापति है । यज्ञ की अग्न्याधान अग्नि में दधि मधु और घृत मिश्रित हविकी

तीन आहुतिय यजमान छोडे जब विद्यार्थी अपने गुरु वैद्य से आयुर्वेद का आरम्भ करता है उस समय प्रथम घृत मिश्रित मधु की तीन आहुतियें देता है ऐसा चरकसंहिता में लिखा है कि "मधु सर्पिषा निर्जुहुयात्" वैसे यहां भी जानना चाहिये। यज्ञ का महत्व जैसे-

यज्ञेन हि देवा दिवंगता यज्ञेनाऽसुरानपानुदन्त यज्ञेनहि द्विषन्तं मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ तस्माद् यज्ञं परमं वदन्ति॥ तैत्तिरी आरण्यक। प्र प्रपा० १० अनुवा. ६२॥

इति शतपथे सप्तम काण्डे पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थप्रपाठके नवमं ब्राह्मणं समाप्तम्॥

यह शतपथ काण्ड ७ वें के अध्याय ५ प्रपाठक ४ का नवम ब्राह्मण समाप्त हुआ॥

३२० यत् पुरुषेण हविषा देवा, यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ य. । अ. ३१ मं. १४ ॥ (अर्थ) सृष्टि में वसन्त (चैत्र वैशाख) ऋतु घी के समान है, ग्रीष्म ऋतु प्रदीप्त समिधाओं के तुल्य हैं और शरदृतु (आश्विन, कार्तिक) परिपक्व हविष्य के समान है॥

३२१ एतदनुत्वा दिव्या वृष्टिरनु सचेतैवमेतदाह ॥ ८ ॥ श. कां. ७ अ ५ प्र. ४ ब्रा. ८ ॥ अर्थ, जैसे ही इस यज्ञ को लक्ष्यकर आकाशीय दिव्य वर्षा यज्ञ के पश्चात् हो ऐसा यज्ञपति ब्रह्मा यजमान से रहे ॥

३२२ वसून वदन्ति वै पितृन, रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्रपितामहांश्चादित्यां न् श्रुतिरेषा सनातनी ॥ म. । अ, ३ । श्लो. २८४ ॥ प्राण संयमी ब्रह्मचारी वसु, रुद्र और आदित्य पदवी को प्राप्त होते हैं। वसु पद प्राप्त पितामह और आदित्य पद प्राप्त ब्रह्मचारी प्रपितामह कहाते हैं ॥ अनुत्वा दिव्य वृष्टिः सचनाम्' यजु. अ. १३।३० ॥ यहां 'त्वा' पद से यजमान का ग्रहण शतपथ में है । यज्ञ का फल दिव्यवर्षा, रोग शान्त्यादि है ॥ यजमान प्राणसंयमी होकर यज्ञानुष्ठान करे ॥

३२३ त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पति वृषभ इष्टका नाम । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥ (य. । अ. । ३ । मं. ३१॥) इसका अर्थ क्रम संख्या ३१९ में लिखा गया है वहां देख लेना चाहिये॥

३२४ प्रजापतिर्यज्ञः । ततस्तं प्रजा पतिं यज्ञं प्रपद्यते॥ गो. ब्रा. । उत्तर प्रपा. २ यज्ञ प्रजापति है। अतः प्रजापति अर्थात् यज्ञ का यजमान अनुष्ठान करता है। बृहदारण्यक अ. ४ ब्रा. ९ का वचन है कि 'कतम इन्द्र' कतमः प्रजापति वहीं उत्तर है कि स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिः" ॥ अर्थात् आकाश में चमकने वाली विद्युत् (बिजली) इन्द्र है और यज्ञ प्रजापति है ॥

३२५ निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो वर्षतु. फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्॥" य. । अ. २२ । मं. २२ ॥ इस का अर्थ शतपथ में यह है कि "निकामे निकामे तत्र पर्ज्जन्यो वर्षति यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते ॥ अर्थात् यज्ञ से चाही हुई वर्षा होती है ॥

३२६ य. अ. १३ मन्त्र ३१ में "वृषभ इष्टकानाम्" आया है। वृषभ का अर्थ वर्षक अथवा श्रेष्ठ है । यज्ञ जलों का उत्पादक है। वहां देखिये ।

भावार्थः—या कृतदीर्घब्रह्मचर्यअलिष्ठा जितेन्द्रिया वसन्ताद्यतुकृत्युनिलक्षणा पत्याद्यपराधक्षमा कारिणी शत्रुनिवारादिकोत्तमपराक्रम स्त्री नित्यं स्वं स्वामिनं प्रीणाति तां पतिरपि नित्य मानन्दयेत् ॥२६॥

तत्र कूर्मसञ्ज्ञकयो द्यावापृथिव्यो रुपधाने तृतीयो मन्त्रः॥

२२७ मही च द्यौः पृथिवीचन इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमसि ॥ य० अ० १३। मं० ३२ ॥

[अस्य मन्त्रस्योपरि शतपथब्राह्मणम्]

मही द्यौः पृथिवीचन इति । मही द्यौः पृथिवीचन इत्येताविमं यज्ञं मिमिक्षतामितीमं यज्ञमवतामित्येतत् पिपृतां नो भरीमसि, इति बिभृतां नो भरीमभिरित्येतद् द्यावापृथिव्ययोत्तमयोप दधाति । द्यावापृथिव्यौ हि कूर्मः॥ श० कां७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा १०

२२७ यज्ञ ही महान् देव है इस में प्रमाण, 'चत्वारि शृङ्गात्रयो अस्यपादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीतिमहो देवो मर्त्यां आविवेश ॥ "गोप. ब्रा. पू. भा. प्रपा. २ ब्रा. ६॥ इस के अर्थ में गोपथ में लिखा है कि "इत्येष ह वै महान् देवो यद् यज्ञः ७॥ अर्थात् निश्चय से यही यज्ञ महान् दिव्य गुणों का देने वाला है । इस मन्त्र में शब्द शास्त्र के उत्पाति का मूल महामुनि पतञ्जलिने स्वकृत महाभाष्य के पस्प शाह्लिक में बडी उत्तमता से दिखाया है,और गोपथ में इसका अर्थ यज्ञविषय में है ॥

३२८ य. अ. १३ मं. ३१ में आये हुये "तत्रगच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ की पुष्टि में' "येनास्य पितरो याताः ॥" म. । अ. ४ । श्लो १७८ प्रमाण अर्थ सहित पूर्व लिखा गया है जहां देखलेना चाहिये । यहां पर ३२८ की क्रम संख्या में "महीचद्याः ॥ मन्त्र आगे लिखा है उपधान के तीन मन्त्रों में से क्रमशः यह तीसरा मन्त्र है ।

महीद्यौः "पृथिवीच" इस तीसरी ऋचा से यजमान यज्ञ में कूर्म सञ्ज्ञक द्य व पृथिवी का उपधान (स्थापन) करे ॥

(व्याख्या) द्यावा पृथिवी के उपधान का तात्पर्य यही है कि यज्ञ से द्युलोक और पृथिवी लोक के वायु आदि जड का सुधार करना चाहिये व शुद्ध पवित्र हों । "कूर्मो वै वृषा योषापाढा" इस शतपथ के प्रमाण से यज्ञ का यजमान कूर्म अर्थात् क्षत्रिय युवापति और क्षत्रिया युवती पत्नी होंगे । और क्षत्रियातिरिक्त अन्य भी यजमान का आसन ग्रहण कर सकते हैं परन्तु मुख्यार्थ में क्षत्रिय ही यजमान को शतपथ में माना है ।

सायणचार्य ने "पुरुषमऽस्यावृत्तं प्राणं यजमाने तद्दधाति" इस शतपथ के मूल वचन का अर्थ यह किया है कि "सुवर्ण (सोने) का पुरुष रूपी कूर्म यज्ञमें स्थापित करना चाहिये अर्थात् कूर्म की सोने की मूर्ति यज्ञ में स्थापित" करे, उपर्युक्त पुरुषम०' वचन का यह अर्थ शतपथ के अनुकूल नहीं है । क्यों कि शतपथकारने कूर्म शब्द के 'रस' 'आदित्य' 'वपायोषा' 'वाणी,' 'प्राण' 'द्यावा पृथिवी' और 'शिर' इत्यादि अर्थ लिखा है उन्हीं का उपधान शतपथ के अनुकूल है । उपाधन का अर्थ जो सायणादिने किया है वह यहां ग्राह्य नहीं हो सकता क्योंकि वैण उपधान शतपथकार मानते ही नहीं । कूर्म का उपधान यही है कि क्षत्रिय युवा पति अपनी पत्नी सहित प्रजा जन की रक्षा के लिये वासन्तिक यज्ञ करके युद्धार्थ यात्रा किया करे । दूसरा प्रयो-

३२९ घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम् ॥ य० अ० ५ मं० २८ ॥

३३० द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ य० अ० २४ । मं० ३४ ॥

जन इस यज्ञ के करने का यह है कि वर्षा जब चाहें होवे, । यह वासन्तिक वैश्वानर यज्ञ क्षत्रियों को बड़े धूमधाम से करना चाहिये । (पदार्थः) (मही) (महती) (द्यौः) सूर्यः (पृथिवी) भूमिः (च) (नः) अस्माकम् (इमम्) (यज्ञम्) (मिमिक्षताम्) सेवितुमिच्छेताम् (पिपृताम्) पालयतम् (नः) अस्मान् (भरीमभिः) धारणपोषणाख्यैः कर्मभिः ॥३२॥

जैसे-भूमि और सूर्य सब का धारण प्रकाश और पालन करते हैं उसी प्रकार क्रियाशील यजमान अपनी पत्नी सहित प्रजाजन की रक्षा करे ॥

यह ऋषि दयानन्द कृत पदार्थ और भावार्थ है ।

कूर्म (क्षत्रिय) पति पत्नी दोनों घृतादि पदार्थों से द्युलोक और पृथ्वी लोक को (३२९) (३३०) परिपूर्ण करें । 'द्यावा पृथिव्यशब्द—स्तु द्यावापृथिवी । शुनासीरेत्यादि । सूत्रेण देवतार्थे यत्प्रत्ययान्तः" इति सायणः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवतेऽस्य, द्यावापृथिवीयः । द्यावापृथिवी है देवता इसके, । मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय देवता कहाता है । द्यावा पृथिव्य शब्द में द्यावा पृथिवी शुनासीर०" इस पाणिनीय सूत्र से देवता अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ है । द्यावापृथिवी देवतात्मक इस इस लिये हैं कि ये लोक क्रियात्मक हैं इन्हीं के भीतर सब प्राणी क्रिया करते है कूर्मिन् शब्द जो वेद में आया है उसका अर्थ जो पृथिवी आदि का स्वामी हो वह कूर्म कहाता है ॥ ३२८॥ ३२९॥

३३१ तस्य यदधरं कपालम्। अयं सः लोकस्तत् प्रति
ष्ठितमिव भवतीति। स एष इम एव लोकाः।
कूर्ममुपदधाति॥

श॰ कां॰ ७। अ॰ ५ प्रपा ४० ब्रा॰ १। २॥

३३२ ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति
सिन्धवः। माध्वीनः सन्त्वोषधीः॥ य॰ अ॰ १३ मं॰
२७॥

---

३३१ तस्य (कूर्मस्य) ब्रह्माण्डस्य ब्रह्माण्डान्तर्गतस्य भूगोलास्यवा (यत्) [अधरम्] (कपालम्) खर्परसदृशम् (अयम्) [सः] (लोकः) उस कूर्म अर्थात् ब्रह्माण्डान्तर्गत गोलाकार पृथिवी के नीचे का कपाल जो खर्पर सदृश है वह यही पृथिवी लोक है अर्थात् दो कटाहों के सम्पुट के समान गोलाकृति यह ब्रह्माण्ड और तदन्तर्गत यह भूगोल है। यद्यपि यह ब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति को धारण करता हुआ आकाश में स्थित सूर्य के चारों ओर घूमता है तथापि स्थित सा दीखता है। ये पृथिव्यादि लोक ही कूर्म कहाते हैं।

(कूर्ममुप॰) कूर्म अर्थात् पृथिव्यादि लोकों की रचना और ईश्वर कृत है कूर्म का अर्थ ईश्वर, ब्रह्माण्ड, आधान अग्नि, पृथिव्यादि लोक, वाणी, सपत्नीक क्षत्रिय यजमान, प्राण, और आदित्य है। यजमान यज्ञ से ब्रह्मादि का स्थापन करे (व्याख्या) "[१] अपाङ्कम्भन्" इस मन्त्र में कूर्म का अर्थ सपत्नीक यजमान, [२] त्रीन्स मुद्रान्समसृपत्॰" कूर्म का अर्थ अज्ञ और उस की व्यापकता [३] तीसरे महीद्यौः इस मन्त्र में कूर्म का अर्थ द्यावा पृथिवी है॥

(यज्ञ विषयः)

(वासन्तिकयज्ञः)

३३३ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रंजः मधुद्यौरस्तु नः
पिता ॥ य० । अ० १३ मं. २८ ॥

३३४ मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ऽ अस्तु सूर्य माध्वी
र्गावो भवन्तु नः ॥ य० अ० १३ । मं० २९ ॥

---

३३२ सुखदायक शीतल वायु चले, मधुर गुण युक्त नदी और समुद्र में वर्षा हो औ पधियां हमारे लिये मधुरगुण युक्त हों ॥२७॥

३३३ वायु, जल, ओषधियां, ये सब सात्विक गुण वाले हों ॥२८॥
(व्याख्या) "उर्ध्वं सत्व विशाला" ॥ साङ्ख्य० । अ० ३ सू० ४८॥ जिसमे सत्व गुण बहुत है, वः सृष्टि उपर होती है ॥ "तमो विशाला मूलनः ॥ सां । अ० ३ सू. ४९॥ नीचे की ओर तमोगुण प्रधान सृष्टि होती है ॥ ५० ॥ "मध्ये रजो विशाला" ॥ सां । अ. ३ । सू. ५१ ॥ बीच में सृष्टि रजोगुण प्रधान होती है ॥ १ ॥ शरीर में मस्तिष्क पुष्टि सात्विक दुग्ध घृतादि और फलादि से होता है। खाये पिये हुये सतोगुणी पदार्थ शरीर के ऊपर भाग में जाते हैं तमोगुणी शरीर के नीचे भाग में और रजो गुणी शरीर के मध्य भाग में जाते हैं ॥

३२९ (भावार्थः) हे मनुष्यो तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों की के होम से वनस्पति आदि कोमल गुण युक्त हों ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को तुम सब जने प्राप्त होओ ॥

(एक ही दिन में ६ ऋतु)

(एकस्मिन्नेव दिने षडृतवः)

२३४ तत्र पूर्वाह्णे वसन्तस्य लिङ्गं मध्याह्ने ग्रीष्मस्याऽपराह्णे प्रावृषः। प्रदोषे वार्षिकं शारदमर्द्धरात्रे प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ॥ सुश्रुते। सूत्रस्था० अ० ६ ॥

होम में वनस्पति आदि कोमल गुण युक्त हों ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को तुम सबजने प्राप्त होओ ॥२९॥

२३४ सुश्रुत सूत्र स्थान अ० ६ में एक ही दिन में ६ वसन्त आदि ऋतुओं का उल्लेख है जैसे- दिन के प्रथम प्रहर में वसन्त ऋतु, मध्याह्नमें ग्रीष्म ऋतु, सायम् वर्षा ऋतु अर्द्धरात्र में शरद् ऋतु और उषः काल अर्थात् पांच घड़ी रात्रि शेष में हेमन्त ऋतु होता है ॥

(व्याख्या) वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय, और वर्षा में वैश्य अग्न्याधान (अग्नि का स्थापन) करे ऐसा शतपथ में कहा है। आज कल भी माघ सुदि पञ्चमी को वसन्त पञ्चमी के नाम से यज्ञ की स्थापना होती है, इस तिथि से यज्ञ के सब उपकरण एकत्रित करने का आरम्भ प्राचीन काल में होता था उसी का रूपान्तर होली है। होलाष्टक का यही अभिप्राय था कि अविच्छिन्न आठ दिवस पर्यन्त यह वासान्तिक यज्ञ ब्राह्मणादि चारों वर्ण मिल कर करें।

२३५ ये (जो) (देवाः) व्यावहारिक जड सूर्यादि देवाद्यु लोक में स्थित ग्यारह ज्यि संख्या है अर्थात् पहिला इस पृथिवी पर अग्नि और अन्तिम द्युलोक (प्रकाशस्थ लोक) में सूर्य है इन दोनों के बीच अन्तरिक्ष

(द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष के देवों को
यज्ञ द्वारा भाग पहुंचाने का विषय)

३२६ ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं
जुषध्वम् ॥११॥

३२७ ये देवा अन्तरिक्ष एकादशस्थ ते देवासो हविरिदं
जुषध्वम ॥१२॥

३२८ ये देवा पृथिव्या मेकादशस्थ ते देवासो हविरिदं
जुषध्वम् ॥१३॥

(अथर्व० कां० १६ अ ०४ सू० ३०)

और पृथिवी देव इस हवि को ग्रहण करें ॥

(ये) (दिवि , द्युलोके (एकादशस्थ देवाः) (ते) (देवासः) आज्जसे
रसुगि ।

त्यसुगागमः (इदम) हविः पायसादि चतुर्विधंद्रव्यं होमाहुति विधिना
(जुषध्वम्) सेवन्ताम् । अत्र व्यत्ययो बहुलमिति पाणिनीय सूत्रेण
पुरुषव्यत्ययः । व्यत्ययेन, मध्यमपुरुषस्य बहुवचनस्य स्थाने प्रथम
पुरुषस्य बहुवचनस्य रूपम् । "जुषी" प्रीतिसेवनयो रिति धातुः ।
द्युलोक जहाँ सूर्य है वहां के ११ देव होम की हुवी हवि का सेवन
करें अर्थात् यह होम उन देवों के दुर्गुणों को दूरकर उनको शुद्ध करे ॥

३२६ (ये) जो (अन्तरिक्षे) पृथिवी और सूर्य के बीच में देव हैं (ते) वे
(देवासः) देव (इदम्) इस (हविः) होम की हुई हवि को (जुषध्वम्)
सेवन्ताम (सेवन करें) १२॥

३३८ [ये] जो (पृथिव्याम्) इस पृथिवी पर [एकादशस्थ देवाः] ग्यारह संख्या में स्थित देव हैं [ते] वे [देवासः] वे सब देव [इदम्] इस को [जुषध्वम्] सेवन्तामू (सेवन करें) ॥१३॥

[व्याख्या] ' यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा । निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ अथर्व । काण्ड १०। प्पा० २३। अनु० ४। मं. २३॥

इत्यादि मन्त्रों में ३३ देवों का उल्लेख है द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी येतीन लोक हैं एक २ लोक में वसु आदि ११ देव तीनों मन्त्रों में हैं, ग्यारह देव होने से उनसे बनी इन्द्रियें भी शरीर में ११ ही हैं। समस्त शरीर पृथिवी लोक, शिर द्युलोक और उदर अन्तरिक्ष लोक के समान है ॥ ११ को तीन से गुण दो तो ३३ देव शरीर में काम करते हैं जैसे–पति पत्नी के सहवास समय में कर्मानुकूल जीवात्मा के गर्भाशय में प्रवेश करने पर सन्तान का शरीर बनता वैसे ही वेद में अलङ्कार रूप से उपदेश है कि सूर्य पुरुष स्थानीय और पृथिवी स्त्री स्थानी है। यज्ञ से बादल बनते उन बादलों को पुरुष स्थानी सूर्य अपनी किरणों द्वारा अपनी स्त्री रूपिणी पृथिवी पर वर्षा करता उस वर्षा से स्त्री पृथिवी के गर्भ में पडे हुए अनेक प्रकार के बीजों से नाना विध वृक्षों के शरीर बनते और उसी वर्षा से अनेक प्रकार के फल और जव आदि उत्पन्न होते हैं उनके खान पान से वीर्य बनकर प्राणियों के शरीर बनते हैं। जैसे स्त्री पुरुष का सहवास सन्तान का हेतु है वैसे ही यज्ञधूमजन्य बादलों के वर्षण से सूर्य और पृथिवी का वर्षण संयोग अन्न फलाद्युत्पत्ति का हेतु है ॥

मन्त्र का सरल अर्थ यह कि (ये) यूयम् (देवाः) दिव्यगुण विशिष्टाः (एकादश) संख्यायाम् पृथिव्यां (स्थ) असभुविधातुः (भवथ) स्मेति क्रिया पदम् ।

त्वादि मध्यम पुरुषस्य बहुवचनम् ।

तेयूयं देवा इदं । जुषध्वम् (सेवध्वम्)

ब्रह्माण्ड के गोला कृतिकादि०

(शतपथीय सप्तम काण्डस्य दशमम् ब्राह्मणा)

॥ इसी कूर्म रूपी ब्रह्माण्ड के उदर में सम्पूर्ण जगत् है ॥ इसमें प्रमाण

३३९ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यान्ति धीरा स्तस्मिन्ह, तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ य० अ० ३१ मं. १९ ॥

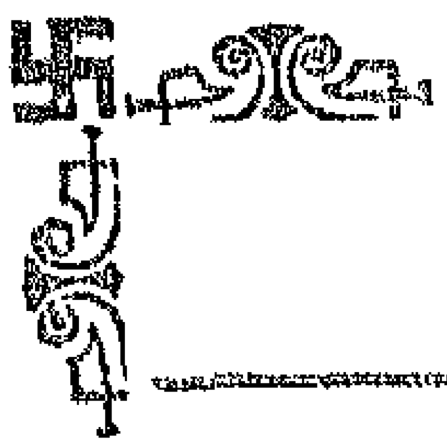
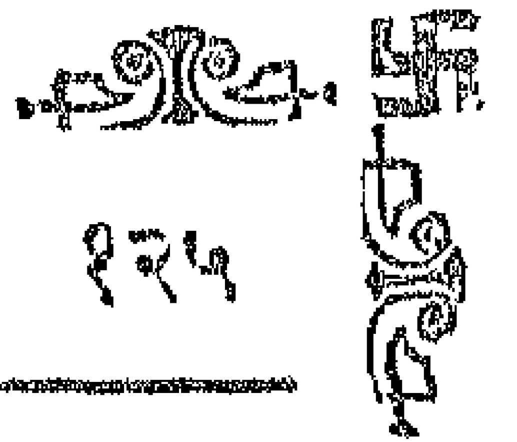
[ब्रह्माण्ड गोल है)

३४० भू भूधरास्त्रिदशा दानव मानवाद्या
३३८ येषांञ्च धिष्ण्य गगने चरचक्रकक्षाः ।
लोकव्यव स्थिति रुपर्यु परि प्रादिष्टा
ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम् ॥६६॥
सिद्धान्त शि० । भुवनकोष । ६६॥

---

३३९ "वही परमात्मा प्रजापति सबका स्वामी है, वही जीव और अन्य जड जगत् के मध्य में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हो रहा है और अपने आप सदा अजन्मा रहता है । उस परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से ही यह सम्पूर्ण जगत् बहुत प्रकार वाला उत्पन्न होता है, उस (परमात्मा) की प्राप्ति का कारण सत्य धर्म का आचरण और वेद विज्ञान है उसके प्राप्ति के कारण को ध्यान शील ही सब ओर से देखते हैं जिसमें सब लोक स्थित हैं उस ही परम पुरुष में धीर अर्थात् ज्ञानी मनुष्य मोक्षानन्द को प्राप्त होकर स्थिर होते हैं" ॥१९॥

३४० भूमि, पर्वत, देवता, दैत्य, मनुष्य आदि और ग्रह (कक्षा) भ्रमण मार्ग, भूलोक आदि क्रम इसी ब्रह्माण्ड के भीतर है ॥३२४॥

(तत्राकाशीय कक्षा वि.)

(आकाश की कक्षा)

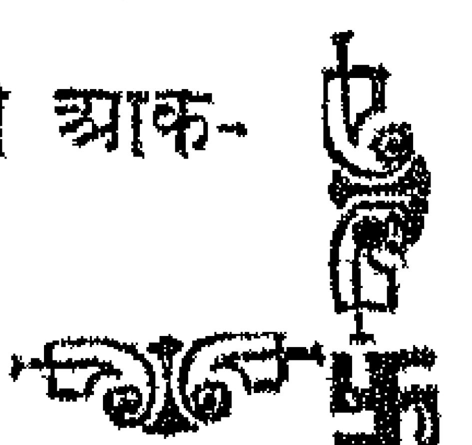
३४० कोटिघ्नैर्नखनन्द षट्क खनभ्रद्भभुजेन्दुभि
१८७१२०६९२०००००००० र्ज्योतिः शास्त्रविदो
वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः। तद् ब्रह्माण्ड कटाह
सम्पुटतटे, केचिज्जगुर्वेष्टनम् । केचित् प्रोचुरदृश्यदृश्यक
गिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥६७॥
सिद्धान्त शि० गोलाध्या० भुवन कों० श्लो० ६७

३४० एभिर्योजनैस्तुल्यां गणकाः खकक्षामाकाशपरिधिं वदन्ति। तत्रकथमनन्त स्याकाशस्येयत्ता वक्तुं शक्यत इत्याश ङ्क्याहर्पति धृति युजो नभसः परिधेरिदं मानं वदन्ति। केचिल्लोका लोकं वदन्ति। यतस्तदन्तर्वर्तिन एवार्क रश्मयः। एवमन्ये वदन्तीति नास्माकमित्यर्थः प्रमाणशून्यत्वात् करतल कलित सकल ब्रह्माण्डगोला एव वक्तुं शक्नुवन्ति"

(इति भास्करा चार्यः)

प्रभा-"ब्रह्माण्डमेव कटाहतटम् कटाहद्वितयस्यैव सम्पुट गोलाकृतिरिति तस्य तटे सन्धौ वेष्टनपरिधिं जगुः ऊचुः। गोलाकार ब्रह्माण्डावच्छिन्नाकाश-परिधिमाहुः स्मेत्यर्थः। अदृश्य दृश्यक गिरिं पूर्वापरस्थित लोकालोकपर्वत योर्दक्षिणो त्तरदिशि मिलनात् तदवच्छिन्ना काश परिधि लोका लोक पदवाच्यः तथा च लोकालोकेन वेष्टितमिति सौरोक्तिः" ॥

३४१ करतले हस्ते कलितो गृहीतो यथामलकं धात्रीफलं तद्वदमलं निर्दूषणं गोलं ब्रह्माण्डगोलं सकलं समग्रं ये विदन्ति तैरित्यर्थः। जो हाथ में लिये हुए आँवले के सदृश (गोल) ब्रह्माण्ड को समझे हुए हैं जिसमें सूर्य रश्मियों से आक-

(तत्र ब्रह्माण्ड गोल विषयः)

३४१ करतल कलिताऽमलकवदमलं
सकलं विदन्ति ये गोलम् । दिनकर-करनिहत
नमसाः परिधिरुदितास्तैः ॥ ६८ ॥
सि० शि० गो० भु० श्लो० ॥ ६८ ॥

३४२ ग्रह नक्षत्र ताराणां, भूमेर्विश्वस्य वा विभुः ।
देवासुरमनुष्याणां, सिद्धानाञ्च यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

३४३ ब्रह्माण्डमेतत् सुषिरं, तत्रेदं भू र्भुवादिकम् ।
कटाहद्वितयस्यैव, सम्पुटगोलकाकृतिः ॥ २९ ॥

शीय अन्धकार (जहां तक) नाश हो जाता है गोल के जानने वाले उसको ब्रह्माण्ड की परिधि कहते हैं

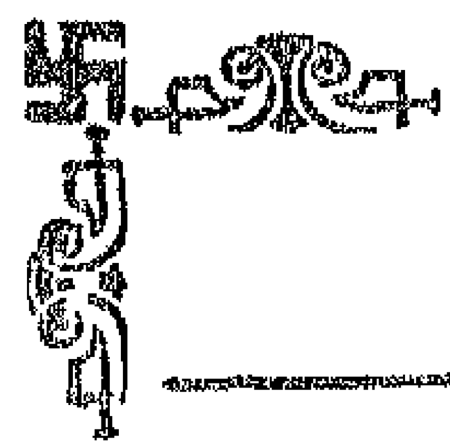
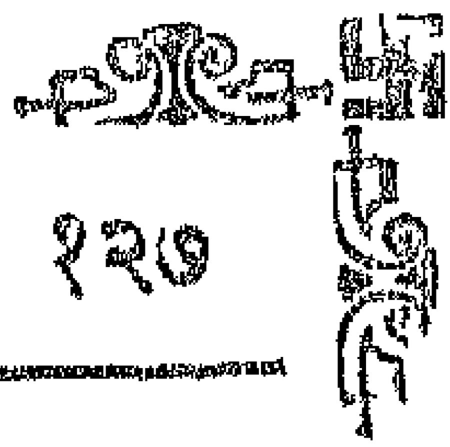
मध्ये समन्ता दण्डस्य, भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं, ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥
सूर्य सि० भूगो० अ० १२ श्लो० ३२॥

ब्रह्माण्ड के केन्द्र रूप मध्य स्थान में ईश्वर की धारणात्मिका परम शक्ति को धारण करता हुआ यह भूगोल आकाश के बीच स्थित है ॥३२॥

३४२ भूमि, पर्वत, देवता, दैत्य, मनुष्य आदि और ग्रह (कक्षा) भ्रमण मार्ग भूर्लोक आदि का क्रम सब इसी ब्रह्माण्ड के भीतर है ॥२८॥

३४३ दो कटाहों के सम्पुट से बने हुए गोल के सदृश इस अवकाश आकाश में भूर्भुवादिक सम्पूर्ण जगत् स्थित हैं ॥२९॥

३४४ ब्रह्माण्ड परिधि को आकश कक्षा कहते हैं उसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते और नक्षत्रों के नीचे अधोधः क्रमसे

(तत्र नक्षत्र ग्रहाणां भ्रमणानि.)

३४४ ब्रह्माण्डमध्ये परिधि, व्योमकक्षाभिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणं भानं, मधोधः क्रमशास्तथा ॥३०॥

३४५ मन्दामरेज्यभूपुत्रः सूर्यशुक्रेन्दु जेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोधस्थाः सिद्धा विद्याधरास्तथा ॥३१॥

(सप्तानां पातालभूमिनां पि.)

३४६ मध्ये समन्ताद्ण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं, ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥
सू० सि० अ० १२। श्लो. २९।३०।३१।३२॥

३४७ तदन्तर पुटाः सप्त, नागासुरसमाश्रयाः ।
दिव्यौषधिरसोपेताः रम्याः पातालभूमयः ॥३३॥
सू. सि. अ. १२ श्लो. ॥३३॥

---

३४५ शनि, बृहस्पति, भौम, सूर्य शुक्र, बुध और चन्द्र भ्रमण करते हैं (३१)

३४६ ब्रह्माण्ड के केन्द्र रूप मध्य स्थान में ईश्वर की धारणात्मिका परम शक्ति को धारण करता हुआ यह भूगोल आकाश के बीच स्थित है ॥३२॥

३४७ मनोहर और दिव्य स्वयं प्रकाश स्वरूप औषधियों के तेजोमय रसों से युक्त सात पाताल भूमियां अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल उस उस अन्तर पुट (गुहारूप) नियत हैं । इन पातालभूमियों में वासुकि आदि मणिधारी सर्प और दैत्य रहते हैं ॥३३॥

इति शतपथब्राह्मणस्य सप्तमे काण्डे कूर्मोपधाने दशमं ब्राह्मणं तृतीयो मन्त्रश्च समाप्तः ॥

शतपथ ब्राह्मण के सातवें काण्ड के कूर्मोपधान अर्थात् सपत्नी क यजमान क्षत्रिय के उपधान में यह दशवां ब्राह्मण और तीसरा मन्त्र समाप्त हुआ ॥




(गार्हपत्यादित्रयाणामग्नीनां स्थापनवि.)

(शतपथीय सप्तमकाण्डे चैकादश ब्राह्मण:)

३४८ तिस्रभिरुपदधाति । त्रय इमे लोका अथो त्रिवृदग्नि र्यावत्य-
स्य, मात्रा । तावतैनमेतमुपदधाति त्रिभि रभ्यक्ते तत्र
पट्‌ तस्योक्तो बन्धु रवकाऽधस्ताद्‌ भवन्त्ययवका उपरिष्टा
दापोवाऽवका अपामेवैनमेतन्मध्यतो दधाति सादयित्वा
सूद दोह साधिवदति तस्योक्तो बन्धुरिति ॥११॥

३४८ यजमान यज्ञ में तीनों का उपधान करे। द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष ये तीन लोक हैं। तीन का दूसरा अर्थ तीन अग्नि हैं। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीनों की स्थापना करे। जितने परिमाण में अग्नि हो, और जितनी होम सामग्री की मात्रा हो उतने ही परिमाण में द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष का उपधान करे जिस से प्रज्वलित अग्नि में होम समाग्री ठीक २ भस्म हो जावे और उसमें अजीर्ण दोष न उत्पन्न हो। सही आदि तीन मन्त्र और गार्हपत्यादि तीन अग्नियें अथवा तीन लोक और तीन अग्नियों मिलकर (६) की संख्या पूर्ण होती है बहते हुए जल के निकट यज्ञ वेदी हो, अथवा चारों ओर जल और मध्य में यज्ञ वेदी हो, गमनागमन के लिये एक ओर जल का मार्ग बन्द हो। यज्ञ वेदी की मेखलाओंके चारों ओर नीचे बाट बनाकर जल भरदे जिससे चीवटों आदि जन्तु यज्ञ वेदी की अग्नि में न गिरें। प्रणीता में भी जलभर कर उत्तर ओर यज्ञ वेदी के पास रक्खे॥

शतपथ के सातवें काण्ड के आरम्भ में "कूर्मंमुपदधाति" लिखा है कूर्म का अर्थ भूगोल ब्रह्मा, यजमान, और आधान अग्नि है। यज्ञवेदी में आधान अग्नि का स्थापन ही कूर्म का उपधान, है। यज्ञ वेदी के उत्तर ओर दुग्धादि रसों का स्थापन भी कूर्म का अर्थ है सपत्नीक यजमान ब्रह्मा आदि का उपधान करे उनको यज्ञ में वरण करे।

(स्वर्गलोक में पहुंचाने के लिए कूर्म का उपधान वि.)

३४९ स्वर्गलोके मनुष्यः कूर्मं उपधीयते ॥

(कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीय संहिता)

प्रपाठक ७ अनुवाक ९

कूर्म शब्द के उपर्युक्त प्रकरणानुसारी अर्थों को छोडकर सायणाचार्यने कूर्म का जल जन्तु कच्छप अर्थ करके उसका उपधान लिखा है कि कूर्म को गहिरे जल में स्थापित कर उसके ऊपर और नीचे अव का अर्थात् सेवार (जो एक प्रकार के हरे पत्रों वा तृण के रूप में तडागस्थ जल पर होता है) से उसको ढाकें॥ यह अर्थ चिन्त्य है ॥

सायण ने अवतारवाद पक्ष को लेकर कूर्म का अर्थ कच्छप किया है यह अवतारवाद वेदानुकूल नहीं है, यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र ८ में आये हुवे "अकायम्" पद से अवतार वाद का निषेध है। "कूर्ममुपदधाति" कूर्म का अर्थ पृथिवी भी है जो शतपथ के ७ वें काण्ड से सिद्ध है। पृथिवी गोल है उसके आधार कपाल को कूर्म कहा है वह ब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये हुवे आकाश में स्थित है, कूर्म की पीठ पर पृथिव्यादि १४ भुवन स्थित है यह जो कहा जाता है वह असम्भव है। वेद में स्पष्ट उपदेश है कि परमात्मा के नियम पर यह पृथिवी आकाश में स्थित है। "स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम" ॥ य० । अ० । म.

३४९ कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता प्रपाठक ७ सात अनुवाक ९ में लिखा है कि यजमान को स्वर्गलोक में पहुंचाने के लिये यज्ञ में कूर्म का स्थापन कियाजाता है अथर्वाङ्गिरोभिश्च गुप्तोयज्ञश्चतुष्पाद् दिवमारूरोह ॥ गो० पू० भा० प्रपा. ५ ब्रा० २५ ॥ अर्थात् अथर्वाङ्गिरों से सुरक्षित चतुष्पाद् यज्ञ ही स्वर्ग का साधन है। इस प्रमाण से यज्ञ ही कूर्म है यही यजमान को स्वर्ग लोक मे पहुंचाने वाला है इस लिये कूर्म का अर्थ यहां यज्ञ है कच्छप नहीं। हां निष्काम यज्ञ से यजमान को स्वर्ग अर्थात् दिव्य सुख की प्राप्ति होती है यज्ञ

(यह ही कूर्म है)

३५० अथर्वाङ्गिरोभिश्च गुप्तो यज्ञश्चतुष्पाद् दिवमारोहेत् ॥
(गोपथ ब्रा० पूर्वभागे प्रपाठके ५ ब्रा० २५)

को अभ्युदय और निश्रेयस दोनों की प्राप्ति का साधन चरकाचार्य ने चरक मे लिखा है। "स्वर्गलोके नेतुमयङ्कूर्म उपाधीयते" इस में आया हुआ कूर्म शब्द यज्ञ का वाचक है॥ अथर्वाङ्गिरों से सुरक्षित यज्ञ जिस में होता अध्वयु, उद्गाता और ब्रह्मा ये चतुष्पा रूप अधिकारी होते है वह स्वर्ग को प्राप्त करने वाला होता है॥" कूर्म अर्थात् क्रियात्मक यज्ञ ही यजमान को स्वर्ग [दिव्यसुख] को प्राप्त कराने वाला होता है। जब अषाढा पत्नी क्षत्रिया है तब उसका पति क्षत्रियसिद्ध ही है और वही कूर्म यजमान है॥

३५० अथर्वाङ्गिरस ऋषियों से सुरक्षित यज्ञ जिसमें होता अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा ये चतुष्पाद रूप यज्ञाधिकारी होते हैं वह चतुष्पाद् यज्ञ स्वर्ग को पहुंचाने वाला होता है। अभ्युदय और निश्रेयस दोनों का यह यज्ञ साधन है। कूर्म का अर्थ यहां यज्ञ है कच्छप नहीं॥

इति शतपथ ब्राह्मणस्य सप्तमे काण्डेऽग्न्याधानीय कूर्म सञ्ज्ञकाग्नि स्थापन प्रकरणं समाप्तम्

(समाप्तश्चैकादशो ब्राह्मणः)

"यह शतपथ ब्राह्मण के सातवें काण्ड में अग्न्याधानीय कूर्म सञ्ज्ञक अग्नि के यज्ञकुण्ड में स्थापन का प्रकरण और ११ वां ब्राह्मण समाप्त हुआ॥

(अलङ्कार रूप में यज्ञ विषय)

(अथशात पथीय सप्तमकाण्डस्य पञ्चत्रिंशद् ब्राह्मणः)

३५१ पशुरेष यदग्निः । सोऽत्रैव कृत्स्नः संस्कृतस्तस्या वाङ् प्राणः स्वयमातृ श्रोणी द्वियजुः पृष्ठ्योः रेतस् सिचौ कीकसा विश्वज्योतिः ककुद् मृतव्ये ग्रीवा अषाढ़ा शिरः कूर्मो ये कूर्मे प्राणाः ये शीर्षन् प्राणास्ते ॥ श० कां७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० ३५॥

अब शतपथोक्त सप्तम काण्ड के ३५ वां ब्राह्मण का आरम्भ है ॥

३५१ शतपथ काण्ड अध्याय ५ प्रपाठक ४ ब्राह्मण ३५ का अर्थ निम्न लिखित है सायण लिखते हैं कि 'एषः' 'यत्' 'अग्निः अर्थात् यह जो चित्याग्नि नाम की अग्नि है वह पश्वाकार है अर्थात् पशु की आकृति वाली वेदी में इस अग्नि का का स्थापन किया जाता है ॥ 'चित्याग्निचित्येच, अष्टा० अ० ३। सू० इस सूत्र में यत् प्रत्ययान्त चित्या शब्द निपातित है। चित्याग्नि की वेदी में अग्नि संस्कृत अर्थात् संस्कार युक्त रहता है। कान, त्वगिन्द्रिय, आंख रसना, और नासिक इन पांच ज्ञानेन्द्रियों में अथवा प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान में वह अग्नि प्रविष्ट है। जैसे हृदय में प्राणा स्थित हैं, वैसे हृदय स्थानीय यज्ञ वेदी की भूमि में अग्नि स्थापित की जाती है। स्वयम्-आतृ का अर्थ सायण किंकिणी और गिटकी लिखते हैं, ये पृथ्वी पर अपने आप पड़ी हुई रहती हैं कभी २ चलते समय ये पैर में चुभ जाती हैं यज्ञाग्नि में दी हुई आहुतियें पृथक् कि किणियों के समान है। पश्वाकार यज्ञाग्नि की वेदी रचना 'श्रोणी, नितम्ब वा कटि भाग के तुल्य है। और कटि भाग अथवा २ नितम्ब जैसे संगत वैसे ही यज्ञ वेदी भी सङ्गत रूप है। अथवा यज्ञ के यजमान और अध्वर्यु कटि (कमर) समान हैं और वे सङ्गत रूप है। 'पृष्ठ्यः, का अर्थ सायण लिखित

यह कि 'महान्ति पार्श्वानि शोनि' पार्श्वादिक अर्थात् शरीरस्थ पसुलियों की बड़ी हड्डियें ग्रहण करता है जैसे शरीर में ये बड़ी हड्डियां वैसे पलाश, बिल्व पीपल, और गूलर आदि के बड़े मोटे गोल काष्ठ जो परिधि के नाम से कहे गये हैं यज्ञ के अङ्ग हैं। जैसे शरीर में ह्रस्व नायु आदि सूक्ष्म अस्थि हैं वैसे यज्ञ में कुण्ड की अथवा वेदी की परिमाण वाली ह्रस्व छोटी २ समिधायें हैं आहुति देते समय जो मध्य २ में यज्ञाग्नि में रक्खी जाती है उनका नाम ह्रस्वास्थि है 'स्तनशिखौ' जैसे पुरुष के शरीरस्थ दोनों अण्ड कोषों में सन्तति का बीज रहता है वैसे ही यज्ञ के द्युलोक और पृथिवी लोक दोनों, बीज समान अर्थात् यज्ञाग्नि की सुगन्धि दोनों लोक में सूक्ष्म रूप से व्याप्त रहती है। 'कीकसाः' कीकस भी शरीरस्थ एक प्रकार की अस्थियें हैं उन की उपमा यज्ञ की समिधाओं के ही लिये है सारांश यज्ञ में समिधाओं का अच्छा प्रबन्ध रखना चाहिये, क्यों कि प्रदीप्ताग्नि में ही आहुति देने का महत्व शास्त्र में है। ह्रस्व (छोटी अथवा सूक्ष्म) (बारीक) समिधाओं की अपेक्षा जो समिधायें कुछ बड़ी और कुछ मोटी गोलाकार होती हैं उनका नाम कीकस है। अग्नि के प्रदीप करने वाले अन्य जो इध्मका रूप उपकरण हैं उनका नाम विश्व ज्योति है। यज्ञ की अपनी चतुर्विध सामग्री आदि के उपकरण विश्व ज्योति है जैसे पीठ के बीचो बीच नीचे से उपर को उठा हुआ मेरु दण्ड [रीढ़] है वैसे प्रदीप्त यज्ञाग्नि की उपर को जाती हुई ज्वाला [लपट] है। यह 'ककुद' का अर्थ है ऋतव्य का अर्थ यह कि जैसे ऋतु ऋतु में उत्पन्न आम्रादि फल शरीर रक्षार्थ खाये जाते हैं वैसेही यज्ञ भी होमकी की हुई ऋतु२ की सामग्री से संसार की रक्षा करता है। और उस यज्ञ की सुगन्धि नासिका द्वारा खायी जाती है ॥

ग्रीवा का अर्थ कन्धरा है शिर के नीचे और भुजाओं के उपर का भाग कन्धरा कहाता है; जैसे कन्धे से गले की रक्षा है वैसे ही १६ ऋत्विज यज्ञ के कन्धे हैं इन्हीं ऋत्विजों से यज्ञ का सब काम चलता है।

अषाढा का अर्थ पत्नी है, जो भीमा, वीराङ्गना, ब्रह्मचारिणी' अपने पति के अपराधों को सहने वाली और दुष्टों तथा दुष्टों के दुष्ट व्यवहार पर उनको उचित दण्ड देने वाली हो उसका नाम अषाढा पत्नी है। वह जैसे अपने पति

(शिर ही इन्द्रिय और गुणों का भाण्डार है)

३५२ शिरसि इन्द्रियाणि इन्द्रियप्राणवहानि च स्रोतांसि सूर्य
मिव गभस्तयः संश्रितानि ॥ चरकसंहिता अ० ८ ।
सिद्धिस्थान०

और परिवार आदि की रक्षा करता है वैसे ही यज्ञ भी यजमान और संसार का रक्षक होता है।

जैसे शरीर में शिर कूर्म अर्थात् देव कोष ज्ञानेन्द्रियों का घर है अथवा उत्पत्ति का स्थान है वैसे इस शिर रूपी सूर्य से नाडी और ज्ञान जनक तन्तुओं के सम्बन्ध से रथी जीवात्मा ज्ञानी होता है, शिर का नाम कूर्म इस लिये है कि सर्वोत्तम पवित्र शुद्ध विचारों की उत्पत्ति इसी से होती है, शिर (मस्तिष्क) विचारों का केन्द्र स्थान है, यह शिर देवकोश अर्थात् दिव्य गुणों का कोश (खज़ाना) है शिर का दूसरा नाम संस्कृत में मूल है, इसी मूलका अपभ्रंश मूड़लोक में प्रसिद्ध है, । शरीर एक वृक्ष के समान है, मूल का अर्थ जड़ है अन्य वृक्षों की जडें नीचे भूमि (ज़मीन) के भीतर होती हैं परन्तु इस शरीर रूपी वृक्ष की जड़ शरीर के उपर है, शिर प्राणों का रक्षक है वैसे ही यज्ञ भी ब्रह्माण्ड का रक्षक है।

'ग्रीवा अपाढा' इसका अर्थ पूर्व लिखचुके हैं फिर भी दूसरा अर्थ यह है कि जैसे गले से शिर को अलग नहीं किया जासकता वैसे ही यज्ञ में अपाढ़ा यजमान की पत्नी यजमान से पृथक नहीं की जा सकती जैसे ग्रीवा शिर से जुड़ी हुई है वैसे ही पति से पत्नी जुड़ी हुई यज्ञ में होती है शिर का अर्थ कूर्म है कूर्म का अर्थ प्राण और इन्द्रिय है, प्राण का अर्थ बल है, बलवान् क्षत्रिय का नाम कूर्म है ॥ कूर्म क्षत्रिय वे कहाते हैं जिन का मस्तिष्क (दिमाग) पवित्र विचार वाला हो ॥

३५२ शिर में इन्द्रिय और इन्द्रियों के प्राण वह स्रोत (छिद्र) हैं जैसे सूर्य की किरणें सूर्य में संश्रित हैं वैसे शिर में इन्द्रिय और उनके प्राण वह स्रोत हैं ॥

तद् वा अथर्वणः शिरोदेव कोश समुब्जितः । तत् प्राणोऽभि रक्षति शिर
अन्न मथो मनः ॥ अथर्व० काण्ड १० सू० २ मं. २७ ॥

वह शिर (अथर्वा) निश्चल परमात्मा के गुणों का भाण्डार ठीक २ बना है उस शिर की (प्राण) जीवनीय वायु सब ओर से रक्षा करता है यह मन्त्र का अर्थ है ॥

३५३ तदेतत् क्षत्रं प्राणो ह्येष रसो लोमान्योषधयः एता मुपादधत् सर्वा ओषधीरुपदधाति ॥ शतप० ब्रा० अध्याय ४ प्रपाठक ३ ब्रा० १२॥

(यज्ञ में ओषधियों के उपधान का वि.)

"काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती०" इस याजुष्क मन्त्र में दूर्वा शब्द आया है लोकम दूर्वा को दूब कहते हैं यह दूब (घास) दो प्रकार की है एक हरितवर्ण और दूसरी श्वेत (सफेद) श्वेत दूर्वा विशेष शीत गुण वाली है।

(तदेतत्०) यह दूर्वा क्षत्र गुण प्रधान है, यज्ञ में इसका उपधान (स्थापन) क्षात्र गुण को उत्तेजित करने के लिये है। दूर्वा (दूब घास) क्षत्र प्राण और रस है, अन्य ओषधियां लोम सदृश हैं 'एताम' इस दूर्वा के उपधान से यजमान सब ओषधियों का उपधान करने वाला होता है। दूब में बल है यह घोड़ों को खिलाई जाती है। भूमिमे इसकी शाखायें प्रशाखायें फैलती हैं

॥ इति शतपथस्य सप्तम काण्डे पञ्च त्रिंशद् ब्राह्मणे यज्ञस्य शरीरेण सहोप मेयोपमान साधर्म्य प्रकरणं समाप्तम् ॥

यह शथपथ के ७ वें काण्ड और ३५ वें ब्राह्मण में यज्ञवेदी का शरीर के साथ उपमेयोपमान रूप साधर्म्य प्रकरण पूर्ण हुआ ॥

(उलूखल और मुसल के उपधान का वि.)

शतपथ का ७ सातवाँ काण्ड आरम्भ से अध्याय ५ प्रपाठक ४ ब्राह्मण
११ पर्यन्त इससे पूर्व लिखा गया है अब इससे आगे
क्रमशः १२ वें ब्राह्मण का आरम्भ किया जाता है ॥

(अथोपधानऽप्रकरणम्)

२५४ अथोलूखल मुसले उपदधाति । विष्णुरकामयताऽन्नादः स्यामिति । स एते इष्टकेऽपश्यदुलूखलमुसले । तेऽउपाधत्त ते उपधायाऽन्नादोऽभवत । तथैवैतद् यजमानो यदुलूखलमुसले उपदधाति येन रूपेण तत् कर्म कृत्वा विष्णुरन्नादो ऽभवत् तेन रूपेण तत्कर्म कृत्वाऽन्नादोऽसानीति तदेतत्सर्वमन्न यदुलूखलमुसलेऽउलूखल मुसलाभ्यां ह्येवान्नं क्रियतऽउलूखल मुसलाभ्यामद्यते ॥१२॥ श० प० कां. ७। अ० ५। प्र० ४ब्रा. १२॥

का . की बनी उखली और मुसल का स्थापन

२५३ यज्ञोपयोगी वस्तुओं का यज्ञ में स्थापन करना उपधान कहाता है। यजमान यज्ञ कुण्ड की उत्तर दिशा में उखली और मुसल स्थापित करे। विष्णु ने कामना की– कि मैं अन्नाद (अन्न का खाने वाला) होऊँ अतः उलूखल और मुसल इन दोनों इष्ट काष्ठों को देखा और दोनों से अन्न का संस्कार किया, ऐसा करके विष्णुअन्नाद होगये वैसे ही यजमान भी चावल, यव, गोधूमादि अन्नों का संस्कार अर्थात् ओखली में डाल पुनः मुसल से कूट शुद्ध करके अन्नाद होवे, संस्कार किये बिना अन्न का न हवन करे और न खावे ॥१२॥

(अन्नोपधानविषयः)

३५५ रेतसिसचोर्वेलयोपदधाति । पृष्ठयो वैरेतः सिचौ मध्य मु पृष्ठयो मध्यत एतस्मिन्नेतदन्नं दधात्युत्तरेऽउत्तर मेवास्मादेतदन्नं दधात्यरत्निमात्रेऽरत्निमात्राद्ध्यन्न मद्यते ॥१३॥ श० प० कां ७ । अ० ५ । प्र. ४ ब्रा. १३

(अन्न संस्कार विषयः)

३५६ प्रादेशमात्रे भवतः । प्रादेशमात्रा वै गर्भो विष्णुरन्न-मेतदात्म, सम्मित मेवास्मिन्नेतदन्नं दधाति यदुवाऽ आत्मसम्मितमन्नं तदवति तन्न हिनस्ति यद्भूयो हिन-स्ति तद् यत् कनीयो न तदवति ॥१४॥ श० प० । कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा. १४

---

३५४ 'रेतः सिचौ' इष्ठ का विशेष हैं । जो पृष्ठि हैं उनहीं का नाम रेतः सिचौ' यहां है । पलाश, बिल्व, गूलर आदि के गोलकार काष्ठ पृष्ठि कहाते हैं इन्हीं का नाम परिधि काष्ठ है ये गोलाकार काष्ठ वेदी के किनारे में रखे जाते हैं और वेदी अथवा यज्ञ कुण्ड के मध्य में भी रखना चाहिये जिससे अग्नि प्रदीप्त ज्वाला रूप में रहे, मध्य में डाली हुई इन समिधाओं के बीच में संस्कृत पायस आदि हविष्यान्न की स्थापना उत्तर दिशा में ही एक हाथ के अन्तर पर यजमान करे । अरत्नि मात्र दूरीपर से ही अन्न खाया जाता है ॥

'सुख मुच्चैः समासीनः समदेहोन्न तत्परः । काले सात्म्यं लघुस्निग्धं
क्षिप्र मुष्णंद्रवोत्तरम् ॥ सुश्रुते अ० ४६ ॥

आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ सुश्रुत में लिखा है कि सुखपूर्व के ऊंचे पीठ आदि पर बैठा हुवा देह को समरख के मनुष्य भोजन ठीक समय पर करे जो सात्म्य (प्रकृत्यनुकूल हो) पाकमें हलका हो, चिक्कना हो रूक्ष नहो कुछ गर्म हो ॥

(उदुम्बरादीनां वनस्पतीनामुपधान वि.)

३५७ औदुम्बरे भवतः । ऊर्गवैरसः । उदुम्बर ऊर्जमेवास्मि
न्नेतद्रसं दधात्यथो सर्वे एते वनस्पतयो यदुदुम्बर एते
उपादधत् सर्वान् वनस्पतीन् उपदधाति । रेतस्सिचौवेलये
मे वै रेतस्सिचावनयोर्वनस्पतयश्चतुः स्रक्तिर्भवति। चतस्रो
वै दिशः । सर्वासु तद्दिक्षु वनस्पतयो मध्ये सङ्गृहीतं
भवत्युलूखल रूपतायै ॥१५॥
(श० प० कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० १५)

---

३५६ उलूखल और मुसल का प्रमाण प्रादेश (एक बिलस्त) मात्र है। जैसे गर्भाशयका प्रमाण प्रादेश मात्र है वैसे ही उलूखल (ओखरी) और मुषल का प्रमाण जानना चाहिये। "अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते" अन्न से प्रजा उत्पन्न होती हैं। 'एतत्, आत्मसम्मितम् एव इस लिये जितना अन्न शरीर की रक्षार्थ आवश्यक हो उसी परिमाण से लेकर उपधान करे अथवा उलूखल में संस्कार करे आत्मसम्मित अन्न ही शरीर का रक्षक होता है अन्यथा वही मात्राधिक्य से खाया हुआ अजीर्णादि दोषों को उत्पन्न करके रोगी कर देता है । शतपथ कार लिखते हैं कि 'आत्म सम्मितम्- अन्नं तत् अवति' अर्थात् शरीर की रक्षार्थ जितने परिमाण में अन्न अपेक्षित हो उतना ही लेने और खाने से शरीर की रक्षा होती है तत् न हिनस्ति । वह अन्न शरीर को दुःखदायी नहीं होता, । भोजन उतना करे जितना ठीक २ जीर्ण हो जावे न न्यून करे और न अधिक किन्तु मात्राशी हो । मात्रा से अधिक अथवा मात्रा से न्यून भोजन करना ये दोनों ही हानिकारक हैं

३५७ साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती इस लिये आचार्य यज्ञ के मुख्य २ साधन कहते हैं । जिनमें पुष्प बिनाही फल होते हैं वे वनस्पति कहाते हैं । वनस्पतियों में गूलर प्रधान वनस्पति है। यज्ञ में उलूखल और मुषल

(अन्न माहात्म्य विषयः)

३५८ यद्वेवोलूखल मुसले उपदधाति । प्रजापतेर्विस्रस्तात् प्राणो मध्यत उदचिक्रमिषत् तमन्नेनागृह्णात् तस्मात् प्राणोऽन्नेन गृहीतो यो ह्येवान्नमत्ति स प्राणिति ॥१६॥ (श० प० कां. ७। अ० ५ प्र० ४। ब्रा० १७)

३५९ प्राणो गृहीतेऽस्मादन्नमुदचिक्रमिषत् तत् प्राणेनाऽगृह्णात् तस्मात् प्राणेनान्नं गृहीतं योह्येव प्राणिति सोन्नमत्ति ॥१७॥ श० प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४। ब्रा. १७

गूलर के बनाने चाहिये। ऊर्क् का अर्थ रस है यह रस (दुग्ध) उदुम्बर मेंही होता है। यज्ञ में उदुम्बर (गूलर) के उपधान से अन्य वनस्पतियों का उपधान तदन्तर्गत है। ओखली के किनारे चारों ओर वनस्पत्ति वृत्त हों। इमे वैरेत-स्विचः, वनस्पतयः ये सब रेतस सिच उलूखलादि वनस्पति कहाते हैं। जो उलूखल मुषल हैं इन दोनों में उलूखल की आकृति चार कोने वाली होनी चाहिये। चार ही पूर्वादि दिशा हैं। चारों दिशाओं में वनस्पति हों, और उलूखल के चारों ओर वनस्पतियों की स्थापना हो उनके मध्य (बीच) में उलूखल की रूपता के लिये उसकी स्थापना हो।

३५८ यवादि अन्न ही खाद्य और भक्ष्य हैं मांसादि अभक्ष्य होने से खाद्य नहीं। शरीर की रक्षा किस प्रकार हो और मनुष्य के लिये खाद्य पदार्थ क्या हैं इसका अनुभव पूर्वक यहां विचार है कि अन्न के शोधनार्थ उलूखल और मुसल का यज्ञ में यजमान स्थापन करे। इतिहास है कि प्रजापति जब थकगये थे तब उनके प्राणोंने अन्न बिना शरीर से निकलना चाहा किन्तु अन्नने उस प्राण को पकड़ा और निकलने न दिया (३५९) सारांश अन्न के खानेपर ही मनुष्य जीवित रह सकता है। जो भक्ष्य पदार्थ है उन्ही का नाम यहां अन्न है अभक्ष्य पदार्थों का नहीं। शतपथ का यह प्रकरण इस विषय के लिये प्रमाण है कि चावल, जव,

(अन्न और प्राण दोनों मिलगये)

३६० एतयोरुभयो र्गृहीतयोः। अस्मादुर्गुदाचिक्रमिषत्। तामेताभ्या मुभाभ्यामूर्ग्गृहीता योह्येवान्नमत्ति स प्राणिति तमूर्ज्जयति ॥१८॥ श० प० कां० ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा. १८॥

३६१ ऊर्ज्जं गृहीतायाम्। अस्मादेतेऽउभे उदाचिक्रमिषाताम्। ते ऊर्ज्जाऽगृहणात् तस्मादेते उभे ऊर्ज्जा गृहीते य ँ ह्येवोर्ज्जयति स प्राणिति सोऽन्नमत्ति ॥१९॥ श० कां० ७। अ० ५ प्र० ४ ब्रा० १९

गेहूं, चना, मटर, उड़द, मूंग, और विविध आम्रादि फल ही खाद्य हैं इसलिये जहां कहीं पशुवध जन्य मांस का यज्ञादि में उल्लेख हो वह पीछे से मिला या हुआ अर्थात् प्रक्षिप्त जानना चाहिये यह शतपथ के इस प्रकरण से सिद्ध है ॥

(अन्न का महत्व)

३६० प्राणने अन्न को और अन्नने प्राण को जब साथ दे दिया तब ऊर्क् (रस) निकलना चाहा परन्तु अन्न और प्राणने उसको भी रोकलिया। सिद्धान्त यह कि जो अन्न खाता है उसीके शरीर में प्राण भी निवास करते हैं उस को रस बल देता है (३६१) जब रस शरीर में ठहर गया तब फिर प्राण और अन्न निकलना चाहनेलगे परन्तु रसने रोक दिया एवम् जिसके शरीर में रस अर्थात् बल होता है, उसकी पचन शक्ति ठीक रहती है वही जीवित रहता और वही अन्न खा सकता है ॥१९॥

(व्याख्या) यह आलङ्कारिक वर्णन है, वास्तव में अन्न से प्राण की रक्षा और प्राण से शरीर की रक्षा होती है, जैसे अन्न प्राण का रक्षक है वैसे ही दुग्धादि और फलादि के रस भी शरीर के पोषक हैं। अन्न कच्चा और अग्नि में पका के दोनों प्रकार खाने के हैं। चना, मूंग आदि जल में भिगोदेवे जब उनमें अङ्कुर निकल आवे तब उनको चाबकर खावे-बलदायक होते हैं

(अन्न ही जीवन का हेतु है)

३६२ तान्येतान्यन्योऽन्येन गृहीतानि । तान्यन्योऽन्येन गृहीत्वामन् प्रासादयत । तदेतदन्नं प्रपद्यमानꣳ सर्वे देवा अनुप्रापद्यन्तान्नजीवनꣳ हीदं सर्वम् ॥२०॥

(श० प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. २०)

(तत्र प्राणविद्याविषय)

३६३ तदेष श्लोकोऽभ्युक्तः । तद्धै स प्राणो भवदीति ।
तद्धि स प्राणोऽभवत् महाभूत्वा प्रजापतिरिति ।
महान् हि स तदभवत् । यदेनमेते देवाः प्रापद्यन्त
भुजो भुजिष्यान्वित्वीति । प्राणा वै भुजोऽन्नं भुजिष्या ।
एतत्सर्वं विश्वेत्येतद् यत् प्राणान् प्राणयत् पुरीत्यात्मावै
पूर्यद्धै प्राणान् प्राणयत् प्राणा देवा अथ यत् प्रजापतिः
प्राणो, यो वै स प्राण एषा सा गायत्र्यथ यत् तदन्नमेष स
विष्णुर्देवताऽथ या सोऽगेष स उदुम्बरः ॥२१॥
श० प० कां० ७ । अ० ५ । प्र० ४ ब्रा० २१

३६२ शरीर में पूर्वोक्त अन्न, प्राण, रस, इत्यादि एक दूसरे के सहायक हैं एक दूसरे से प्राणादि शरीर में गृहीत होकर देहस्थ आत्माके रक्षक होते हैं । इस अन्न को पाकर देवोंने अनुभव किया कि वास्तव में प्राणियों का प्राण अन्न ही है अर्थात् अन्न जीवन का हेतु हैं यह जो कुछ है वह अन्न से है ॥ इसीलिये कहा है कि "अन्नं वै प्राणिनां, प्राणाः"॥ अन्न ही प्राणियों का प्राण है॥ पुरुष में १० प्राण हैं और ११ वां आतमा है। प्राण शब्द से प्राण वायु और अपान वायु आदि अन्न का ग्रहण है अन्न से प्राणादि की रक्षा होती है यदि न खाया जाय तो प्राण वायु शरीर मे टिक नही सकता अन्न मुख्य है इस लिये कहा है अन्न ही प्राण है

(उदुम्बर के गुणों का वि.)

२६४ सोऽब्रवीत् । अयं वाव सर्वस्मात् पाप्मन उदभार्षी
दिति । यदब्रीदुदभार्षीन्मिति तस्मादुदुम्भर उदुम्बरोह
वै तमुदुम्बर इत्याचक्षते परोक्षं । परोक्षंकामाहि देवा उरु-
मेकरादिति तस्मादुरुकरमरुकर ँ हैवतदुलूखल
मित्याचक्षंते परोक्षम्परोक्षकामा हि देवाः सैषा सर्वेषां,
प्राणानां योनिर्यदुलूखल ँ शिरोवै प्राणानां योनिः ॥२॥
(श. प. । कां ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा. २२)

---

२६२ इस विषय में यह श्लोक भी है। वह प्रजापति प्राणविद्या का ज्ञाता हुआ। वह महान् होकर प्राणवित् हुआ। देवों (इन्द्रियों) ने प्रजापति को पा लिया। प्रजापति ने भुज और भुजिष्य को जाना। भुज प्राण कहाते हैं और अन्न भुजिष्य कहाता है। यह सब जान के प्रजापतिने प्राणों को अन्न से तृप्त किया अतएव वह 'पुरी' हुआ। यह देह पुरी (नगर) के समान है इस नगर रूपी शरीर का जीवात्मा राजा और नियन्ता है प्रजापति ने प्राणों को अन्न से तृप्त किया, अतः प्राण देव हैं। प्रजापति ने देवों (इन्द्रियों) को अन्न द्वारा तृप्त किया अतः वह प्राण विद्या का ज्ञाता हुआ। प्राण का दूसरा अर्थ यह कि 'एषा सा गायत्री जो यह गायत्री अर्थात् सावित्री मन्त्र है वही प्राण है प्राणों का रक्षक है और जो यवादि अन्न हैं वह विष्णु देवता है और जो यह (ऊर्क्) रस है, वह उदुम्बर है ॥ २१॥

२६४ प्रजापति ने कहा इस उदुम्बर रस के सेवन से मेरा सब अतिनष्ट (पाप) दूर हो गया अर्थात् आत्मा, मन, और बुद्धिये सब शुद्ध होगये। प्रजापतिने उदुम्बर के रस के गुण अनुभव किये। गुण के अनुसारही उसका अन्वर्थनाम उदुम्बर समझा। देव परोक्ष प्रिय होते हैं अर्थात् उन को शब्द का परोक्ष अर्थ

(शिर देवकोष है)

३६५ तत् प्रादेशमात्रं भवति। प्रादेशमात्रमिव हि शिरश्चतुस्रक्तिर्भवति। चतुःस्रक्तीव हि शिरो मध्ये सङ्गृहीतं भवति मध्ये सङ्गृहीतमिव हि शिरः ॥२३॥

श० प० कां० ७। अ० ५ प्र० ४ ब्रा० २३ ॥

ही प्रिय होता है। इसी प्रकार उलूखल का अर्थ 'उरु मे करत्' उरु अकरत् से उलूखल बना है। उरु का अर्थ बहुत अकरत् का अर्थ करने का है अर्थात जिसमें अन्नों का अच्छे प्रकार संस्कार अन्न कूटाजाय उसको उलूखल कहते हैं। यजमान ओखली में अन्न का संस्कार हो (शोधन) करके यज्ञ में उसका उपयोग करे। उदुम्बर परम्परा से सब प्राणों का कारण है ऐसे ही शिरभी इन्द्रिय रूपी प्राणों की उत्पत्ति का स्थान है ॥२२॥

३६५ उलूखल (ओखरी) की गहिराइ का परिमाण प्रादेशमात्र (एक बिलस्त) होता है। यहां आचार्य उलूखल के साथ शिर का साधर्म्य दिखाते हैं। उलूखल के समान प्रादेश मात्र सा यह शिर चतुष्कोण है। जैसे चतुष्कोण वाले उलूखल की बीच की गहिराई का भाग ही मुख्य उलूखल है वैसे ही चतुष्कोण शिर में उसका मध्य भाग (भेजा) ही मुख्य शिर है ज्ञान जनक तन्तुओं का सम्बन्ध शिर से है। अग्नि प्रधान स्थान हृदय में स्थित ज्ञानाधिकरण चेतन जीवात्मा इन्हीं नाड़ी और ज्ञान जनक तन्तुओं से शरीर का सब वर्तमान जानता है। शिर कूर्म अर्थात् द्युलोक पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष के समान है। जैसे परमात्माने पृथिव्यादि लोकों में पदार्थों की स्थापना करके संसार का महोपकार किया है वैसे हीं इस देव के कोष अर्थात् शिर की रचना करके ईश्वर ने मनुष्यों पर बड़ा उपकार किया है। जैसे यह देवकोष शिर अपवित्र और मलीन विचारों को निकाल कर ज्ञान द्वारा शुद्ध पवित्र, विचार करता है वैसे ही यह यज्ञ ब्रह्माण्ड के दूषित रोग कारक वायु को निकाल कर शुद्ध आरोग्य कारक वायु का घरों के भीतर प्रवेश करता है ॥

(प्रजापति के खाये हुए अन्न का परिणाम)

३६६ तं यत्र देवाः समस्कुर्वन् तदस्मिन्नेतत् सर्वं मध्यतोऽदधुः प्राणमन्नमूर्जं तथैवास्मिन्नय मेतद् दधाति, रेतस्सिचो-र्वेलय। पृष्ठ्यो वै रेतस्सिचौ मध्यमु पृष्ठ्यो मध्यत एवास्मिन्नेत सर्वं दधाति ॥२४॥

श० प० कां० ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० २४

३६६ प्रजापति को देवों (इन्द्रियों) ने जहां संस्करण किया वह यह सब देव अर्थात् इन्द्रियों ने शरीर के मध्य में प्राण, अन्न और रस को धारण किया अर्थात् खायेहुये अन्न को आमाशय में पहुंचाया देवों (इन्द्रियों) ने जहां प्रजापति को अन्नादि पहुंचाकर हृष्ट पुष्ट किया वहां प्रजापति ने भी प्राण अन्न और रसको शरीर के मध्य भाग (आमाशय) में धारण किया । पलाशादि के गोलाकार काष्ठ पृष्ठि कहाते हैं, जो यज्ञ वेदी के चारों ओर रक्खें जाते हैं और प्रज्वलित यज्ञाग्नि में भी डाले जाते हैं । खाया पिया हुआ आहार शरीर में कहां जाता है आचार्य इस बात को दिखाते हैं खाये पिये हुए आहार का पहिला धातु रस कहाता है वह नाभि और स्तनों के बीच स्थान जिसको आमाशय कहते हैं उसमें स्थित होता है प्रजापति ने जो कुछ भी भोजन द्वारा शरीर में पहुंचाया था वह सब मध्य भाग अर्थात् आमाशय पाकस्थली में जा ठहरा फिर पक्वाशय में गया एवम् इस आहार के परिणाम रस, मांस, मेदस् अस्थि मज्जा और शुक्र हैं

(अन्न का महात्म्य)

३६७ 'अथ यत् तदन्न मेष स विष्णुर्देवता' ॥ श. प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. २१ यह अन्न ही विष्णु देवता है, अर्थात् पालन पोषण करने वाला अन्न ही है। 'कर्माणि' का अर्थ वीर्य अर्थात् बल है। मन्त्र में उपदेश है कि हे मनुष्यो! तुम

(अत्र विष्णु देवता है)

३६७ विष्णोः कर्माणि पश्यतेति । वीर्यं वै कर्म विष्णोर्वीर्याणि, पश्यतेत्येतद् यतो व्रतानि पस्पशऽइत्यन्नं वै व्रत यतोऽन्न ँ स्पाशयाञ्चक्रऽइत्येतदिन्द्रस्य युज्यः सखेतीन्द्रस्य ह्येष युज्यः सखा द्विदेवत्ययोपदधाति । द्वे ह्युलूखलमुसले सकृत् सादयति समानं तत् करोति समान ँ ह्येतदन्नमेव चासादयित्वा सूददोह साधिवदति तस्योक्तो बन्धुः ॥२५॥ श० प० कां० ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा. २५ ॥

सब यव गोधूमादि अन्नों बल को देखो (जानो) क्यों कि अन्न ही बल है (अन्नं वै व्रतम्) अन्न ही व्रत है "व्रतञ्च नामाभ्य वहारार्थ मुपादीयते ॥" इति महाभाष्यकारः पतञ्जलिमुनिः इस प्रमाण से व्रत का अर्थ अभक्ष्य पदार्थों को छोड़कर भक्ष्य पदार्थोंका सेवन करना व्रत कहाता है'अन्नं प्राणस्यषड्विंशः'॥

अर्थात् अन्न प्राण का २६ वां तत्व है। 'इन्द्रस्य युज्यः सखा' यह यज्ञ इन्द्र (सूर्य) का (सखा) मित्र है, यज्ञ से शुद्ध बादल बनते हैं उनको सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथिवी पर वर्षाता है यज्ञ में उलूखल और मुसल दोका यजमान उपधान करे। उलूखल और मुसल दोनों एक साथ स्थापित करे। यह अन्न समान है। ओखली और मुसल का स्थापन अन्न शोधने के लिये है।

३६८ यज्ञ में यजमान उखा (ओखली) का उपधान करे। उखा का उपधान अन्न शोधनार्थ है उस उखा (ओखली) को अन्तरिक्ष (खुले मैदान) में स्थापित करे, ओखलो का उर्ध्व भाग अन्तरिक्ष है अथवा, ओखली की गहिराई है वही अन्तरिक्ष है। मध्य में ही उसको स्थापित करे मध्य में ओखली के स्थापन के कारण सब पृथिव्यादि पञ्चभूतों के बीच में ओखली गूलर आदि वनस्पतियों की बनीहुई होती है।

(यज्ञ में उलूखल के उपधान का विषय)

३६८ अथोखामुपदधाति । योनिर्वाऽउखा योनिमेवैतदुप दधाति । तामुलूखल उपदधात्यन्तरिक्षं वा उलूखलं यद्धै किञ्चास्या ऊर्ध्वमन्तरिक्षमेव तन्मध्यं वा अन्तरिक्षं मध्यत एव तद्योनिं दधाति, तस्मात सर्वेषां भूतानां मध्यतो योनिरपि वनस्पतीनाम् ॥ २६ ॥

श० प. कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा. २६

३६९ जो यह प्रजापतिथ का हुआ है वही उखा का उपधान करने वाला है। उखा का अर्थ द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष है। इसी से कार्य सुविधार्थ ओखली को यज्ञ वेदी के अतिनिकट स्थापित करे॥

प्रजापति जो यजमान है वह उखा को मूषल के समीप स्थापित करे। यजमान मूषल उखादि को यज्ञ वेदी के पास स्थापित करे। प्राण अन्न में अन्न और प्राण रस में प्रतिष्ठित हैं॥ मूषल, ओखली, अन्न आदि यज्ञशाला में स्थापित करे॥

३७० पूर्व कह आये हैं कि उलूखल और मुसल गूलर वृक्ष के काष्ठ के बनाने चाहियें परन्तु यदि भूमि में उलूखल अथवा वेदी बनानी हो तो कच्ची अर्थात् अपरिपक्व ईंटों से बनावे। सायणाचार्य ने (उपशयाम्) का अर्थ अपक्वइष्ट का लिखा है। इन कच्ची ईंटों को पीस (सूक्ष्म) कर जल मिली मिट्टी बनावे और उस मृत्तिका की वेदी बनावे॥ उखा को पृथिव्यादि लोकों की उपयोगी करके अग्नि से पूर्व की ओर रखे। इस यज्ञ का यह पृथिवी लोक है, अतः उखली यज्ञ वेदी के समीप होता है।

इस विषय में अन्य आचार्य कहते हैं, कि इस यज्ञ की कच्ची ईंट से वेदी कैसे बनेगी किन्तु पकी इट अच्छी होती है अतः पकी हुई ईंटों से वेदी अथवा ओखली बनावे॥

(उलूखल के स्थापन का वि.)

३६९ यद्वेवोखामुपदधाति । यो वै स प्रजापति र्व्यस्र ँ सतैषा सोखेमे वै लोकाः प्रजापतिस्तामुलूखल उपदधाति तदेन मेतस्मिन् प्रतिष्ठापयति प्राणोन्नऽऊर्ज्यथोऽएतस्मादेवैन मेतत् सर्वस्मादनन्तर्हितं दधाति ॥२७॥

श. प. । कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. २७ ॥

---

३७१ 'ध्रुवासि०' यह यजुर्वेद अ० १३ । मन्त्र ३४ है। ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः धवतः स्वरः । ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो यो निभ्यो अधिजातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभा ऽनुष्टुभाच देवेभ्यों हव्यं बहतु प्रजानन् ॥ य० । अ. १३ । मं. ३४ ॥

(अर्थ) जो जातवेदा अग्नि उखा के सकाश से प्रथम अपने कारणों से प्रकट हुवा है वह प्रकृष्टता से प्रदीप्त होता हुआ गायत्री त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द वाले मन्त्रों से सूर्यादि ३३ देवों के लिये इस हमारे हवि को मेघमण्डलादि में पहुचा कर जल वायु को शुद्ध करे ॥३४॥

वेदी की प्रदीप्त अग्नि में गायत्री, त्रिष्टुप्, और अनुष्टुप् छन्दवाले वेद मन्त्रों से यजमान अपनी पत्नी सहित आहुतियें देवे ॥

शा० प० कां. अ० ५ प्र० ४ ब्रा. २९ में कह आये हैं कि "अथो यद्वै कि ञ्चित मग्निं वैश्वानर मुपनिगच्छति,, तत एव तत् पक्व ँ श्रृतयुपहितं भवति,, अर्थात् जो वैश्वानर अग्नि में हवन करना चाहे वह पकी हुई ईंटों की वेदी बनावे ॥

(जायापती उद्वाहं कृत्वा कथं वर्तेयातामित्याह)

३७१ (स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्ते वि०) 'इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्ज्जे अपत्याय । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥३५॥ य० । अ० १३ । मं. ३५॥

(वेदी और उखली कच्ची वा पक्की ईंट से बनावे)

३७० अथोपशयां पिष्ट्वा । लोकभाज मुखां कृत्वा पुरस्ता दुखायाः उपानिवपत्येष हैतस्यै लोकस्तथो हास्यैषानन्तारिता भवति ॥ २८ ॥

श. प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. २८

तदाहुः । कथमस्यैषा पक्काभूतोपहिता भवतीति । यदेव यजुष्कृता तेनाथो यद्धै किञ्चैतमग्निं वैश्वानरमुप निगच्छति तत एव तत् पक्व ँ भूतऽमुपहितंभवतिं २९ ॥

श. प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. २९

हे पुरुष जो तू सम्राट् है हे स्त्रि जो तू स्वराट् है सोतुमदोनों विज्ञान, धन, बल यश और अन्न, पराक्रम और सन्तानों की प्राप्ति के लिये यत्न करो वेद वार्णा में कुशल उपदेशक और उपदेष्ट्री कूपोदक के समान आर्द्रीभूत तुम दोनोंकी रक्षा करें ॥३५॥ भावार्थ विवाह किये हुवे स्त्री पुरुष विद्वान् विदुषी होकर परस्पर प्रीति के साथ वसन्त में पुरुषार्थ से श्रीमान् और सब गुण हो परस्पर रक्षा करते हुवे धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करके इस संसार में नित्य सुखी हों

(महीधर भाष्यम्)

"हे उखे ! त्वं रमस्व अत्रक्रीडां कुरु । किमर्थम् । इषे अन्नार्थं राये धनार्थं सहसे बलाय द्युम्ने द्युम्नाय यशोऽर्थम्, ऊर्ज्जे उपसेचनाय पयो दधि घृतादिकाय अपत्यायपुत्र पौत्रादिकाय । रमस्वेति सर्वत्र सम्बन्धः । किञ्च सम्यग् राजत इति सम्राडसि । स्वेनैव राजत इति स्वराडसि । एवम्भूतां सारस्वतौ सरस्वती सम्बन्धिनौ उत्सौ उत्स्पन्दनौ कूपौ प्रवाहौ वा त्वा त्वां प्रावताम् । तौ चोत्सौ

वैश्वानर यज्ञ में गायत्री त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द वाले वाले
मन्त्रों से आहुतियें दीजाय

३७१ ध्रुवासि धरुणेति । तस्योक्तो बन्धुरितो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्योऽधिजातवेदा इत्येतेभ्योहि योनिभ्यः प्रथमं जातवेदा अजायत । स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभाच देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्नित्येतैर्वाऽएष छन्दोभिर्देवेभ्यो हव्यं वहति प्रजानन् ॥३०॥

श. प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ३०

(स्त्रीपुरुषविवाह करके कैसे वर्ते)

३७२ इषे रमस्व । सहसेद्युम्नऽऊर्जेऽपत्यायेत्येतस्मै सर्वस्मै, रमस्वेत्येतत् सम्राडसि स्वराडसीति सम्राट् च ह्येष स्वराट् सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावतामिति मनो वै सरस्वान् वाक् सरस्त्येतौ सारस्वता उत्सौ तौ त्वा प्रावतामित्येतद् द्वाभ्या मुपदधाति तस्योक्तोबन्धु रथो द्वय ँ ह्येवैतद रूपं मृच्चापश्च सादयित्वा सूद दोह साधिवदति तस्योक्तो बन्धुः ॥३१॥ ब्रा. ॥

श. प. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा ३१

मनो वाचौ सामञ्जानाय कूप इवो स्यन्दतीति मनःकूपः तत् प्रति पादन कुर्वन्ती वागपिकूपः मनो वै सरस्वान् वाक सरस्वत्येतौ सारस्वता वुत्सौ ७।५।१।३१ इति श्रुतेः ॥"

(गृहाश्रम के कर्त्तव्य का विषय)

३७३ अथैनामभि जुहोति । एतद्वास्यामेतत् पूर्वं रेतःसिक्तं भवति, सिक्तास्तदेतदभिकरोति, तस्माद्योनौ रेतः सिक्तमभि क्रियते, आज्येन जुहोति, स्रुवेण स्वाहाकारेण द्वाभ्यामाग्नेयीभ्यां गायत्रीभ्यां तस्योक्तो बन्धुः ॥३२॥
(श. प. । कां. ७ । अ. ५ प्र. ४ । ब्रा. ३२)

(महीधर भाष्य का भावार्थ)

हे उखे (पत्नी) तू अन्न, बल, यश, दुग्ध, दधि, घृतादि और पुत्र पौत्रादि के लिये रमणकर तू अच्छे प्रकाशित होने से सम्राट् सदृश है और स्वयम् प्रकाशित होने से स्वराट् है ॥ तुम दोनों की मन और वाणी अथवा ऋक् और साम रक्षा करें ॥

३७३ यजमान वेदी की अग्नि में आहुति देवे। वेदी की अग्नि में प्रथम घृत सिञ्चन करे अपत्यार्थी यजमान स्रुवे में घी भरके स्वाहाकार के साथ दो आग्नेयी देवता वाले गायत्री छन्द के मन्त्रों से वेदी में आहुति देवे ॥३२॥

(व्याख्या) क्षत्रिय अथवा कौरम क्षत्रिय अन्न धन बल और यश से सम्पन्न ही दुग्धादि से यज्ञ करते हुए अपने सन्तानों और अपनी प्रजा की रक्षा करें ।

"वृषा व कूर्मा योषाढ़ा" श० कां० ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० ६ में कूर्म का अर्थ पति पत्नी कहचुके हैं अब इस ३१ वें ब्राह्मण में यह कहते हैं कि (य० अ० १३ मं. ३५) के अनुसार वे ही पति पत्नी यज्ञ करते हुवे गृहाश्रम में अन्नधन बल यश दुग्धादि और (अपत्याय) पुत्र पौत्रादि की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करें

(शत्रु को कैसे विजय करे)

३७४ अग्ने युक्ष्वाहि ये तव युक्ष्या हि हूतमानोति । युक्तवतीभ्या मिदमेवै तत्योनौरेतोयुनक्ति,तस्माद् योनौरेतो युक्तं न निष्पद्यते ॥

(श. प. । कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ३३ ॥)

---

३७४ अग्ने युक्ष्वत्यस्य भरद्वाज ऋषिः अग्निर्देवता नृचिद् गायत्री छन्द. । षड्जः स्वरः। अग्नेयुक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे (य.अ.१३।मं.३६)

अग्ने युक्ष्वा इति प्रत्यृच स्रुवाहुतीर्जुहोत्युखायाम् ॥ का.१४ । ५ । ५ ॥ यजमान 'अग्नेयुक्ष्वा इस मन्त्र से प्रत्यृचा स्रुवामें घृत भर वेदी में आहुति देवे ॥ १४ ॥ यजमान 'अग्नेयुक्ष्वाहि इन दो ऋचाओं से वेदी के मध्य में दो आहुति स्रुवा में घी भरके देवे ॥१४॥

(मन्त्रार्थः) हे देव ! दीप्यमान अग्ने ! ये साधवः दान्तास्ते तवाश्वासः हयाः अरम् अलमत्यर्थं मन्यवे यज्ञाय वहन्ति प्रापयन्ति देवानिति शेषः ॥ शिक्षित घोडे यज्ञ में विद्वानों को पहुंचाने के लिये समर्थ होते हैं ॥३६॥ उवटभाष्य का भावार्थ— शिक्षित आशुगामी अच्छे घोडे शत्रु के जीतने के लिये सर्वोत्तम होते हैं ॥३६॥

महर्षि दयानन्द का भावार्थ—राजमनुष्यों को चाहिये कि वसन्तऋतु में पहिले पहिले घोड़ों को शिक्षादें और रथियों को रथों में नियुक्त करके शत्रुओं के विजय करने के लिये यात्रा करें ॥३६॥

'योनौ' 'सिक्तं' 'रेतः' 'युनक्ति' 'नियच्छति' 'तस्मात्, इदानीं योनौसिक्तं रेतः अपत्योत्पादनार्हं युक्तं सत् 'न' निष्पद्यते न निष्पतति तत्रैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥" इति सायणभाष्यम् ॥ श० कां. ७ अ० ५ प्रपा० ४ ब्रा० ३३ ॥ अपत्यार्थी ऋतुकाल में सन्तानोत्पत्ति के लिये गर्भाधान संस्कार करे।

(पुत्रेष्टि विषयः)

३७५ स यदि सम्वत्सरः भृतः स्यात् । अथाभि जुयाद्धु । स सर्वैवैतद्यत सम्वत्सरभृतः स्यात् । सर्वैतद् यदाभिजुहो-त्यथ यद्यसम्वत्सरभृतः स्यादुपैव तिष्ठेता सर्वैवैतद् यदसम्वत्सरभृतोऽसर्वं तद् यदुपतिष्ठतेऽभित्येव जुहुयात् ३४ ब्रा.

(श. प. । कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ३४)

(वेदी किस दिशा में बनावे)

३७६ तं वा एतम् । इत ऊर्ध्वं प्राञ्चं चिनोत्यसौ वा आदित्य एषोऽग्निरमुं तदादित्य इत ऊर्ध्वः प्राङ्धीयते ॥

श. । कां. ७ । अ. ५ । प्र. ४ । ब्रा. ३६ ॥

(यहां से आगे पुत्रेष्टि यज्ञ का विधान है)

३७५ वह यजमान यदि एक वर्ष पर्यन्त व्रती होकर पुत्रेष्टि सम्बन्धी ईश्वरप्रार्थना और हवन करे तो ठीक है, । यदि साधनाभाव से एक वर्ष का नियम न पालन हो सके तो वह ब्रह्मचारी रहकर प्रतिदिन सपत्नीक केवल ईश्वर प्रार्थना ही वेद मन्त्रों से कर लिया करे परन्तु सर्वोत्तम यही होगा कि प्रार्थना के साथ प्रतिदिन यज्ञ भी हुआ करे अपत्यार्थी इस पर ध्यान दे। होम चावल की खीर का करे । होम के पश्चात् यज्ञ शेष खीर को पत्नी अलग लेजाकर खावे पुनः अन्य भोजन करे ।

३७६ यजमान पूर्व दिशा में वेदी अथवा कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि को स्थापन करे, पूर्व दिशा में उदय हुआ आदित्य (सूर्य) ही अग्नि है । सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है इसलिये अग्नि का स्थापन भी उसी दिशा में करे क्यों कि अग्नि का कारण (सूर्य) है

(टि०) इस ३४ वें ब्राह्मण के आगे का ३५ वां ब्राह्मण पूर्व लिख आये हैं अतः यहां नहीं लिखा है

सेनापति घोडे आदि को कार्यों में लगावे और सभापति

न्यायासन में बैठ न्याय करे ॥

३७७ युक्ष्वाहिदेवहूतमा २॥ अश्वां अग्ने रथीरिव

निहोता पूर्व्यः सदः मं. ३७ ॥

श. प. । कां. ७ अ. ५ ब्रा. ३७

---

३७७ अग्ने! त्वमश्वान् युक्ष्व योजय। हि शब्दः प्रसिद्धौ। की दृशान् देवहूतमान् देवान् आह्वयन्ति देवह्वः । अतिशयेन देवहुवो देवहूतमाः। तान् देवानामति शयेनाह्वातॄन्। किञ्च त्वं पूर्व्यः पूर्वभवः पुरातनो होता मानुषाद्धोतुः प्रथमोऽग्रोभूत्वा। निषदः अस्मिन् यागे होतृत सदने निषीद॥"

हे अग्ने तू अश्वों को रथ में संयुक्त कर। जो अश्व (देवों) विद्वानों को यज्ञ में लाने वाले हैं किञ्च हे अग्ने तू पुरातन है, मानुष होता से प्रथम अग्रणी है। अतः इस वैश्वानर यज्ञ में बैठे होता का आसन ग्रहण कर ॥३७॥

(व्याख्या। आदित्य समान तेजस्वी बलो अनेकविक्रमी कौरम पृथिवी पर रमण शील राजा अश्वादिकों को कार्यों में लगाकर और वसन्त ऋतु में यज्ञ करके युद्धार्थ यात्रा करे। यहां यज्ञ का जो विधान है वह सन्तानोत्पत्ति और शत्रु के जीतने के लिये है, । यज्ञ करना क्षत्रिय का कर्तव्य है । कोई भी क्षत्रिय इस यज्ञ को कर सकता है, परन्तु कौरम क्षत्रिय को विशेष है क्योंकि यज्ञ में उसका उपधान लिखा है कूर्म के क्षत्रिय होने का प्रमाण शतपथ काण्ड ७ अध्याय ५ प्रपाठक ४ में 'कूर्मो वैवृषायोपाऽपाद्दा है "॥

ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद के भाष्य में इस मन्त्र पर जो भावार्थ लिखा है वह यह है कि 'सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि बड़ी सेनाके अङ्गयुक्त रथवाले के समान घोडे आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करे और सभापति आदि न्यायासन में बैठकर धर्मयुक्त न्याय किया करें' ॥३७ वां. मंत्र)

(सपत्नीक यजमान यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करे)

३७८ अथैनं प्रसलं व्यावर्तयति । अमुतदादित्यं प्रसलं व्याव-
र्तयति । तस्मादसावादित्य इमांल्लोकान् प्रसलं व्यनु-
पर्य्येति ॥ श० कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा. ३७ ॥
(श० । कां. ७ । अ० ५ प्र० ४ ब्रा. ३७)

(पुनः उलूखल और मुसल का वि.)

३७९ उदरमुखा योनिरुलूखलमुत्तरोखा भवत्यधरमुलूखल
मुत्तर ँ ह्युदरमधरा योनिः शिश्नं मुसलं तद् वृत्तमिव
भवति, वृत्तमिवहि शिश्नं तद् दक्षिणत उपदधाति, दक्षि-
णतो वै वृषा योषामुपशेते, यदु पशोः संस्कृतस्यान्नं तद्
दूर्वेष्टका तस्य वाऽएतस्योत्तरार्द्धे उदाहिततरो भवति
पशुरेष यदग्निस्तस्मात् पशोः सुहितस्योत्तरः कुक्षि
रुन्नततरो भवति ॥ श० कां. ७ अ. ५ प्र० ४ ब्रा. ३८

---

३७८ सपत्नीक यजमान यज्ञाग्नि कुण्ड की प्रदक्षिणा करे । जैसे आदित्य (सूर्य) अपनी परिधि में घूमता हुआ अन्य लोकों की परिक्रमा करता है वैसे ही सपत्नीक यजमान भी यज्ञकुण्डस्थ अग्नि की प्रदक्षिणा करे ॥

(व्याख्या) प्रदक्षिणा कार्य सिद्धि, कार्यारम्भ और कार्य समाप्ति की विज्ञापिका है यज्ञ में मनुष्य देहधारी कूर्म क्षत्रिय का उपधान शतपथ के सातवें काण्ड के आरम्भ में लिखा है । क्षत्रिय अश्वरखे स्वाध्याय करे, आयुध जीवी हो दानशील हो. नित्य नैमित्तिक यज्ञों का अनुष्ठाता हो, शत्रु जित् हो और प्रजाजन का रक्षक हो इत्यादि गुण क्षत्रिय में होना अत्यावश्यक है

३७९ इससे पूर्व ब्राह्मण (२६) में योनि शब्द का अर्थ उखा कहा है वह उखा (ओखली) उदर सदृश गोलाकार होनी चाहिये। यहां उलूखल का अर्थ अन्तरिक्ष है अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश में ही ओखली का स्थापन हो सकता है। प्रकारान्तर से ही ओखली और मुसल का यहां वर्णन है। शिश्न का अर्थ वृत्त (गोल) है मुसल भी गोलाकृति का होता है। मुसल का स्थापन यज्ञ कुण्ड के दक्षिणभाग में करे। गर्भाधान संस्कार में गर्भ स्थापन समय पति अपनी पत्नी के दक्षिण ओर रहे और पत्नी उत्तर ओर रहे वैसे ही पुरुष स्थानी मुसल भी दक्षिण में स्थापित करे। ओखली और मुसल दोनों यज्ञ के साधन हैं। मुसल से यवादि अन्न ओखली में कूटकर शुद्ध किया जाता है। सब यज्ञपात्र कुण्ड के उत्तर दिशा की ओर स्थापित करना चाहिये गौ घोडे आदि पशु यज्ञ के साधन हैं। दूर्वेष्टका एक प्रकार की घास है जो काण्ड २ (शाखा २) से भूमि पर फैलती है, लोक में इस को दूब कहते हैं। श्वेत (सफेद) और हरित दो प्रकार की होती है। ज्वर को दूर करती इस पर चलने फिरने से आंख की ज्योति बढती है। प्रायः घोड़ों को खिलाई जाती है। दूर्वा को यज्ञकुण्ड की उत्तर दिशा में स्थापित करे। संस्कार किये पशु का यह दूब अन्न है, गौ आदि पशुओं की उत्तर (बाईं) कुक्षि जल पीने घास खाने पर ऊंची होती है और सुन्दर लगती है (पशुरेष यदग्निः) पशु का अर्थ अग्नि भी है। खायें पीये हुए गाय आदि पशु की उत्तर कोख जिस प्रकार ऊंची होकर सुन्दर दीखती है वैसे ही पश्वाकार यज्ञाग्नि की उत्तर दिशा ओषधि आदि के स्थापन से अति सुन्दर दीखती है दूसरा प्रयोजन कार्य की सुविधा है देने लेने में कष्ट नहीं होता।

इतिशतपथ ब्राह्मणस्य सप्तमे काण्डे
पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थप्रपाठ के च
वैश्वानरयज्ञस्याष्टात्रिंशद् (३८)

ब्राह्मणम्: समाप्त: ॥

(समाप्तोमिदं सप्तमं: काण्डं:)

यह शतपथ ब्राह्मण के ७ वें काण्ड और पञ्चमाध्याय के चतुर्थ प्रपाठक में
वैश्वानरयज्ञ का ३८ वां ब्राह्मण समाप्त हुआ॥

(शतपथ के ७ वें काण्ड का निष्कर्ष)

२८० ३५ वें ब्राह्मण में शतपथकार ने शरीर के साथ यज्ञ की उपमा दी है कि जैसे यह शरीर हस्तपादादि अवयवों के साङ्गोपाङ्ग होने पर ही उस नाम से कहा जाता है वैसे ही यजमान, और उस की पत्नी, ऋत्विज होम द्रव्य देवता (उद्देश्य) त्याग ये सब हों तभी यज्ञ साङ्गोपाङ्ग कहा जायगा अर्थात् उसका नाम यज्ञ होगा।

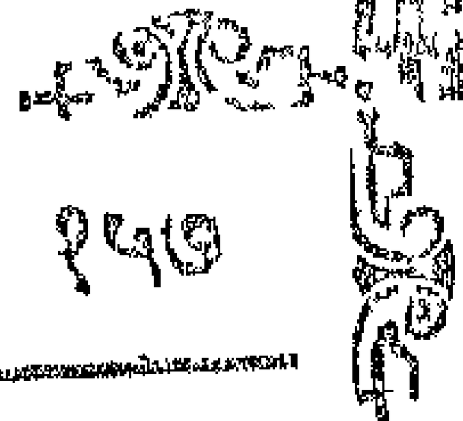
यजमान की पत्नी यज्ञ का कन्धरा (कन्ध) है और यजमान यज्ञ का शिर है। "कूर्मो वै वृषा योपाऽ पाढा,,। युवापति कूर्म क्षत्रिय और युवती आपाढा राज (पत्नी) क्षत्रिया दम्पती कूर्म कहाते हैं। शतपथ के सातवें काण्ड के आरम्भ में कूर्म का उपधान और उसका वृषा योपा अर्थ इस विषय के लिये प्रमाण है कि ऐसा प्रजाजन रक्षणकर्ता मनुष्य समुदाय क्षत्रिय वर्ण भारत वर्ष में स्वयम्भु मनु के समय से अद्यावधि चला आता है।

(इस ७ वें काण्ड से यह भी सिद्ध है कि इस यज्ञ का नाम वैश्वानर यज्ञ है)

क्यों कि इस यज्ञ में वैश्वानर नाम की अग्नि का स्थापन है, (कश्यपो-वै कूर्मः ,) श० कां. ७ अ० ५ प्र० ४ कश्यप ही कूर्म है कश्यप का अर्थ सर्व द्रष्टा ईश्वर और दूसरा अर्थ ऐतिहासिक पक्ष में कश्यप का कश्यप कूर्म देहधारी राजर्पि है। स्वायम्भुव मनु में प्रजापति कश्यप कूर्म के नाम से एक राजर्षि ब्रह्मा वर्ण व्यवस्थापक, वेदप्रचारक, प्रजोत्पादका और प्रजाजनरक्षक अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुआ था यहां प्रजापति का अर्थ चतुर्वेदज्ञ ब्रह्मा है। जिस के पुत्र अथर्वा आदि हुए थे। अथर्वा को अथर्ववेद में मन्त्रद्रष्टाओं की नामावली में " अथर्वा कश्यपाचार्यः " लिखा है। स्वायम्भुव मनु में इसी, अथर्वा कश्यपा चार्य से कूर्म ऋषि का जन्म हुआ था। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार अथर्वा और पुराणों के मतानुसार कश्यप ये दोनों ब्रह्मा के ही पुत्र होते हैं इस प्रकार ब्रह्मा के वंश में ही कूर्म ऋषि का जन्म हुआ पाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण तो कश्यप ही को कूर्म मानता है " कश्यपो वै कूर्मः "॥ श० प० कां. ७। अ० ५। प्रपा० ४॥ और उसी शतपथ के काण्ड ७ वें में " कूर्म का अर्थ " कूर्मो वै वृषा योऽ पाढा "॥ लिखा है जिसका अर्थ सपत्नीक युवती

क्षत्रिया सहित क्षत्रिय युवपति कूर्म यह है। मरीचि को मनुस्मृति में मनु का पुत्र लिखा है परन्तु पुराण मत से वह ब्रह्मा का पुत्र कहा जाता है। महर्षि दयानन्द ने मरीचि को सत्यार्थ प्रकाश में ब्रह्मा का प्रपौत्र लिखा है॥ अस्तु॥ हैं सब ब्रह्मा के पुत्र प्रपौत्रादि। स्वायम्भुव मनु में कूर्म शब्द का यौगिक और योगरूढ़ि अर्थ लिया जाता था, उस समय गुण, कर्म स्वभाव से वर्ण निर्णय था। यह शतपथोक्त कूर्म शब्द के अर्थ से सिद्ध है। यदसृजताऽकरोत् तस्मात् कूर्मः"॥ सृष्टि रचना और प्रजोत्पादन करने से यौगिक और योगरूढि कूर्म नाम हुआ था। अथर्ववेद काण्ड २०। मन्त्र (१) में " कौरम " शब्द आया है कौरम, काही अपभ्रंश कूरम है उसी मन्त्र में कौरम का अर्थ पृथिवीपति और दानी कहा है अब इस वैवस्वत वर्तमान मन्वन्तर में कूर्म शब्द का जाति-वाचक अर्थ मे प्रयोग किया जा रहा है, वैवस्वत मन्वन्तर में उत्पन्न मरीचि का पुत्र कश्यप मैथुनी सृष्टि में हुआ था और जो कश्यप प्रजापति ब्रह्मा है वह अमैथुनी सृष्टि स्वायम्भुव मनु में उत्पन्न हुआ था यह भेद है। कूर्म क्षत्रिय वंश कब से है इसका एक ही उत्तर हो सकता है कि स्वायम्भुव मनु में ब्रह्मा से अथर्वा वेद के मन्त्रों का मन्त्र द्रष्टा हुआ। अथर्वा कश्यप से कूर्म ऋषि का जन्म हुवा और तभी से यह क्षत्रिय वंशलता कूर्म ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुवी जान पड़ती है, फिर चाक्षुषा आदि ६ छःमन्वन्तरों को झेलता पार करता हुवा सातवें वैवस्वत मन्वन्तर में मनु के पुत्र शर्याति और शर्याति के वंश में हैहय और ताल जङ्घ दो राजे हुवे। हैहय के १०० पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र वीतहव्य था, वीतहव्य का पुत्र गृत्समद और गृत्समद का पुत्र कूर्म ऋषि हुवा॥ वीतहव्य सूर्य वंशी थे। दूसरा गृत्समद का पुत्र चन्द्र वंशी था जिसके कूर्म और शौनक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे अब भी भारत वर्ष में सूर्य वंशीय और चन्द्र वंशीय दोनों ही में कूर्म ऋषि की वंशलता विद्यमान है। पुराण मत से कश्यप ब्रह्मा के पुत्र होते हैं। यह सब ग्रन्थ में अन्यत्र, वर्णित है।

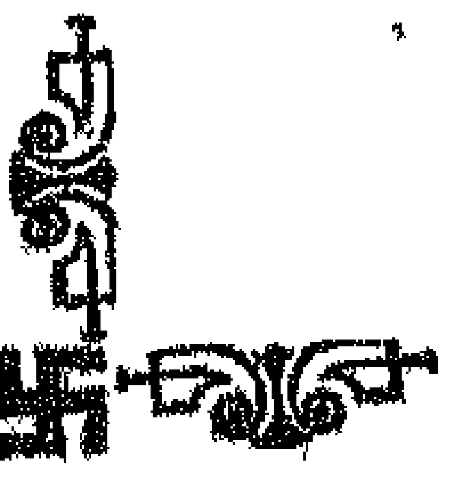
३८१ अथर्वा कश्यप-अथर्व वेद काण्ड ८ मन्त्र(३) से (२६) पर्यन्त का मन्त्र द्रष्टा ऋषि हुआ है॥ गोपथ में लिखा है कि अथर्वा प्रजापति देव है। कश्यप मरीच का पुत्र है (सा. वे.) इसी प्रकार अथर्व. में भी है कि मरीचि का पुत्र कश्यप है॥

३८० अथर्वा कश्यपः ॥ अ.। कां.८ । मन्त्र ३ सेर ८पर्यंत का मंत्र द्रष्टा ऋषि हुआ है । प्रजापतिरथर्वा देवः ॥ गो. । पू. भा. । ब्रा. १६ ॥ कश्यपो मारीचः । सा. । प्रथमा दशति, । खं. ३ । मरीचिः कश्यपः ॥ अ. । कां. ७ । अनु ६ मं. १ ॥

स यत् कूर्मोनाम । एतद्व रूपङ्कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजदकरोत तस्मात् कूर्मः ॥ श. प. । कां. ७ । अ. ५ । प्र. ४॥

ऐतिहासिक पक्ष में 'प्रजापति' का अर्थ ब्रह्मा है, यही ब्रह्मा जब सन्तानोत्पत्ति करने में प्रवृत्त होता है तब क्रियात्मक रूप धारण करने के कारण कूर्म कहाता है तुवि कूर्मिन्" आदि मन्त्रों में कूर्मिन् इन्द्र का विशेषण आता है। सायणाचार्य ने कूर्मिन् का अर्थ "अनेक विधकर्मा" किया है। अनेक विधकर्मा का अर्थ जो क्षत्रिय सङ्ग्रामादि मे अनेक विजयी कामों को करे उस क्षत्रिय के नाम के साथ कूर्म विशेषण, लगाया जाता था अर्थात् आयुधजीवी क्षत्रिय कूर्म क्षत्रिय थे और जो ऐसे न थे वे नामधारी कूर्म क्षत्रिय कहाये क्षत्रियों में ही कूर्म क्षत्रिय और क्षत्रिय होते आये पश्चात् जब क्षत्रियों में अपना नाम ही कूर्म रख लिया तबसे कूर्म नाम से कूर्म ऋषि के कुल में उत्पन्न हुवे कूर्मी क्षत्रिय कहाये। शतपथ के 'स यत् कूर्मो नाम०" प्रमाण से प्रजापति ही ब्रह्मा, ब्रह्मा ही कूर्म ब्रह्माही कश्यप होते हैं और पुराणों के मतसे ब्रह्मा के पुत्र मनु और कश्यप इत्यादि १० हैं, पुराणों में कहीं कश्यप की उत्पत्ति प्रथम लिखी है, कहीं कश्यप को ब्रह्मा का पुत्र लिखा है। महाभारत में ब्रह्मा के पुत्र इन्द्र को कूर्म से क्षत्रिय होना लिखा है और यह भी लिखा है और यह भी लिखा है कि पहिले एक वर्ण था पीछे "कर्म क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्य प्रतिष्ठितम्' (महाभा.) गुणकर्म स्वभाव से ब्राह्मणादि चार वर्ण वेदानुकूल हुवे। ब्रह्मा का पुत्र अथर्वा भी था अथर्वा ने अपने पिता ब्रह्मा के पद को प्राप्त किया था ॥




इन पूर्वोक्त प्रमाणों से अथर्वा ही कश्यप था, और नहीं अथर्वाचार्य था, इस प्रकार अथर्वा के प्रजापति पद में कश्यप की एक वाक्यता है।

कूर्म शब्द के अर्थ में यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि यह शब्द अनेकार्थ वाचक है कहीं विशेष्य और कहीं विशेषण रूप से अनेक स्थलों में आया है। वेद में यह शब्द इन्द्र के साथ क्षत्रियार्थ द्योतक विशेषण आता है, वे मन्त्र इस ग्रन्थ में अन्यत्र लिखे गये हैं। शतपथ काण्ड (७) में कूर्म शब्द के वृषा योषादि के अर्थ कहे हैं उनमें से एक अर्थ आदित्य भी है और कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता अष्ट (५) प्रपाठक (४) अनुवाक (१) में आदित्य का अर्थ इन्द्र जो विशेष्य रूप में है। जो राजा परमैश्वर्यवान् और विद्वान् हो वह इन्द्र कहाता है। कूर्मी शब्द वेद में इन्द्र का विशेषण आता है और आदित्य अर्थ में वही कूर्म इन्द्र है।

वाल्मीकीय रामायण में कूर्मिन् शब्द का प्रयोग विशेषण रूप में आया है। जैसे— "असंदेशात्तु रामस्य, तपसश्चानुपालनात्।

न त्वां कूर्मि दशग्रीव !, भस्म भस्मार्ह तेजसा ॥ वा० । सर्ग २२ ॥

महाराणी सीतादेवीजी रावण से कहती है कि हे कूर्मि दशग्रीव ! परदारोपहारक रावण ! श्री राम की आज्ञा न होने और तपके कारण मैं तुझ को तेज से भस्म नहीं करती ॥ ९ ॥

यहां कूर्मिन् शब्द रावण के विशेषण में आया है और रावण की निन्दा में सीताजीने प्रयोग किया है कि तू कूर्मी अर्थात् अनेक विधकर्मा होकर भी ऐसा निन्दित और घृणा युक्त दुष्ट कर्म क्यों किया ?

हनुमान्जी के लिये कूर्मी शब्द का प्रयोग जैसे-

इदन्तु मम दीनस्य, मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदि हास्य प्रियाख्यातु, नं कूर्मि सदृशं प्रियम् ।

महाराज राम कहते हैं कि मुझ दीन का मन फिर हनुमान् की ओर आकर्षित होता है क्योंकि प्रिय हित कहने वाले हनुमान् के कूर्मि समान प्रिय (प्यारा) मुझे और नहीं है ॥

इतोऽग्रे कूर्मविषय कृष्णयजुर्वेदीय
तित्तिरीयसंहितायाः
प्रमाणभागः ॥

३८१ इमं नो यज्ञं नयतु प्रजानन् घृतं पिन्वन्नजर ँ सुवीर्यम् ॥
कृ० य० तै० संहि० काण्ड ५ प्रपा. ७ अनु० ८ ॥

इसी प्रकार जिस समय महाराणी कैकेयी जो वरों की पूर्त्यर्थं कोप भवन में थी उस समय महाराज दशरथ ने हे प्राण प्रिये। कूर्मि शब्दों से समझाते हुवे कहा था। ॥ अस्तु ॥ शतपथ काण्ड (७) अ. ५ प्रपा. ४ ब्रा. २९ में "अथो यद्वै किञ्चैत मग्निं वैश्वानरमुप निगच्छति ॥" यहां 'अग्नि' वश्वानरम्' से स्पष्ट वैश्वानर यज्ञ सिद्ध है ॥

इति शतपथोक्तसप्तमकाण्डस्य निष्कर्षः
समाप्तः ॥

यहां से आगे कूर्म शब्द के अर्थ में कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता का प्रमाण भाग लिखा जाता है। प्रथम जो सायण भाष्य है उसको लिखते हैं। "अयञ्च कूर्मः प्रजानन् स्मदीयं कर्म प्रकर्षेणा वगच्छन् अस्मदीयं यज्ञं नयतु स्वर्गं प्रापयतु। किङ्कुर्वन्। अजरं विनाश रहितं सुवीर्यम्-शोभन-वीर्यप्रदम्। घृतं मधुमिश्र माज्यं पिन्वन् पिन्वन्" ॥

३८२ (भाष्य का अर्थ) विनाशरहित, शोभन बलदायक शहद मिश्रित घी को चाटता और स्वाद लेता हुआ यह कूर्म हमारे कर्म को अच्छे प्रकार जान कर हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग में पहुंचावे ॥

(यज्ञ ही कूर्म)

३८२ स्वर्गे लोके मेतुमाथङ्कूर्मं उपधीयते।।कू० य० कां. ५ प्र. ७।।

३८३ सुवर्गाय वा एष लोकायोपधीयते । यत् कूर्मश्चतस्र

आशा प्रचरन्त्वग्नयः

।। कृ० य० तै० सं. काण्ड ५ । प्र० ७ ।।

३८४ यत् कूर्ममुपदधाति । यथाक्षेत्रविदञ्जसा नयत्येव

मेवैनं कूर्मः सुवर्गलोकमञ्जसा नयति ।।

कृ० य० तै० सं. अष्टक ५ प्रपा. २ अनु ८ प. ३८७६

चतुष्पाद् यज्ञ ही यजमान को स्वर्ग में पहुंचाता है कच्छप जल जन्तु नहीं रोभिश्च गुप्तो यज्ञो चतुष्पाद् दिव मारूरोह ।।" गो० पू० प्र० २ ब्रा. २५ ।। तब अर्थ यह होगा कि अथङ्कूर्मः (क्रिया शीलः क्षत्रियः सपत्नी को यजमानः (अजानन्) ज्ञान पूर्वकं कर्त्तृ कर्म साधन सम्पन्न मिमं यज्ञं कुर्वन्, अस्यायं स्थापिनो वैश्वानर यज्ञ स्थाग्निः (अजरम्) आयुर्वर्धकं, सुवीर्यम् (शोभन-बलकरम्, (घृतम्) प्रदी प्रकरमा व्यं पिन्वन् (घृतस सहितं हुता द्रव्यं सूक्ष्मी कुर्वन् (नः) अस्मभ्यो यजमाना दिभ्यः (स्वर्गम्) दिव्य सुखं (नयतु) प्रापयतु = ददातु "।।

अ (अथ) कूर्म अर्थात् सपत्नीक क्षत्रिय यजमान ज्ञान पूर्वकत वैश्वानर यज्ञ का अग्नि यज्ञ द्वारा आयुवधक, बलदायक घृत को आहुति द्वारा पीता अर्थात् घी सहित हुत द्रव्य को सूक्ष्म करता हुआ हम यजमानादि को दिव्य सुख देता है ।।

" अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः" यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है कि स्वर्ग अर्थात् दिव्य सुख चाहने वाला अग्नि होत्र करे ।। यही अग्नि होत्र यज्ञ यजमान को सुख देने वाला है । " अग्नि दूतं पुरोदधे हव्यवाह मुपब्रुवे देवाँ



(कूर्म उपधान विषय)

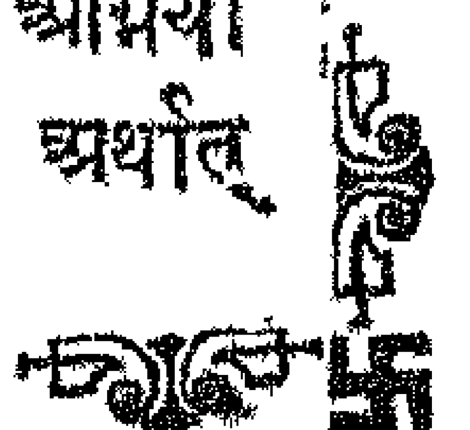
३८५ मेधो वा एष पशूनां यत् कूर्मो यत् कूर्ममुपदधाति स्वमे-
न मेधं पश्यन्तः पशव उपतिष्ठन्ते ॥

कृ० य. तै. सं.अष्टक ५ प्र. २ अनु

आरादयादिह ॥" इत्यादि वेद मन्त्रों में अग्नि को ही दूत के समान यज्ञ को स्वर्ग में पहुंचाने वाला कहा गया है इसलिये कूर्म का अर्थ यहां अग्नि लेना ठीक और न्याय्य है ॥

३८२ (अर्थः) यजमान को स्वर्ग लोक में पहुंचाने के लिये यज्ञ में कूर्म का स्थापन करे ।

३८३ पूर्वोक्त कथन को पुनः स्पष्ट करते हैं कि जो सुखदायक लोक हैं उन लोकों में यजमान को पहुंचाने के लिये कूर्म का स्थापन है (चतस्र आशा प्रचरन्त्वग्नयः) ' अग्नयः " बहुवचन होने से गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय तीनों अग्नियो का ग्रहण है, इन तीनों अग्नियों में किया हुवा यज्ञ पूर्वादि चारों दिशाओं में व्याप्त होकर वायु जल को शुद्ध कर देता है यह प्रमाण है कि कूर्म का अर्थ यहां यज्ञ और यज्ञ की अग्नि है आरम्भ में जो अग्न्याधान किया जाता है उसी यज्ञाग्नि का नाम कूर्म है कूर्म का अर्थ जो सायणाचार्य ने जल जन्तु कच्छप लिया है वह प्रकरणविरुद्ध है अतः कूर्म शब्द से कच्छप का ग्रहण नहीं हो सकता। वस्तुतः कूर्म का अर्थ यज्ञाग्नि है। यज्ञ ही यजमान को स्वर्ग में पहुंचाता अर्थात् दिव्य सुख देता है। यज्ञ ही कूर्म है। यह यज्ञ का फल कहा है। यज्ञ का फल दृष्ट और अदृष्ट दोनों हैं, दृष्ट फल वर्षादि, और अदृष्टफल मुक्ति है। यज्ञ ही अभ्युदय और निश्रेयस का करने वाला है। सायणने अपने भाष्य में इस पर लिखा है कि जब कूर्म यजमान को स्वर्ग में पहुंचाता है तो मार्ग में जहां बहुत अन्धकार होता है वहां ये अग्नि में प्रकाश करती हैं इत्यादि अर्थ चिन्त्य है.वास्तव में गार्हपत्यादि तीनों अग्नियों में किया हुवा यह कूर्मरूपी यज्ञ ही यजमान को स्वर्ग में पहुंचाता अर्थात्

(मृत पशुओं के शिरों का उपधान श्मशान सदृश है)

३८६ श्मशानं वा ‥ तत् क्रियते । यन्मृतानां पशूनां शीर्षाण्युप धीयन्ते

॥ कृ० य० । कां० ५ । प्रपा० २ । अनु० ८ ॥

दिव्य सुखदेता है । तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक १० । अनुवाक ६२ । ६३ । में लिखा है कि "यज्ञेन हि देवा दिवंगताः,, यज्ञ से ही विद्वान् लोक स्वर्ग को प्राप्त हुवे ॥

३८४ जो कूर्म का यज्ञ में स्थापन है, वह जैसे किसान खेत में (क्षेत्र को जानने वाला मनुष्य शीघ्र) क्षेत्र में पहुचा देता है उसी प्रकार कूर्म अर्थात् यह आधान अग्नि वाला यज्ञ)यजमान को शीघ्र स्वर्ग अर्थात् दिव्य सुख को प्राप्त कराता है इसमें प्रमाण अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवां २॥ आसादयादिह ॥

(य. अ. २२ मं. १७)

यह भौतिकाग्नि दूत समान हुत द्रव्य को अन्तरिक्षादि लोकों में पहुंचाता है अतः दूत है । होम योग्य पदार्थों को अन्तरिक्षादि में पहुंचाने से अग्नि हव्यवाट् है । इस प्रकार के अग्नि को (पुरोदधे) ईश्वर आगे स्थापित करता है (उपब्रुवे) का यह अर्थ है कि मैं ईश्वर मनुष्यों को उपदेश करताहूं । किसलिये- कि 'इह देवान् आसादय ताल्" इसलिये कि वेदोक्त पृथिव्यादि (३३) तेतीस देवों को यह अग्नि हुत द्रव्यों को पहुंचादेवे ॥ १ ॥ 'एवं कूर्मः स्वर्ग लोकं' का यहभी अर्थ है कि कूर्म क्षत्रिय राजा यज्ञ करके यजमान और अपनी प्रजा को स्वर्ग लोक में शीघ्र पहुंचा सकता है स्वर्ग लोक का अर्थ जहां भी कहीं दिव्य सुख हो वहां वह यज्ञानुष्ठान से प्राप्त होता है.

३८५ (अर्थः) वा (अथवा) (एषः) यह (पशूनाम्) पशुओं का (मेधः) हिंसा रूप यज्ञ है । सायण ने मेध शब्द का अर्थ हिंसा किया है । क्यों कि सायण यज्ञ में पशुवध मानते हैं । मिधृ मेधृ हिंसनयोः । मेधृ सङ्गमे च"

(यज्ञ में यजमान)

२८७ यज्जीवन्तं कूर्ममुपदधाति । तेनाऽश्मशान चिद्वास्त-
व्यो वा एष (यत् (५) कूर्मो मधु वाता ऋतायते
इति दध्ना मधुमिश्रेणाऽभ्यनक्ति स्वदयत्येवैनं ग्राम्यं वा
एतदन्नं यद् दध्यारण्यं मधु दध्ना मधु मिश्रेणाऽभ्यनक्त्यु-
भयस्यावरुध्यै द्यौः पृथिवी च नः इत्याभ्यामेवैनं मुभ-
यतः परिगृह्णाति ।

कृ० य० तै० सं. अष्टक ५। प्रपाठक २। अनुवाक ८ ॥

मेध का अर्थ और मेधा है और मेध का दूसरा अर्थ सङ्गम है। यज्ञ में पशुहिंसा का निषेध "ओषधे! त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः" इस मन्त्र में स्पष्ट है कि ओषधि आदि से पशुओं की रक्षा करनी चाहिये य. अ. ६। मं.१ शस्त्रादि से उनको कभी नहीं मारना चाहिये। तब यहां मेध शब्द का अर्थ 'सङ्गम' लेना चाहिये (यत् कूर्मः) जो पशुओं की हिंसा है वही कूर्म का उपधान करें ('स्वमेव मेधं पश्यन्तः) अर्थात् पशु अपने (मेध) एकत्रित एक स्थान में स्थित पशुओं को देखते हुवे अपने आप ही उनमें उपस्थित हो जाते हैं। पशुओं की रक्षा करके उनके घी दूध का उपयोग यज्ञ में कहा गया है।

अथवा कूर्म नाम अग्न्याधान वाले अग्नि का है उसके साथ आहवनीय आदि अग्नियों का सङ्गम ही कूर्म है। जो पशुओं का सङ्गम है- वह उनकी रक्षार्थ है मारने के लिये नहीं "यजमानस्य पशून् पाहि" ॥ य०। अ० १। मं. १ ॥ इस याजुष्क मन्त्र में स्पष्ट आज्ञा है कि यज्ञ में यजमान के पशुओं की रक्षा करो। यज्ञ में पशुवध करने के लिये कूर्म का स्थापन नहीं है और मेध शब्द का का अर्थ सङ्गम न करके हिंसा अर्थ सर्वथा उपर्युक्त 'ओषधे०' आदि मन्त्रों से विरुद्ध है।

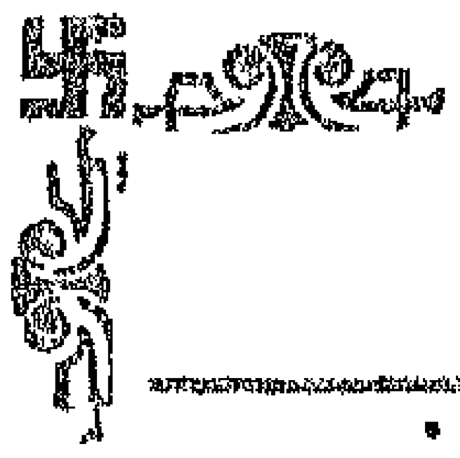
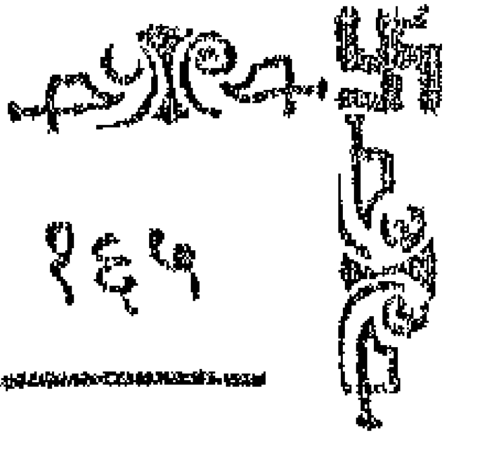
(भोगरूप पदार्थों का नाम कूर्म है)

३८८ पुरोडाशः कूर्म्मः ॥ कृष्णयजुर्वेदीय तै० सं. अष्टक ५ प्र० २ अनुवाक ८ ॥

"पूर्व यह प्रति पादन किया गया है कि कूर्म का स्थापन यजमान को स्वर्ग (दिव्य सुख) पहुंचाने के लिये है अब यहां पक्षान्तर में कूर्म ही की हिंसा लिखना वेदानुकूल नहीं है। क्षत्रिय का कर्तव्य प्रजा रक्षण है, इस लिये मेध का अर्थ यज्ञ में दूध घी देने वाले गाय आदि पशुओं का एक स्थान में रखना उनकी रक्षा कर यही अर्थ प्रकरणानुसार यहां लेना उचित है॥

और जो "यत्कूर्म मुप दधाति" लिखा है इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मा कूर्म क्षत्रिय को (उप) यज्ञ में स्वं समीप धारण करता है अर्थात् यजमान को आसनपर बैठाता है॥

३८६ (श्मशान वा०) इस का यथार्थ अर्थ यह कि यदि पूर्वोक्त कही हुवी गार्हपत्यादि तीनों अग्नियें एक स्थान में न स्थापित हों अथवा मेध अर्थात यज्ञ को न देखें अर्थात् प्रदीप्त और ज्वाला रूप में न हों किन्तु अप्रदीप्त और राख रूप में हों तो यह ऐसा यज्ञ श्मशान की राख के समान निष्फल है। उसका विपरीत (उलटा) अधर्म फल यज्ञ कर्ता को होगा और मृतपशुओं के शिरों का स्थापन भी श्मशान की राख के समान है जब वेद में पशुवध की आज्ञा नही तब शिरों का उपधान कहां हो सकता है। और शतपथ काण्ड ७अ.५ प्रपा. ४ जहां यह विषय है वहां मृत पशुओं का उपधान नहीं लिखा है अतः यह चिन्त्य है। धर्मशास्त्रमें विधिवाक्य, अनुवाद वाक्य और अर्थवाद वाक्य ये तीन प्रकार के वाक्य आते हैं। गार्हपत्यादि तीनों अग्निये श्मशान की राख के समान निष्फल होंगी यह यजमान की निन्दा अर्थवाद रूप में है अर्थात् श्मशान की भस्म (राख) के समान तेरे तीनों अग्नि में डाली हुवी आहुतियें फल दायक नहीं होती हैं महा भारत शान्ति पर्व अध्यय २६४ में कहा है कि "सुरामत्स्य मधुमांसमारावं कृशरौदनं धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु तम्॥ कल्पि मघा

(जीवात्मा का भोक्तृत्वादि वि.)

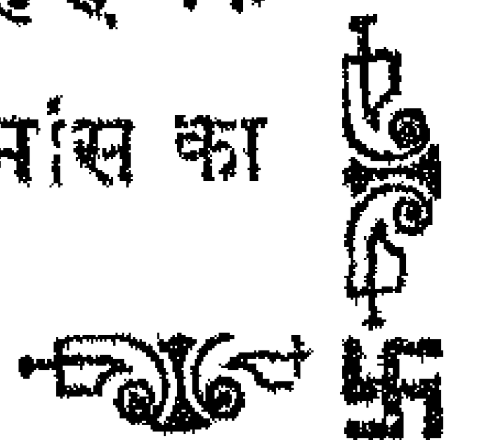
३८९ तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वज्ञः सर्वानुभावी तस्य भोगायतनं शरीरं भोगसाधनानीन्द्रियाणि, भोगो बुद्धिः ॥ आत्मशरीरेन्द्रियार्थ० ॥ न्या० । अ० १ सू० ९ पर यह वात्स्यायन भाष्य है ॥

मछली (मधु) (सुरा) शहद (मांस) (शराब) और खिचड़ी और भात यह सब धूर्तों ने यज्ञ में चलाया है वेदों में यह नहीं है कि मरेहुवे पशुओं के शिरों की स्थापना यज्ञ में और न मद्य मांसादि के होम की आज्ञा है ॥

३८७ [अर्थः] यज्ञ में जो जीवित कूर्म क्षत्रिय है। यजमान पुरोहित उसको यज्ञ शाला से अलग स्थान में बैठाकर प्रथम उसका मधुपर्क से सत्कार करें।

तत्पश्चात् यज्ञशाला में आकर वह कूर्म क्षत्रिय राजा वासन्तिक यज्ञ करे पुनः शत्रु को विजय करने के लिये युद्धार्थ यात्रा करे। मधुपर्क खाने से पूर्व "मधुवाता." आदि वेद मन्त्रों को राजा पढ़ले फिर स्वादु युक्त मधुपर्क को खावे। १२ तोले दही, में शहद और शहद से अतिन्यून घृत मिलावे और कांसे के पात्र में रखें। दही ग्राम्य अन्न है और मधु [शहद] अरण्य अन्न है। द्युलोक और पृथिवी लोक दोनों के सुधार के लिये "महीचद्यौ पृथिवी च नइमं यज्ञं मिमि--क्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः" ॥ य. । अ. १३ । मं. ३२ ॥ इस मन्त्र से द्यावा पृथिवी का उपधान करे।

(व्याख्या) यहां यह विवेक है कि यद्यपि सायणाचार्यादि वेदों के भाष्य-कारों ने इस प्रकरण का अर्थ पशु वध परक करके मृतकूर्म (कच्छप) और जीवित, कूर्म का उपधान यज्ञ में लिखा है परन्तु पशुवध परक अर्थ वेद विरुद्ध होने से ग्राह्य नहीं हो सकता, मृत और जीवित का वास्तविक अर्थ यह है कि मनुष्य समुदाय में जीवित कूर्म व , है जिसका मस्तिष्क (शिरोगत मांस का

(बन्ध और मोक्ष बुद्धिकृत होने पर भी फल का)

३९० तावेतौ भोगापवर्गौ बुद्धिकृतौ बुद्धावेव प्रवर्तमानौ कथं पुरुषे व्यपदिश्येते" इति ॥

भेजा) हृष्ट पुष्ट और नैरोग्य हो) तथा शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग दृढ़ हों उसके बाहू (भुजायें) दीर्घ हों, जो सर्वहित कामों में श्रद्धालु हो, परोपकारी और धर्मात्मा हो, क्षात्र धर्म का स्मरण करता हुआ कभी भी सङ्ग्राम से हटने का मन न रखता हो, जिसकी शास्यता में शक्ति हो, वही जीवित कूर्म क्षत्रिय है ऐसे कर्मवीर क्षत्रिय का उपधान यज्ञ की रक्षार्थ यजमान करे। जैसे विश्वामित्रने अपने यज्ञ की रक्षार्थ राम और लक्ष्मण को रखा था।

जिसको मौत का डर न हो, जो निर्भीक हो, वेदोक्त धर्म की रक्षार्थ हर समय मरने कटने के लिये उद्यत हो, जिससे देश और वंश की उन्नति हो, जो प्रजाजन रक्षक, अधर्मी राजा को विजय करने के लिये जीते जी सङ्ग्राम में आवश्यकतापर अपना शिर तक कटवा देने को सन्नद्ध हो उस व्यक्ति को यहां जीवित कूर्म क्षत्रिय समझना चाहिये, ऐसा शूर वीरतादि गुण सम्पन्न वंश कूर्म वंश स्वाम्भुव मनु से से लेकर अद्यावधि भारत में विद्यमान है, महाराना प्रतापादि इसी वंश में हुवे हैं यह इतिहास सिद्ध है।

३८८ पुरोडश शब्द में पुरस् अव्यय पद है और डाश यह 'दाशृ, दाने धातु का रूप है, पृषोदरादि से दा को डा हुआ है। यह पुरोडश संस्कृत अन्न यव (जव) और चावल आदि भक्ष्यान्न पिष्ट (आटे) का बनाकर मृत्तिका के कपालों में मन्त्रवान् ब्राह्मण अग्निपर पकाता है, इस को स्वर्ग प्राप्ति का देने वाला कहा है। मूल में पुरोडश पदउपलक्षणार्थ है अतः अन्य जितने भी भोगरूप पदार्थ हैं वे सब कूर्म कहायेंगे ॥

(व्याख्या) अभिप्राय यह है कि पुरोडाश अर्थात् संस्कृत अन्न खानेपर रस रक्त मांसादि परिणाम को प्राप्त कर तृप्त करदेता है अतः कूर्मरूप पुरोडश ही भोग है। "तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा" ॥ यो०। पा. २। सू.

(योगद० । साधनपा० (२) 'प्रकाशक्रिया०" इस सू०
पर व्यास भाष्य)

२९१ यथा विजयः परा योज योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते स हि तत्फलस्य भोक्तेति। एवं बन्ध मोक्षौ बुद्धावेव प्रवर्त्त मानो पुरुषे व्यपदिश्येते स हि तत्फलस्य भोक्तेति॥
(योगदर्शन सा० पा० (२) सू १८ पर व्यास भाष्य)

---

२१ ॥ दृश्य (प्रकृति) का अन (स्वरूप) 'तदर्थ एव (पुरुष जीवके ही लिये है । भोग्या प्रकृति और भोक्ता पुरुष है । "चिद्व सानो भोगः" ॥ सां. । अ. १ । सू. १०४ ॥ चेतन आत्मा तक भोग है ॥ "यद्यपि पुरुष असङ्ग और स्वरूप से केवल है परन्तु बुद्धि के उपराम से पुरुष को ही सुख दुःख इष्ट अनिष्ट विषयों का भोग = ज्ञान व अनुभव होता है, स्वतन्त्र जड़स्वरूप बुद्धि तत्व को नहीं (श्री स्व. प. तुलसीराम स्वामी मेरठ)

योग दर्श के व्यास भाष्य में लिखा है कि "तावेतौभोगाप वर्गौ बुद्धिकृतौ" अर्थात् भोग और दोनों बुद्धि के द्वारा होते हैं जिसको बुद्धि नहीं उसको न भोगों की प्राप्ति है और न मोक्ष की॥

महर्षि वात्स्यायन मुनि ने तो भोगों को ही बुद्धि कहदिया तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वज्ञः सर्वानुभावी तस्य भोगा यतनं शरीरं भोग साधनानीन्द्रियाणि भोगो बुद्धिः ॥" न्याय दर्शन के रूप्रात्म शरीरेन्द्रि यार्थ० इस सूत्रपर यह भाष्य ।

बुद्धि रुपलब्धिर्ज्ञानि मित्यनर्थान्तरम् ॥ न्यायदर्शं० । अ. प्रा. । सू०
महर्षि गोतम कहते हैं कि बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये सब एकार्थ वाची शब्द है ॥ न्याय बुद्धि को आत्मा काज्ञान गुण मान और योग बुद्धि को प्रकृति का पहिला परिणाम मानता है अर्थात बुद्धि दर्शन शक्ति है और आत्मा दृक् शक्ति है

(कर्माशय, दृष्ट और अदृष्ट जन्म से जानने योग्य है)

३९२ अध्यवसायो बुद्धिः ॥ साङ्ख्ये । अ० २ । सू० १३॥

३९३ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टाऽदृष्टजन्मवेदनीयः ॥
योगद० । सा० पा० (२) सू० १२ ॥

---

३८९ जीवात्मा सबका द्रष्टा, सबपदार्थों का भोक्ता, (सर्वज्ञ,) सबपदार्थों का ज्ञाता सब का अनुभव करने वाला, उस के भोग का आयतन (स्थान) यही शरीर है, भोग के साधन पांच ज्ञानेन्द्रिय और ११ वां मन है, और बुद्धि भोग = अर्थात् भोगोंका साधन है। 'अध्यवसायो बुद्धिः ॥ साङ्ख्य० । अ० २ सू० १२ ॥ सर्वार्थाध्यव साय कत्वात् त्रिगुणा बुद्धिः, त्रिगुणात्वाद् चेतना"॥ (योगद० । साधन, सू० २० पर व्यासभाष्य) सू. १२ का अर्थनिश्चय करना बुद्धि का काम है ॥ १२ ॥ सबविषयोंका निश्चय बुद्धि द्वारा होने से बुद्धि त्रिगुणात्मक सत् रजस् और तमो गुण वाली है बुद्धि त्रिगुणात्मक होने से अचेतन है। पुरुष जीवात्मा चेतन है। "सति मूले तद्विपा को आत्यायुर्भोगाः ॥ यो० द० पा० २ सू० १३ । (अर्थः) अविद्यादि मूलक्लेशों के होने पर उन का फल जन्म, आयु, भोग है ॥ १३ ॥

३९० भोग और अपवर्ग (मोक्ष) बुद्धि कृत हैं जबबुध्दि कृत हैं और बुध्दि ही में वर्तमान हैं तो पुरुप (जीवात्मा) में इन का व्यपदेश कैसे

३९१ उत्तर जैसे, विजय (जीत) और (पराजय) हार योद्धाओं में होती है परन्तु जीत हार का व्यवहार स्वामी (मालिक राजादि) में ही किया जाता है क्यों कि स्वामी ही उस फल का भोक्ता है,इसी प्रकार बन्ध और मोक्ष यद्यपि बुद्धि में हैं जड़ है अतः पुरुप (जीव) में ही बन्ध मोक्ष का व्यवहार होता है, अर्थात् परन्तु बुद्धि तत्व पुरुप (जीवात्मा) ही बन्ध मोक्ष के फलों का भो ा है बुद्धि नही॥ क्यों कि वह जड़ है ॥

३९२ निश्चय करना बुद्धि का काम है ॥१३॥

३९३ अविद्यादिक्लेश मूलक कर्माशय दृष्ट जन्म और अदृष्ट जन्मसे जानने योग्य हैं १२॥

वाज अर्थात् अन्न ही स्वर्ग लोक है ॥

२९४ प्रजापतिर कामयत वाजमाप्नुयात् । स्वर्गंलोकमेति स एतं वाजपेयमपश्यत् । वाजपेयो वा एषः, य एष तपति । वाजमेतेन यजमानः स्वर्गंलोकमाप्नोति । देवस्य त्वा सवितुः सर्वं स्वर्गलोकं वर्षिष्ठं नाकं रोहेयमिति, वाजि सामाभिगायति । ब्रह्मा रथचक्रं सर्पति ॥

गोपथ ब्रा० उत्तरभाग, प्रपा० ५ ब्रा० ८॥

वाजो वै स्वर्गः लोकः ॥ गो० उ० प्र० ५ ब्रा. ८॥

(जन्म, आयु, भोग)

'तस्माज्जन्मप्रायणान्तरे कृतः पुण्यापुण्यकर्माशयप्रचयो विचित्रः प्रधानोपसर्जन भावेन अवस्थितः प्रायेणाभिव्यक्त एक प्रघट्टकेन मिलित्वा मरणं प्रसाध्य सम्मूर्छित एक मेव जन्म करोति, तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति, तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा, भोगः सम्पद्यत इति' सतिमूले.' अस्योपरि व्यासभाष्यम् ॥ असौ कर्माशयो जन्मयुर्भोगहेतुत्वात् त्रिविपाकोऽभिधीयते, अत एक भविक कर्माशय उक्त इति" (व्या. भा. उपर्युपरि)

अर्थः । जन्म से मरण पर्यन्त के बीच में किया हुआ पुण्याऽपुण्य कर्माशय संक्षिप्त और विचित्र प्रधान और गौण भावसे मन सहित आत्मा में अवस्थित. ता है वह प्रारब्ध भोग के समाप्त हो जाने पर मृत्यु के लिये प्रकटहुआ एक प्रघट्टक (फलक) में मिलकर अन्त में मृत्यु का कारण होजाता है। फिर जीवात्मा शरीर से पृथक् होकर कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से दूसरा शरीर धारण करता है। और अपने उसी कर्म से आयु और भोग को प्राप्त होता है। यह कर्माशय जन्म, आयु, और भोग का कारण होने से तीन विपाक (फल) वाला कहा जाता है। यह एक जन्म का कर्माशय है ।

(जिसमें होता विद्वान् होते हैं वह यज्ञ जन-
समूहका उकारक हो)

३९५ यज्ञोपितस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति
ऐतरेये ब्रा० । पञ्चिका १ अ० २॥

३९६ अग्निहोत्रं सायं प्रातर्गृहाणां निष्कृतिः स्विष्टं ँ सुहुतं यज्ञक्रतूनां प्रापणं ँ सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिः तस्मादग्नि होत्रं परमं वदन्ति ॥ तैत्तिरीय आरण्यक । प्रपा० ६३ । अनु० १॥

३९७ यज्ञेन हि देवा दिवंगता यज्ञेनासुरानपानुदन्त यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति तस्माद् यज्ञं परमं वदन्ते
तैत्ति० आरण्य० प्रपा. १० । अनु० ६२ । ६३ । भू. पृ. ११० भू० वेदोक्तधर्म वि.

(अनग्निक ब्राह्मण का पितृयज्ञ और देवयज्ञ-

क्लेश, कर्म, विपाकानुभव निमित्त वासनाओं से अनादि काल से सम्मूर्छित यह चित्त मत्स्य जाल ग्रन्थियों के समान सब ओर से चित्रीकृत अर्थित असंख्येय वासनाओं से व्याप्त है इस प्रकार ये वासनायें अनेक जन्मों की हैं और यह जो कर्माशय है वह एक ही जन्म का है परन्तु एक जन्म के कर्माशय के साथ अनेक जन्मों की वासनायें चित्त में स्थित रहती हैं स्मृति क्लेश हेतु के उत्पादक संस्कारों का नाम वासना है । जो प्रवाह से अनादि हैं ।

और यह जो एक जन्म का कर्माशय है वह नियत विपाक और अनियत विपाक वाला है, यह नियत और अनियत विपाक दृष्ट जन्म (जो अब है)उसकी है अदृष्ट जन्म वेदनीय अनियत विपाक का नहीं क्यों कि अदृष्ट जन्म वेदनीय अनियत विपाक की गति तीन प्रकार की है

३९८ अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ॥

द्वारा सत्कार न करे)

३९९ अथ योयमनाग्निकः स कुम्भे लोष्ठः प्रक्षिप्तो नैवशौचार्थाय कल्पते नैव शस्यं निर्वर्तयत्येवमेवायं ब्राह्मणोऽनाग्निस्तस्यानाग्निकस्य नैव दैवं दद्यान्न पित्र्यं न चास्य स्वाध्याय शिषो न यज्ञ आशिषः स्वर्गगमा भवन्ति, तदप्येतदृचोक्तम् अग्निं दूतं वृणीमहे, होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥

गोपथ ब्रा० पूर्वभाग, प्रपा० २ ब्रा० २३॥

---

(१) कृतस्यापकस्य नाशः । किये हुवे अपरिपक्व कर्म फल का यहां ही नाश हो जाना ।

(२) दूसरी कर्म की गति यह कि किसी प्रधान कर्म में पिछले किये का भुगत जाना " प्रधान कर्मस्या वापगमम् "

(३) तीसरी कर्म की गति "नियतप्रधानकर्मणाभिभूतस्य चिरमवस्थानम् " अर्थात् नियत प्रधान कर्म के साथ दबे हुवे कर्म का बहुत काल तक पड़े रहना जब तक कोई उसका दूसरा अभिव्यञ्जक कर्म न होगा वह प्रधान कर्म के साथ छिपा पड़ा रहता (हुसकाने वाला) कर्म मिल जाता है तो वह उसी समय, फल दे देता है इसका कोई देश काल नियत नहीं है ॥

३९४ प्रजापति ने कामना की, कि अन्नवान् होना चाहिये, अन्नवान् होने से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है । प्रजापति ने वाजपेय यज्ञ को जाना, अन्नार्थ तपकरना ही वाजपेय यज्ञ है । अन्नोत्पत्ति के लिये यत्नवान् होना ही तप है । यजमान इस वाजपेय यज्ञ को करके अन्नलभि रूप स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है । जिसके

(यज्ञ में मृतपशुओं के शिरोंका उपधान)

४०० एता वै प्राणामृतश्चक्षुष्मतीरिष्टका यत्पशुशीर्षाणि यत् पशुशीर्षाण्युपदधाति ताभिरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोके प्राणित्यथो ताभिरेवास्मा इमे लोका प्रभान्ति ॥

कृ० य० तै० सं. । कां. ५ । प्रपा ७ अनु० १० । पृ. ३८७१

तदुपधानेन यजमानः स्वर्गे प्राणिति चिरंजीवतीति सायणभाष्यम् ।

समीप अन्न राशि है उसके लिये वही अन्न राशि स्वर्ग लोक है । 'देवस्यत्वा०' यज्ञ में यजमान इस मन्त्र को पढ़कर अन्न सम्बन्धी साम का गान करता है और ब्रह्मा रथ के चक्र (पहिये) को आरम्भ में सरकाता अर्थात् चलाता है । (व्याख्या) अन्न के खाने से ही प्राणियों के शरीर बनते हैं । कहा है कि " अन्न वै प्राणिनां प्राणा " अर्थात् अन्न ही प्राणियों का प्राण है । वह यव (जव) चना गोधूमादि और अनेकानेक कन्द तथा आम्रादि फल एवम् घृत दुग्धादि ये ही शरीर को चिरकाल पर्यन्त स्थिर रखते हैं इसलिये कहा है कि अन्न स्वर्ग लोक है । ' अन्नं बहु कुर्वीत ' अन्न बहुत पैदा करना चाहिये ऐसा उपनिषद् में भी कहा गया है ।

३९५ यज्ञ भी संसारोपकारक तभी होता है कि जब उसयज्ञ में होता आदि सब पूर्ण विद्वान् हों और कर्ता, कर्म, हविष्य ये सब ठीक २ हों, वैगुण्य होनेसे यज्ञ का फल विपरीत होता है । जो आहुति दीजाय वह मान (प्रमाण) से हो, न न्यून हो और न अधिक हो । आहुति प्रज्वलित अग्नि में दी जाय

३९६ गृहस्थों के घर में सायं और प्रातः किया हुवा अग्निहोत्र उनके लिये प्रायश्चित्त है, यह अग्निहोत्र शोभन इष्ट, उचित विधि से किया यज्ञक्रतुओं का प्रापक और स्वर्ग लोक का ज्योति है अर्थात् दिव्य सुख को देने वाला है । इसलिये अग्निहोत्र को परम श्रेष्ठ कहा है ॥

युधिष्ठिर का भीष्म से प्रश्न कि धर्मार्थ और सुखार्थ कौनसा यज्ञ है

(यज्ञ में पशुहिंसा का निषेध)

४०२ ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैन ँ हि ँ सीः ॥१॥

(य० । अ० ६ । मं. १)

४०३ तस्य तेनानुभावेन, मृगहिंसात्मनस्तदा । तपो महत्स-मुच्छिन्नं, तस्माद्धिंसा न यज्ञिया ॥ १ ॥ (महाभा० शा० प० । अ० २७२)

---

३९७ यज्ञानुष्ठान से विद्वान् लोग दिव्य सुख को प्राप्त हुवे देवों के विरोधी निकृष्ट कर्म करने वाले असुर नामक मनुष्य पराजित हुवे यज्ञाचरण से ही द्वेष्टा मित्र हो जाते हैं। यज्ञ में ऐहिक और पारलौकिक आदि सभी सुख प्रतिष्ठित हैं।

३९८ इसलिये सुखार्थी = स्वर्ग चाहने वाला यज्ञ करे। (व्याख्या) जहां जहां यज्ञ में कूर्म का स्थापन यजमान को स्वर्ग में पहुंचाने के लिये कहा है वहां २ कूर्म का अर्थ यज्ञ की आन्याधान अग्नि है, कच्छप (कछुआ) नहीं यह आधान अग्नि यज्ञ (स्वर्ग) दिव्य सुख देने वाला है। इसके प्रमाण ऊपर लिखे गये हैं ॥ अन्य भी महत्व रखने वाला एक प्रमाण है

जैसे ते सर्वे स्वर्गं लोक मायन्त्सैषा स्वर्ग्याहुति र्यदग्न्याहुतिः ॥

ऐतरेय ब्रा० । अ० ४ । पञ्चिका ५॥

यज्ञ करने से वे स्वर्ग लोक को प्राप्त हुए,। जो अग्नि में आहुति दी गयी है वह स्वर्ग्य अर्थात् दिव्य सुख को देने वाली आहुति है। स्वर्गाय = दिव्य सुखाय हिता हुतिः स्वर्ग्या हुतिः। यज्ञ ही स्वर्ग का साधन है। जो सुख चाहे वह यज्ञ करे। “ अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्ग काम ॥ ”

दान, तप, यज्ञ, सत्य, अहिंसा, ये अभ्युदय और निःश्रेयस के करने वाले हैं

४०४ अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाऽधर्मस्तथा विधः। सत्यन्ते हं प्रवक्ष्यामि, यो धर्मः सत्यवादिनाम् ॥

(महाभा० शा० प० अ० २७२)

४०५ आप्तागमादुपलभ्यते। दानं तपो यज्ञः सत्याऽहिंसा ब्रह्मचर्याण्यभ्युदयनिःश्रेयसकराणीति ॥

(च. सं.। अ. ११ सूत्र २८)

४०६ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्म्मः ॥

वै. अ. १ आह्नि. सू. २ ॥

---

३९९ नित्य अग्निहोत्र करने वाले का नाम आहिताग्नि है, इससे विपरीत का नाम अनाहिताग्नि है। उसी को गोपथकार अनग्निक लिखते हैं कि जो द्विज अनग्निक है प्रतिदिन प्रातः सायं नियम से अग्नि होत्र नहीं करता वह ऐसा है कि जैसे जल पूर्ण घडे में मिट्टी का ढेला डाला हुआ उस जल को गंदला कर देता, न वह जल शौचादि = शुद्धि के काम में आसकता और न वह खेत में अन्न को उत्पन्न कर सकता है, किन्तु व्यर्थ हो जाता है वैसे ही उस अग्नि होत्र रहित द्विज का जीवन है 'कालोऽयं परपिण्ड लोलुपतया काकैरिव प्रेरितः"। अर्थात् जैसे कौवे की आयु दूसरों के घरों में जा २-कर ग्रास लेने में ही बीत जाती है वह अन्य किसी काम का नहीं ऐसे ही उस अनग्निक पुरुष का जीवन है गृहस्थ ऐसे अनग्निक ब्राह्मण को देव यज्ञ और पितृ यज्ञ द्वारा कदापि सत्कार न करे क्यों कि अनग्निक ब्राह्मण के स्वाध्याय के आशीर्वाद और यज्ञ के आ शीर्वाद स्वर्ग प्राप्त कराने वाले नहीं होते हैं ॥

(यज्ञ में होतादि की स्थापना)

४०७ प्रजापतिर्यज्ञमतनुत । स ऋचैव होत्रमकरोत ।
यजुषाध्वर्यवम् । साम्नोद्गात्रमथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वमिति ॥
गो. ब्रा. पू. भा. प्रपा. ३ ब्रा. २

४०८ स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते
(गो. पू. प्र. ३ ब्रा. २)

४०९ तस्माद् ऋग्विदमेव होतारं यजुर्विदमेवाध्वर्युं सामविद
मुद्गातारमथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्मत्वम् ॥
गो. पू. प्र. ३ ब्रा. १ ॥

---

४०० (अर्थ) यह जो मृतव, पशुओं के शिरों का यज्ञ में उपधान है। ये प्राण धारिणी और आंख वाली इष्टकायें हैं इन्हीं से इसलोक में यजमान चिरकाल पर्यन्त जीवित रहता है, इन्हीं इष्टकाओं से ये लोक प्रकाशित हैं सायण लिखते हैं कि मृतक पशुओं के उपधान से यजमान चिरकाल तक जीवित रहता है॥

(व्याख्या) कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता का यह यज्ञान्तर्गत पशु वध प्रकरण पीछे से वाम मार्गियों का मिलाया हुआ है यह पशु हिंसा निषेध विषयक वेद मन्त्र के अग्रिम प्रमाण से स्पष्ट हो जायगा। वेद विरुद्ध पशुहिंसा और मृतक पशुओं के शिर का उपधान (स्थापन) यज्ञ में कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि हिंसा से मनुष्य की आयु घटती है। महाभारत शान्ति पर्व अ० २७२ में एक पुराना इतिहास ब्राह्मणी ब्राह्मण का भीष्म जी ने कहा कि तपस्वी ब्राह्मण ने आहुति देने के विचार से एक मृग को मारना चाहा इससे उसका तप नष्ट हो गया इसलिये हिंसा यज्ञिय नहीं ॥

४०१ औषधि आदि से प्राणि समूह की और यजमान की रक्षा करनी चाहिये, शस्त्रादि से कभी उनको नहीं मारना चाहिये ॥

(चतुष्पाद यज्ञ स्वर्ग को पहुंचाता है)

४१० तथा ह्यस्य यज्ञश्चतुर्षु लोकेषु चतुर्षु वेदेषु चतसृषु होत्रासु चतुष्पाद् यज्ञः प्रतितिष्ठति प्रजया पशुभिर्यःएवं वेद॥ गो. ब्रा. पू. भा. प्रा. प्रपा. २ ब्रा.२४॥

४११ अथर्वाङ्गिरोभिश्च गुप्तो यज्ञोश्चतुष्पाद् दिवमारुरोह

(गो. पू. प्र. २ ब्रा. २५)

४१२ यांश्च ग्रामे यांश्चारण्ये जपन्ति मन्त्रार्थान् नानार्थान् बहुधाजनासः सर्वेते यज्ञा अङ्गिरसोपि यन्ति ॥

(गो. ब्रा. पू. प्र. ५ ब्रा. २५)

(त्रयि विद्या से दिव्य सुखके प्राप्ति का नि०)

४१३ त्रिविष्टपं त्रिदिवं नाकमुत्तमं तमेतया त्रय्या विद्ययेति ॥ गो० पू० प्र० ५ ब्रा० २५ ॥

४१४ त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिञ्च शाश्वतीम् । आन्विक्षिकीञ्चात्मविद्यां, वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥

म० । अ० । श्लो० ॥

---

४०२ महाराज युधिष्ठिर ने भीष्म जी से पूछा कि धर्मार्थ और सुखार्थ कौनसा यज्ञ है इसके उत्तर में भीष्म ने एक पुराना इतिहास ब्राह्मणी और ब्राह्मण का कहा कि तपस्वी ब्राह्मण ने आहुति देने के विचार से एक मृग को मारना चाहा इससे उसका तप न रहो गया इस लिये हिंसा यज्ञिय नहीं अर्थात् यज्ञ योग्य नहीं ॥२७२॥ अध्याय

ब्रह्मोपधान के बिना भी हवन समय वेद मन्त्रों का पाठही दिव्य सुख को देता है

४१५ ब्रह्म समिद् भवत्याहुतीनाम् । कृ. य. तै. सं.

आहुतिप्रदानां यजमानानां ब्रह्म समिद् भवति मंत्र एव स्वर्गमार्गप्रदर्शको भवतीति सायणभाष्यम् ॥४१९॥

४१६ ब्रह्म समिद् भवत्याहुतीनामित्याह ॥ ब्रह्मणा वै देवाः सुवर्गं लोक मायन् ॥ आहुतिप्रदाः पूर्वे देवा मन्त्र सामर्थ्येनैव स्वर्गं प्राप्ताः । अतो मन्त्र एव प्रकाशसाधनम् । इति सायणभाष्यम् ॥

४१७ यद् ब्रह्मण्वत्योपदधाति । ब्रह्मणैव तद् यजमानः सुवर्गं लोकमेति ॥ कृ० य० तै० सं. ।

४०४ (अहिंसा) सर्वथा सर्वदा किसी जीवका अनिष्ट चिन्तन न करना यह सकल धर्म है और हिंसा अधर्म (पाप) कर्म है हे युधिष्ठिर जो सत्यवादियों का सत्य धर्म है वह मैं तुमसे कहूँगा ॥२॥

४०५ वेद की भी यही आज्ञा है कि १ दान २ तप ३ यज्ञ ४ सत्य ५ अहिंसा और ६ ब्रह्मचर्य्य ये संसारोन्नति के और परमार्थ (मुक्ति) के भी साधन हैं ॥२८॥

४०६ जिससे संसार और परमार्थ दोनों सिद्ध हों वही धर्म कहाता है ॥२॥

४०७ प्राचीन काल में प्रजापति ने यज्ञ की रचना की थी जिसमें ऋग्वेदज्ञ होता, यजुर्वेदज्ञ अध्वर्यु, सामवेदज्ञ उद्गाता, और अथर्ववेदज्ञ ब्रह्मा था, ॥

४०८ ऋगादि तीनों के अन्तर्गत अथर्व भी है तीनों वेदों में से किसी एक वेद से यज्ञ का अनुष्ठान पक्ष किया जाता है

४०९ अर्थ ऊपर आ चुका है

यज्ञ का स्वरूप और अभिषेचनादि के दृष्टा दृष्ट फल का वि०

४१८ प्रजापतिर्वा एष यदग्निः ॥ कृ० य० त० सं. काण्ड ५ प्र० ७ अ. १ चीयमानोऽग्निः प्रजापतिजन्यत्वात् प्रजापतिरेवाति सायणभाष्यम् ।

४१९ द्रव्यं देवता त्यागः ॥ कात्या० श्रौत सू० । सू० २३॥

४२० अभिषेचनोपवास-ब्रह्मचर्य्य गुरुकुलवास वान-प्रस्थयज्ञ दानप्रोक्षण दिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय ॥ वै० अ० ६ आ० २ सू० २॥

---

४१० प्रजापति का रचा हुआ यज्ञ द्युलोक पृथिवीलोक अन्तरिक्ष लोक स्वर्लोक चारों लोकों चारों वेदों और चारों होताओं में प्रजा पशुओं सहित चतुष्पाद् रूप से प्रतिष्ठित होता है ॥

४११ अथर्वाङ्गिरसों से प्राचीन काल में सुरक्षित यज्ञ चतुष्पाद् रूप से स्वर्ग (दिव्य-सुख) को प्राप्त कराने वाला हुआ है ॥

४१२ अनेक अर्थवाले जिन वेद मन्त्रों के अर्थों को बहुत प्रकार से सुजन एकान्त में जपते मनन करते उन सबको अथर्वाङ्गिरस जानते हैं ।

४१३ त्रयी विद्या के ज्ञान से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। ज्ञान, कर्म, और उपासना का नाम त्रयी विद्या है

४१४ राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञानविद्याओं के जानने वालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या, अर्थात् परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव को यथावत् जानने रूप ब्रह्म विद्या और लोक से वार्ता आरम्भ (कहना और पूछना) सीख कर सभासद् वा सभापति हो सकें ॥"

(यज्ञ से वर्षा और अन्नादि की उत्पत्ति)

४२१ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्य, गादित्यमुपतिष्ठते । आदित्या जायते वृष्टि, वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ म. अ ३ श्लो ७६

४२२ अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः ॥ यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ गी० अ ३ । १४०

(कूर्मोपधान का विकल्प)

४१५ कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता के अनुसार यज्ञ में पूर्वोक्त कूर्म स्थापन का विकल्प है कि कूर्म की स्मारक मूर्ति स्थापन बिना भी यह वैश्वानर यज्ञ हो सकता है कूर्मोपधान के पक्षाऽभाव में वेद मन्त्र के अर्थ को जानकर उसका आचरण ही यजमान को स्वर्ग मार्ग का प्रदर्शक है यह सायणभाष्यानुसारी अर्थ है ।

४१६ आहुति देने वाले प्राक्तन विद्वान् मन्त्र सामर्थ्य से ही दिव्य सुख को प्राप्त हुए हैं ॥

४१७ ब्रह्म शब्द जिस ऋचा में हो उसका नाम ब्रह्मण्वती ऋचा है उस ब्रह्मण्व ऋचा से उपधान करे ॥

४१८ जो यह भौतिक चयन अग्नि है उसी का नाम प्रजापति है ॥ प्रजापति ने इस अग्नि का चयन किया था इसलिये उन्हीं के नाम से यह अग्नि कहा गया ॥

४१९ अभक्ष्य मांसादि रहित भक्ष्य यव (जव) आदि तथा दुग्ध घृत फलादि चतुर्विध सामग्री और देवता (उद्देश्य) जिसमें हो वह यज्ञ का स्वरूप है ॥४०१॥

४२० अभिषेचन, उपवास (व्रत) ब्रह्मचर्य उपस्थेन्द्रिय का संयम गुरुकुल वास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, प्रोक्षण, दिशा, नक्षत्र, मन्त्र, काल, और नियम इन सबका अदृष्ट फल है ॥ यज्ञ का फल अदृष्ट (मोक्षादि) और दृष्ट वर्षादि है ॥

(यज्ञ में अग्नि का सदुपयोग)

४२३ अग्निं दूतं पुरो दधे, हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ २॥ आसा दयादिह ॥ य० । अ० २२ । मं. १७॥

४२४ अग्निं दूतं वृणीमहे, होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ सामवे० । अ० १ दशति १ खं. १ मं. ३॥

४२५ अग्न आयाहि वीतये, गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ सा० । अ० १ प्रथमादशतिः खं० १ मं. १

---

४२१ अच्छे प्रकार अग्निमें छोडी हुई आहुति सूर्य की किरणों द्वारा मेघ मण्डल में जाकर रहती है। सूय से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न उत्पन्न होता और अन्न से प्राणियों के शरीर बनते है ॥७६॥

४२२ ऐसेही भगवत गीता में भी कहा है कि अन्न से प्राणियों के शरीर बनते और अन्न बादलों के वर्षने से उत्पन्न होता और बादल यज्ञ से बनते और यज्ञ शुभ कर्मों के अनुष्ठान से होता है ॥

(व्याख्या) यथा क्षुधिता बाला मातर्युपासते। एवं सर्वाणि भूतान्यग्नि होत्र मुपासते ॥ छा० उ०) अर्थात जैसे बालक को जब भूख लगती है तो वह अपनी माता की उपासना करता, उसके पास आता और दुग्धपानसे अपनी क्षुधा निवृत्ति करता है इसी प्रकार प्राणिमात्र अग्निहोत्र की उपासना करते है' अग्निहोत्र की आरोग्य कारक सुगन्धि से सब प्राणी सुखी रहते हैं'॥

४२३ यज्ञमें यजमान को कूर्म स्वर्ग में पहुंचाता है इस अर्थ में कूर्म अग्न्याधान की अग्निका नाम, है। यज्ञारम्भ में अग्नि का स्थापन ही कूर्म का उपधान है। यह भौतिकाग्नि दूध सामान हुतद्रव्य को अन्तरिक्षादि लोकों में पहुंचाता

(यज्ञ में देवता शब्द से किसका ग्रहण है)

४२६ अग्नि र्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता

॥ य० । अ० १४ । मं. २० ॥

४२७ तिस्र एव देवता, इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथिवीस्थानो वायु र्वेन्द्रोऽन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः ॥

॥ निरु० अ० ७ । खं. ५ ॥

है अतः दूत है। होम योग्य पदार्थों को अन्तरिक्ष और आदित्य लोक में पहुंचाने के कारण अग्नि का नाम हव्यवाट् है हव्यम् वहतीति हव्यवाट् तम्। इस प्रकार के अग्नि को (पुरोदधे) ईश्वर आगे स्थापित करता है उपब्रुवे का यह अर्थ है कि मैं ईश्वर मनुष्यों के उपदेशक करता हूं किसलिए कि 'इह देवान् आसादयतात्' वेदोक्त पृथिव्यादी ३३ देवों को यह अग्नि हुतद्रव्यों को पहुचावे ॥४६६॥

४२४ होता हुत द्रव्य के लेनेवाला (वश्ववेदा) विद्युद्रूप हो सर्वत्र व्याप्त इस यज्ञ को (सुक्रतुम) शोभन कर्ता और दूत अग्नि को यज्ञ में यजमानादि हम सब (वरण) स्थापित करते हैं ॥४३७॥

४२५ अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वसु (८) रुद्र(११ आहिदत्य (१२) मरुत् बृहस्पति, और इन्द्र, ये सब दिव्य गुण होनेके कारण देवता कहाते हैं ॥४२५॥

४२६ निरुक्त कार यास्क मुनि मुख्य देवता तीन ही मानते हैं । पृथिवी का देवता अग्नि १ वायु और इन्द्र अन्तरिक्ष का देवता २ और सूर्य द्युलोक का देवता है ॥ इन तीनों के अन्तर्गत अन्य सब उपर्युक्त देवता आ जाते हैं

(देव शब्द का अर्थ)

४२८ देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति

निरु. अ. ७ । खं. १५ ॥

(शतपथोक्त कूर्म शब्द का अर्थ)

४२९ स यत् कूर्मोनाम । एतद्वै रूपङ्कृत्वा प्रजापतिः प्रजा

असृजत, यदसृजताकरोत् तस्मात् कूर्मः ॥

शतपथ काण्ड ७ अ. ५ प्रपा. ४

४३० कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. । कां. ७ । अ. ५ प्र. ४

---

४२७ देवोदानाद्वा दीपन द्वा द्योतन द्वा द्युस्थानो भवतीतिवा॥ नि । अ ७ खं. १५। देवो दानाद्वा०, "यत्स्वत्व निवृत्ति पूर्वक परसत्वोपादानं तद् दानं भवति दीपनं प्रकाशनम् । द्योतनमुपदेशादि करूच, स्थाने तथा द्यौः किरणा आदित्यरश्मयः प्राणः सूर्यादयोवा स्थानं स्थित्यर्थं यस्य सद्यु स्थानः॥" ऋ० वेदादिभाष्यभूमिका । वेदविषयविचार विषयः देव दाने देनेसे होता है। जोस्वत्व निवृत्ति पूर्वक अर्थात् जिसमें अपना स्वत्व हक नहो ऐसा दूसरे से स्वत्व पदार्थ ग्रहण करना दान कहाता है दीपन का अर्थ प्रकाश है। द्योतन का अर्थ उपदेश आदि। द्युस्थान का अर्थ सूर्य किरणों अथवा प्राण सूर्यादि स्थान स्थित्यर्थ हैं जिस के वह द्युस्थान कहाता है।

इति कूर्मोपधाने कूर्म सञ्ज्ञकाग्नेराधानविषय-

स्तथैव यज्ञमाहात्म्यविषयश्च समाप्तः ॥

यह कूर्मोपधान अर्थात् कूर्म नाम की अग्नि के स्थापन का विषय और यज्ञ के माहात्म्य का विषय समाप्त हुआ

(प्रकृति से जगद्रचन का कर्ता ईश्वर है)

४३१ ततो देवासुरपितॄन्, मनुष्यांश्च चतुष्टयम्
सिसृक्षुर्भगवानीशः स्वात्मानमयोजयत् ॥१॥
४३२ युक्तात्मानस्तमोमात्रा, ह्युद्रिक्ताभूत् प्रजायते ।
ततोऽस्य जघनात् पूर्वं, असुरा जज्ञिरे सुताः ॥२॥
४३३ रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा, तनुमन्यो ततोऽसृजत् ।
ततोस्य जज्ञिरे पुत्रा, मनुष्या रजसावृताः ॥३॥

४२८ 'प्रजापति, शब्द के दो अर्थ हैं । प्रजापतिश्चरति इत्यादि मन्त्रों के प्रमाण से प्रजापतिका अर्थ प्रजापालक ईश्वर है । यही प्रजापति ईश्वर जब सृष्टि रचता है तब कूर्म नाम से कहा जाता है । कूर्म अर्थात् क्रियात्मक प्रकृति सहित ईश्वर इसमें प्रमाण यत्तत् कारण मव्यक्तम्०,, मनु, अ० १ श्लोक० है

४२९ शतपथ के ७ वें काण्ड में 'कूर्मो वै वृषा योषाऽषाढा,' 'कूर्मः शिरः,, कूर्मो वै प्राणा,, इन प्रमाणों से प्रजापति का दूसरा अर्थ देहधारी पुरुष ब्रह्मा है । शतपथ के उपर्युक्त प्रमाणों से कूर्म शब्द का अर्थ सृष्टिकर्ता ईश्वर और ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादि सम्पन्न चतुर्वेदज्ञ देहधारी ब्रह्मा है । ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा आदि पुत्रों का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण में है । प्रकृति के अंश से उत्पन्न अहङ्कार का भी नाम ब्रह्मा है ॥

शतपथकार कूर्म को ही कश्यप कहते हैं । कश्यप के दो अर्थ हैं । एक सर्व द्रष्टा ईश्वर और दूसरा कूर्म्म ब्रह्मा ॥

४३० अनन्तर देव असुर पितर और मनुष्यों को सर्जन की इच्छा करता हुआ

४३१ भगवान ईश उस ओर अपने आपको नियोजित किया ॥१॥ जब युक्तात्मा ब्रह्मा की तमोमात्रा प्रकट हुई तब उस ब्रह्मा के जघन से प्रथम असुरपुत्र उत्पन्न हुवे ॥२॥ ४३२

४३४ सत्वमात्रात्मिकां देव, स्तनुमन्यां गृहीतवान् ।
ततोऽस्य मुखतो देवी, दीव्यतः सम्प्रजज्ञिरे ॥४॥

४३५ सत्वमात्रात्मिकामेव, ततोऽन्यां जगृहे तनूम् ।
पितृवन्मन्यमानस्य, पितरः सम्प्रजज्ञिरे ॥५॥

४३६ न त्वावां अन्यो दिव्यो पार्थिवो न जातो न जनिष्यते॥

(कूर्म प्र. अ. ७ । पूर्वार्द्ध ॥)

प्रयोजनवशाद् विष्णु, रसावेव तु मूर्तिमान् ॥
(कूर्म भगवान कृष्णने वेदों का उद्धार किया ।)

---

४३३ ब्रह्मा ने अपनी रजोमात्रा से अन्य रजोगुण युक्त शरीर को रचा, उस रजोमात्रासे रजोगुणमनुष्य पुत्र उत्पन्न हुवे ॥३॥

४३४ इसी प्रकार सत्व मात्रा वाले अन्य शरीर को ब्रह्माने ग्रहण किया उसमें क्रीड़ा करते हुए उस ब्रह्माने अपने मुख मुख्यसामर्थ्य से देवी को उत्पन्न किया ।

४३५ ऐसे ही पिता सदृश मानने योग्य ब्रह्माने पिताओं को उत्पन्न किया ॥५॥ (टि॰)

४३६ परमात्मा के सदृश न कोई पदार्थ है, न हुआ और न होगा ॥

टि॰ कूर्मपुराण के ये उपर्युक्त श्लोकआलङ्कारिक हैं, वास्तव में प्रकृतिके सत्व रजस्, तमस्, ये तीन गुण हैं, इन तीनों गुणों वाली प्रकृति से परमात्मा जगत् की रचना करता है (लेखक)

(ईश्वर का विषय)

४३७ न, तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकीज्ञान बलक्रियाच॥ श्वे० अ.६। मं ८

४३८ जन्माद्यस्य यतः॥ वेदान्त द०। अ०१। सू०२॥

४३९ दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
ह्यप्राणः सुमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः॥ मुण्ड २।१।२

४४० प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्ग. । पत्ति : ॥ साङ्ख्यद. अ० ५। सू० ८॥

---

४३७ कारण तीन प्रकार के हैं।१ समवायी, २ असमवायी, ३ निमित्त, इन्हीं को उपादान, निमित्त, और साधारण नाम से भी कहते हैं। ईश्वर का कोई तद्रूप कार्य नहीं और न करण (साधन) है इससे ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु मुख्य निमित्त कारण है। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने आप स्वयं बने नहीं वस्तु. रूपान्तर में करदे,, ॥४४९।

४३८ (अस्य) इस जगत की [यतः] जिससे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हो वही ब्रह्म है॥

४३९ परमात्मा (दिव्यः) प्रकाश स्वरूप (अमूर्तः) अमूर्त जगत के बाहर और जगतके भीतर व्यापक जन्म और प्राण रहित श्वास प्रश्वास शरीर और मनके सम्बन्ध रहित, प्रकाश स्वरूप नाश रहित प्रकृतिसे परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर पर अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है।

४४० यदि पुरुष को प्रधान शक्ति का योग हो तो पुरुष में सङ्गात्ती हो जावे जैसे

४४१ सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्य्यम् ॥ सा. द. अ० ५। सू० ९॥

(ब्रह्मा की उत्पत्ति आदि)

४४२ ब्रह्म ह वै ब्राह्मणं पुष्करे ससृजे । स खलु ब्रह्मासृष्ट श्चिन्तामापेदे । केनाहमेकेनाक्षरेण सर्वांश्च कामान् सर्वांश्च लोकान् सर्वांश्च वेदान् सर्वांश्च यज्ञान् सर्वांश्च व्युष्टीः सर्वाणि भूतानि स्थावरजङ्गमान्यनुभवेयमिति॥" स ब्रह्मचर्यमचरत् स ओमित्येतदक्षरमपश्यत् । (गोपथ ब्रा० । प्रपा०१। ब्रा० १६)

प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्य रूप में परिणत हुई है वैसे ही परमेश्वर भी स्थूल हो जाय अतः ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं यह कपिल मुनिका सिद्धान्त है ॥ ईश्वर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण भी नहीं यह 'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते०, इस श्वेताश्व रोपनिषद् के प्रमाण से सिद्ध है।

४४१ यदि सत्ता मात्र से कहें तो सारे संसार को ईश्वर मानना पडे ॥

व्याख्या प्रकृति [माद्दा] जड [ज्ञानशून्य] और जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों चेतन हैं यह सिद्धान्त न रहेगा ।

४४२ वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनिने लिखा है योनिज और अयोनिज भेद से शरीर दो प्रकार के होते हैं । प्रथम सृष्यारम्भ में अयोनि शरीर हुए तत्पश्चात् योनिज शरीर अर्थात् आरम्भमें अमैथुनी सृष्टि तत्पश्चात् मैथुनी सृष्टि चलती है । ब्रह्मा तक अमैथुनी सृष्टि हुई पुनः मैथुनी सृष्टि ।

॥ तत्र शरीर द्विविधं योनिजमयोनिज ञ्च ॥ वै० द. । अ. ४ आ. २ सू ३ अयोनिज शरीर वालों का पूर्वादि दिशा और देश नियत नहीं होता । अयोनिज शरीर वाले जीव धर्मविशेष से उत्पन्न होते हैं ॥ धर्म विशेषाच्च॥ वै०अ ४ आ. २ सू. ८ स्वायम्भव मनु में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, यह त्रिमूर्तियें, ब्रह्मादि शब्द उपाधि वाचक देहधारियों के नाम हैं ॥

ब्रह्मा का विषय

४४३ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव, विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता०) मुण्डक. । खं.१ मं १)

४४४ यो वै ब्रह्माणं विदधाति, पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मैत ॐ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये ॥ श्वे. । अ० ६ । मं १८ ॥

४४५ अग्निवायुरविभ्यस्तु, त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिध्यर्थमृग्यजु : सामलक्षणम् ॥मं० । अ० १ श्लो २३ ॥

---

४४३ उस पूर्ण पुरुष ब्रह्मने अन्यों के सहित देहधारी प्रजापति ब्रह्मा को पुष्कर अन्तरिक्ष में अर्थात् अमैथुनी सृष्टिमें उत्पन्न किया था। ब्रह्मा को चिन्ताहुयी कि मैं किस एक अक्षर से सब कामनाओं सब लोकों सब वेदों,सब यज्ञो सब व्युष्टियों और सब भूत प्राणियों तथा स्थावर वृक्षादि जङ्गलों चलने फिरने वाले मनुष्यादि को जानु अर्थात्, अनुभव करू। ब्रह्मा ने ब्रह्मचर्य धारण किया और ओ३म् इस परमात्मा के वाचक मन्त्रों के अर्थ विचारसे उन सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द ईश्वर को सम्यक् अनुभव किया, परमात्मा के जानलेने पर अन्य सभी कुछ जान लिया ॥

४४४ देहधारी देवों में सब से पहला देव ब्रह्मा था० । इसी का नाम कूर्म प्रजापति भी हैं ।

पुष्कर इत्यन्त रिक्ष नामसु पठितं निघण्टौ ।

पुष्कर का अर्थ अन्तरिक्ष है, सृष्ट्यारम्भ में जो अन्तरिक्षा उचा स्थान प्रथम शीतल हुआ होगा उसी स्थान में अमैथुनी सृष्टिहुई उस अमैथुनी सृष्टिमें ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी ।

४४६ ब्रह्मा देवानामाद्यो नारायणो गुरुः ॥
स च ब्रह्मा समुत्पन्नः सोपि सप्तानसृजत् प्रभुः ॥
वरा. पु. अ. १ । ९ ।

४४७ ब्रह्मा नारायणाख्योऽयं, कल्पादौचाऽभवत्पुरा ॥ व० पु. अ. २ श्लो. २१ ॥

---

४४५ ब्रहाने अग्नि वायु आदित्य और अङ्गिरा से वेदों को पढाया किस प्रयोजन के लिए [यज्ञ सिद्धार्थम] यज्ञ पदेनात्र मनुष्य कल्याण हेतुकं सर्वकृत्य ग्राह्यम, यहां यज्ञ शब्द से मनुष्य के कल्याणकारी सब कृत्युका ग्रहण है। यदि अग्नि का अर्थ भौतिक अग्नि, और ऐसे ही वायु का भौतिक वायु भौतिक सूर्य लिया जाय तो ऋषिदयानन्द का कथन है कि जडे ज्ञानासम्भवत,,अर्थात जडमें ज्ञान का होना असम्भव है अतः अग्न्यादिपदों से देहधारियों का ही ग्रहण उचित है ॥

(अथीद्वितीयोऽर्थः) स परमेश्वर (अग्निवायुरविभ्यः) पुर्वोक्तागन्यादिऋिगणेभ्यो गणत्रयमालो थाग्न्यादि गुण कर्म स्वाभावान् सम्यग बुध्वा ल्यब लोपेत्र पञ्चमी (सनातनम्)प्रवाहेण सर्वक ल्पेषु वर्तमानान (त्रयम)त्रीन (ऋग्यज सामलक्षणम् ऋगादिनाम्ना प्रसिद्धान (ब्रह्म) वेदान् (यज्ञसिर्थम) विधियज्ञादि कर्मशि वेदो प्रकारेणसम्यग विज्ञाय ब्राह्मणद्वय कुर्युर्यनेष्ट सिद्धिस्तेषां स्यादेतदर्थम् (दुदोह) शब्दार्थसम्बन्धैः प्रपूरितवान ।प्रतिकल्पे चैतदेवं बोध्यम (स')ग्रयं सनातन ऋग्यजु सामलक्षणम् वेदे यज्ञसिद्धयर्थमग्निवायु सूर्याणांगुणकर्मा श्रयेण जगति निर्मितवान ॥,,॥ ऋग यजु साम इन सनातन तीन वेदों को यज्ञ की सिद्धिके लिए अग्नि वायु, और सूर्य के गुण कर्मों का आश्रय लेकर जगत् में क्रमसे रचा ॥ म० अ० १ । श्लो० २३ ॥

४४६ देवोंमें ब्रह्मा जिसका दूसरा नाम नारायण है वही आदिदेव गुरु हुआ ॥ ब्रह्मा ने अन्य सात। प्रजापतियों को उत्पन्न किया था ॥ ४५८ ॥

४४७ नारायण जिनका नाम है ऐसा ब्रह्मा कल्पकी आदि में उत्पन्न हुआ था ॥४५९॥

(ब्रह्मा और सूर्य कूर्म हैं)

४४८ एष कूर्मो मयाख्यातो, भारते भगवानिह ।
नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा, यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ स्कन्द पु० । प्रभासखं. । अ० ११ ॥ श्लो. २८ ॥

४४९ मनोर्नाम मनुत्वञ्च, यदेतत् पठ्यते किल ।
प्रयोजन वशाद् विष्णु, रसावेवतु मूर्तिमान् ॥

(वेदों का उद्धार किया)

४५० यथैवोद्धृतवान् वेदान् मत्स्यरूपेण केशवः ।
क्षीराम्बुधौ मथ्यमाने, मन्दरं धृतवान् प्रभुः ॥

---

४४८ इह भारते एष भगवान कूर्म मयाऽऽख्यात । हि । एषः कूर्मः) अचिन्त्यात्मा, नारायणः यत्र, यस्मिन् कूर्म सर्व प्रतिष्ठितम ॥ भारतवर्ष में भगवान कूर्म को मैंने कहा जो नारायण और अचिन्तात्मा है जिसमें सब जगत स्थित है ॥४६०॥ यहां कूर्म का अर्थ सूर्य ब्रह्मा और ईश्वर है ॥४४५॥

४४९ मनु का अर्थ [मनुत्व] मनुष्य होना है। मनु से ही मानव सृष्टि हुई। प्रयोजन आपड़नेपर यही मनु विष्णु सदृश मूर्तिमान् होकर विष्णु भगवान् का काम करते हैं।

(व्याख्या) यहां कूर्म का अर्थ सूर्य है, सूर्य जड अग्निमय गोला है परन्तु स्कन्द पुराण नारायण और अचिन्यात्मा विशेषण से सूर्य को ही ईश्वर मानता है यह चिन्त्य है क्योंकि" योसावादित्ये पुरुषः सोऽवहम्" य० । अ० ४० । मं ''' । यहां आदित्य (सूर्य) में ईश्वर की व्यापकता का उपदेश है। यदि सूर्य ही ईश्वर होवे तो यह उपदेश व्यर्थ होजायगा। सूर्य के अतिरिक्त कूर्म का अर्थ ब्रह्मा और ईश्वर भी है।

४५१ तद्वच्च कूर्मरूपी स्याद् द्वितीयां पश्य वैष्णवीम् ॥४४॥
यथा रसातलात् क्ष्माञ्च, धृतवान् पुरुषोत्तमः ।
वराहरूपी तद्वच्च, तृतीयां पश्य वैष्णवीम् ॥४६॥

---

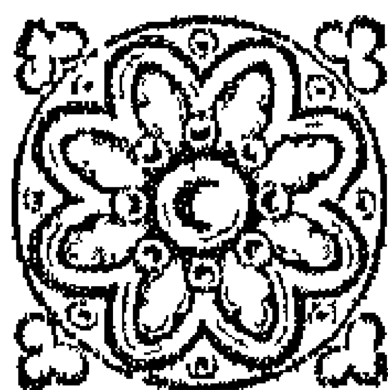
४५० भगवान् कृष्ण ने मत्स्य रूपसे वेदोपदेशका जगत में प्रचार किया था और समुद्र के मथन समय में मन्दर पर्वत को धारण किया था। कृष्ण सदृश मनुने विष्णु समान अपना गुण कर्म स्वभाव बना जगत् और वेदोंका उद्धार किया ॥ ४४ ॥

४५१ जैसे रसातल से भगवान् कृष्णने पृथ्वी को स्वाधीन कर प्रजा की रक्षा की थी वैसे ही मनु ने वराह समान बली होकर पृथ्वी का उद्धार किया था यह मनु की तृतीया वैष्णवी है ।

इतिसृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयः

समाप्तः ॥

यह सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और
प्रलय का विषय समाप्त हुआ ॥



(अथर्वर्षिः)

४५२ अथर्वा। (चंद्रमाः) जाङ्गिडः। अनुष्टुप्। निराट् प्रस्तार पङ्क्तिः॥ अ० कां. २ सू. ३ मं. १॥

४५३ १--८ अथर्वा सोमः। अ० कां. ३ सू० ४ मं. १॥

४५४ तमथर्वाणं ब्रह्माब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति (गोपथ ब्रा०। पूर्वभाग। प्रपा० १ ब्रा. ४)

४५५ ये, अथर्वाणो येऽथर्वाण स्तद् भेषजं यद्भेषजं तदमृतं यदमृतं तद् ब्रह्म, स वा एष पूर्वेषा मृत्विजामर्द्धभागस्यार्द्धमितरेषामर्द्धं ब्रह्मण इति॥ गो० ब्रा० पू० प्रपा० ३। ब्रा० ४॥

---

४५२ अथर्ववेद काण्ड (२) (सू ३) और अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त ४ मन्त्र एक--८ तक का मन्त्र द्रष्टा ऋषि अथर्वा है।

४५३ अथर्वा का दूसरानाम चन्द्रमा है। अथर्व काण्ड ३ सू ४ मन्त्र १--८ पर्यन्त सोम देवता और अथर्वा ऋषि हुवा है। गोपथ ब्राह्मण के मनन करने से ज्ञात होता है कि अथर्वा आयुर्वेद विद्या में पारङ्गत था और विशेष कर अश्व विद्या का अच्छा ज्ञाता था। मुण्डकोपनिषद् खण्ड (१) मंत्र १ में अथर्वा को ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है। अथर्वा ही कश्यप कूर्म है क्योंकि प्रजापति की सृष्टि को रचकर उसका पालन किया था।

४५४ गोपथ में लिखा है कि ब्रह्माने अथर्वा से कहाकि प्रजापति की प्रजाओं से उत्पन्न करके पालन कर॥ "सृष्ट्वा का अर्थ उत्पन्न करके है। उत्पन्न करने का तात्पर्य जीवों के पूर्व कल्प के सञ्चित उन उन के गुण कर्म स्वभावानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण का स्थापन करना है॥

४५६ अथर्वा । कश्यपः ॥ अथर्व० काण्ड ८ सू० ८ से २६
४५७ मन्त्रोंका ऋषि कश्यपः (अथर्वाचार्य्यः) ॥ अथर्व०
४५८ काण्ड १२ सू० ५ मं० १-७२ तक ऋषि है कश्यपो
वै कूर्मः ॥ श० प० कां० ७ अ० ५ प्रपा० ४॥

(अर्थ का वेश)

४५९ यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ॥ अ० ८० । १६॥
४६० विचारी ह वै कावन्धिः ववन्धस्याथर्वणस्य पुत्रोमेधावी
मीमांसको अनूचान आस ॥गो० । पू० । प्रपा० २
ब्रा० १. ॥

४५५ जो संशय निवृत्त करने में समर्थ हो जो अहिंसाव्रतधारीहो उसका नाम अथर्वा है ऐसा अथर्वा ब्रह्मा का पुत्र इस ब्रह्म कल्प में हुवा है। ये, अथर्वाणः (जो अथर्वा के वंशज हैं) (तत्) तेषां वचनम् (भेषजम्) भेषज सदृशम् उनका उपदेश, वचन औषध समान गुणकारक सार रूप है वह सार रूप उपदेश और वचन (अमृतम्) अमृत तुल्य है (अमृतम ब्रह्म) वह अमृत ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला है। निश्चय अथर्वा प्राचीन और नूतन ऋत्विजों के गुण कर्म स्वभाव में आधे का आधा था और अपने पिता ब्रह्मा के भी गुण कर्म और स्वभाव में आधा ब्रह्मा था।

४५६ अथर्वा--कश्यप है ॥

४५७ अथर्वा = कश्यपाचार्य है ॥

४५८ कश्यप कूर्म है ॥

(व्याख्या) स्वायम्भुव मनु में कश्यप कूर्म से कूर्म वंश की लता विस्तृत हुई तबसे अद्यावधि यह वंश चला आरहा है।

४५९ (अथर्वा) (पितामनुः) पितामनु और दध्यङ् ये सब (यां धियम्) जिस कर्म वा बुद्धिको (अत्नत) लोकोपकारार्थ विस्तारित करते हैं उसका अनुकरण सब कोई करे ॥

(परा और अपराविद्या)

४६१ तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो-
वदन्ति । तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्प व्याकरणं छन्दो ज्योतिषमिति, अथ परा-
यया तदक्षरमधिगम्यते ।

॥ मुण्डकोपनि० खं० १ मं० ५ ॥

यहां अथर्वा और दध्यङ् ये दो नाम ऋषि आचार्य आदि के हैं॥

४६० ब्रह्मा का पुत्र अथर्वा और अथर्वा का पुत्र कबन्ध और कबन्ध का काबन्धि बड़ा मेधावी बुद्धिमान् आशु बुद्धि वाला और पूर्ण मीमांसक था।

व्याख्या-काबन्धि जैसा प्रतिष्ठित था वैसा उसके पास मानुष धन न था। एक समय उसकी माता ने उससे कहा कि 'ते' एव, 'एतत्' उन सबोंने इस [अन्नम्] अन्न विषय की···· चर्चा की थी। वे इस अन्न का सङ्ग्रह इन्हीं देशों अर्थात् कुरु, पञ्चाल, अङ्ग,मगध, काशी, कौशल्य, शाल्व,मत्स्य, शवस,उशीनर, और उत्तरीय देशों से करके सुखी रहते हैं परन्तु हम सब तेरे ही (अतिमान) से उस अन्न के लिये तरस रही हैं, अतः हे वत्स "वाहनमन्विच्छ" यह सवारी ले और तू भी प्रयत्न कर। माता के इस वचन को सुन अथर्वा का पौत्र काबन्धि यानारूढ़ हो सार्वभौम राजा मान्धाता और यौवनाश्व के पास पहुंचा वहां उनके यज्ञमें निकाले हुवे सोमरस का पान किया यह सोमरस मूल्यवान् होता है उसके पान से मस्तिष्क बहुत ही अच्छा रहता है ॥४७५॥

सः स्वेन मानेन मानुषं वित्तं नेयाय। मातोवाच। त एवैतदन्नमवोचस्त इममेषु कुरुपञ्चालेषु अङ्गमगधेषु काशि कौशिल्येषु शाल्वमत्स्येषु शवस उशीनरेषु उदीच्येष्वन्नमदन्तीत्यथ वयं तवैवातिमानेनानाऽद्यास्मो वत्स! वाहनमन्विच्छेति। समन्धातुर्यौवनाश्वस्य सार्वभौमस्य राज्ञः सोममसुतमाजगाम, स सदोऽनु प्रविश्यार्त्विजश्च यजमानञ्चाऽऽमन्त्रयामास ॥

४६२ तद्धैतत् ब्रह्मा प्रजापतये उवाच । प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजाभ्यः ॥

॥छा० प्र० ८ । खं० १५ ॥

(सृष्टि की विचित्रता के कारण कर्म)

४६३ कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ॥ सां. अ० ६ । सू०४१॥

कावन्धि उसी समय महाराज मान्धाता की सभा में जाकर यजमान सहित अन्य सब ऋत्विजों को आमन्त्रित किया ॥

तात्पर्य–आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ इतिमनुः अर्थात् मनुष्य मृत्यु पर्यन्त लक्ष्मी के लिये प्रयत्न करता रहे इसको दुर्लभ न समझे

४६१ मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि शौनकसे अङ्गिराने कहा कि दो विद्यायें हैं। एक का नाम अपरा और दूसरी का नाम परा है। दोनों में से अपरा विद्या-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, एवम् शिक्षा कल्प व्याकरण छन्द और ज्योतिष है। पराविद्या वह है कि जिससे उस अविनाशी परमेश्वर का ज्ञान होता है ॥४७७॥

४६२ ब्रह्मा अपरा और परा दोनों विद्यायें जानते थे, अपरा विद्या से तात्पर्य व्यावहारिक विद्या और परा से तात्पर्य अध्यात्म विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या है। काबन्धि अथर्वा का पौत्र था और अथर्वा ब्रह्मा का जेष्ठ पुत्र था। इस पवित्र, वंश में अपरा और परा दोनों विद्याओं का प्रचार था। छान्दोग्य में लिखा है कि इस ज्ञान को ब्रह्माने प्रजापति को उपदेश किया और प्रजापतिने मनु को और मनुने प्रजाओं को ॥४७८॥

४६३ कर्मों की विचित्रता से सृष्टि की विचित्रता होती है ॥१४॥

अपरा और परा दोनों प्रकार की विद्याओं को जानकर प्राचीन काल में ऋषि सन्तान शुभ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करती थी। भगवान् कपिल स्वरचित साङ्ख्यशास्त्र में लिखते हैं कि परमात्मा की इस अद्भुत और विचित्र सृष्टि का कारण जीवों के शुभाशुभकर्म हैं ॥४७९॥

४६४ ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने, क्षिप्तो महासङ्कटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके, भिक्षाशने सेवते ।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने, तस्मै नमः कर्मणे ॥
इति भर्तृहरिः । नीतिशतके

(ब्रह्माजीका देवों से कथन)

४६५ पार्थिवे भारते वंशे, पूर्वमेव विजानता । पृथिव्यां संभ्रममिमं, श्रूयतां यन्मया कृतम् ॥

४६६ समुद्रेऽहं पुरा पूर्वे, वेलामासाद्य पश्चिमाम् ॥१॥ अस्ते सार्द्धं तनूजेन, कश्यपेन महात्मना ॥२॥
हरिवंश पु० । अ० ५३ । श्लो० १४ । १५ ॥

---

४६४ महाराज भर्तृहरि भी कर्मों की महिमा इस प्रकार वर्णन करते हैं कि जैसे कुम्भकार घटादि निर्माण में नियुक्त हुआ रात्रिन्दिव अपने कर्म में संलग्न रहता है, इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड भाण्ड रूपी उदर के सुधार में ब्रह्मा जी भी लगे रहते हैं सो यह कर्मों की महिमा है। विष्णु जी को देखिये कि महासङ्कट दशावतारों के बिना निवृत्ति (छुटकारा) नहीं । अवश होकर अवतार रूपी कर्म करना ही पड़ता है। एवम् तपस्वी महादेव जी को देखिये कि उनको क्या कमी थी फिर भी वे हाथ में खप्पर लेकर भिक्षा माँग भोजन करते हैं । सूर्य नित्य ही अपनी कीली में घूमता हुआ आकाश में भ्रमण करता है। यह सब कर्मों की ही महिमा है ॥ इन कर्मों का फल दाता परमेश्वर है ब्रह्मा का भी नाम सृष्टि रचना करने से कूर्म है ॥

४६५ ब्रह्मा जी देवों से कहते हैं कि पृथ्वी पर सब ओर पर्यटन करने से भरत कुलोत्पन्न राज वंश को पहिले ही से मैं जानता हूं ॥१४॥

(ब्रह्मा के मरीचि आदि १० पुत्र)

४६७ अभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य, लोक सन्तान हेतवे: ॥२१॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च, दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥
(भागव० । स्कन्ध ३)

(ब्रह्मा के आङ्गिरादि पुत्र)

४६८ अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥
भा. । ३ । १२॥

४६६ हे देवो! किसी समय पूर्वीय समुद्र में पश्चिम दिशा के तटपर अपने पुत्र महात्मा कश्यप सहित मैं बैठा था ॥१५॥

(व्याख्या) यहां ब्रह्मा ने कश्यप को अपना पुत्र कहा है और शतपथ ब्राह्मण काण्ड ७ अ० ५ प्रपा. ४ में "कश्यपो वै कूर्मः"॥ कश्यप ही कूर्म है ऐसा कहा है इसमें कूर्म वंश की उत्पत्ति स्पष्ट है॥ यहां हरिवंश पुराण ने कश्यप को ब्रह्मा का पुत्र लिखा है और शतपथ काण्ड ७ में कश्यप ही कूर्म माना है॥ एवम् ब्रह्मा के पुत्र कश्यप से कूर्म उत्पन्न हुवे थे अर्थात् कूर्म कश्यप के पुत्र थे और कश्यप ब्रह्मा के पुत्र थे इस प्रकार ब्रह्मा पौत्र (नाती) कूर्म से कूर्म वंश की उत्पत्ति हरिवंश पुराण मानता है ॥

४६७ भगवान् की सृष्टि का ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी ने प्रजा वृद्धयर्थ मरीचि आदि १० पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४८३॥

१ मरीचि २ अत्रि ३ अङ्गिरा ४ पुलस्त्य ५ पुलह ६ क्रतु ७ भृगु ८ वसिष्ठ ९ दक्ष और १० वें नारद ॥

वायुपुराण अ० ६१ में अङ्गिरा को अथर्वा का पुत्र लिखा है ॥ और मुण्डकोपनिषद् खण्ड (१) मन्त्र (१) में अथर्वा को ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है ॥

४६९ इच्छन्निन्द्रसमं पुत्रमभ्यादध्यादाङ्गिरा ऋषिः ।
अभूदिन्द्रः स्वयन्तस्य तनयः सव्यनामकः । ॥१॥
माधव भट्ट रचितऋगर्थदीपिका अ० ७ । अष्ट० ५ श्लो. ६॥

४७० त्रयस्त्वाङ्गिरसः पुत्रा, लोके सर्वत्र विश्रुताः ।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च, सम्वर्तश्च धृतव्रतः ॥६६॥
(महाभा० । आदिप० । अ० ६६)

(ब्रह्मा का पुत्र इन्द्र कर्म से क्षत्रिय हुआ था)

४७१ इन्द्रो ह ब्रह्मणाः पुत्रः कर्मणा क्षत्रियोऽभवत् ॥
महाभा० शान्तिपर्वान्तर्गत राजधर्म अ० २२ श्लो ११॥

४६८ ब्रह्मा जी के मुख (मुख्य सामर्थ्य) से अङ्गिरा और आंख अर्थात् नेत्रसम तेज अत्रि उत्पन्न हुवे ॥१२॥

४६९ ब्रह्मा का पुत्र अङ्गिरा और अङ्गिरा का पुत्र इन्द्र था । अङ्गिरा ने इन्द्र समान पुत्र की कामना की अतः अङ्गिराके इन्द्र स्वयम् सव्य नाम का पुत्र उत्पन्न हुवा ॥४८५॥

४७० लोक में अङ्गिरा के प्रसिद्ध पुत्र तीन १ बृहस्पति २ उतथ्य ३ सम्वर्त । इस पक्ष में इन्द्र ब्रह्मा के पौत्र होते है महाभा शा० प०. राजधर्म अ० २२ श्लो ११ में इन्द्र ब्रह्मा का पुत्र भी लिखा है जैसे

४७१ ब्रह्मा का पुत्र इन्द्र कर्म से क्षत्रिय हुआ था ॥११॥

ब्रह्मा आदि देव है । वह इस ब्राह्मकल्प के आरम्भ में सब वर्णाश्रम सम्बन्धी धर्म का (कर्ता) प्रवर्तक व प्रचारक उत्पन्न हुवा । सर्व साधारण प्राणि मात्र के कल्पान्तर सम्बन्धी शुद्ध संस्कारों से प्रकट हुई विद्या और बुद्धि

(कश्यप और इन्द्र की उत्पत्ति)

४७२ यासु जातः कश्यपः । यास्विन्द्रः ॥ कृ० तै० सं० कां० ५ । अनु १७ प्र० ६ मं० १

४७३ यास्वप्सु कश्यपो जातः । यास्वप्सु, इन्द्र इति सायणाभाष्यम्

(इन्द्रः प्रजापते र्ज्येष्ठपुत्रः) तद्यथा- गोपथे

४७४ अथ हैतं प्रजापति रिन्द्रायज्येष्ठाय पुत्रायैतत् सवनं निरमिमत ॥ गो० । उत्तरभा० प्रपा० ३ ब्रा० २३ ॥

के प्रताप से कूपसे अन्धे के तुल्य रक्षा करनेवाले वेदवेत्ता अग्नि आदि ऋषियों के बीच मुख्य सर्व वेदपारंगत धर्म का पूर्ण ज्ञान वेद और तप सम्बन्धी तेज और पर वैराग्यादि ऐश्वर्य सम्पत्ति से बढ़े हुए ब्रह्मा नामी प्रसिद्ध हुवे इन्हीं का नाम कूर्म प्रजापति भी है। परमात्मा की स्वाभाविक प्रेरणा से स्त्री पुरुष के मैथुन संयोग बिना ही उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी सब विद्याओं की जिसमें स्थिति हो उस ब्रह्म ज्ञान के साधन उपाय रूप वेदान्त विद्या का सब पुत्रों में श्रेष्ठ शुद्धान्तः करण योग्य अप्रमादी शिष्य व ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को उपदेश किया था। ब्रह्मा का पुत्र अथर्वा, अथर्वा का कबन्ध और कबन्ध का काबन्धि इस प्रकार ब्रह्मा का वंश गोपथ ब्राह्मण में लिखा है और हरि वंश पुराण अ० ५३ श्लोक १४ में ब्रह्मा ने कश्यप को अपना पुत्र कहा है और शतपथ ब्राह्मण काण्ड ७ अ० ५ प्रपा. ४ में " कश्यपो वै कूर्मः " लिखा है कि कश्यप और कूर्म एक ही अर्थ के वाचक हैं इस सङ्गति से ब्रह्मा से ही कूर्म्म वंश का आरम्भ होता है ॥

४७२ स्त्री और पुंस्त्व शक्ति से मैथुनी सृष्टि में कश्यप और इन्द्र उत्पन्न हुवे थे।

४७३ अप्तत्व (पांच पृथिव्यादि धातुओं) से जीव सहित कश्यप और इन्द्र की उत्पत्ति हुई

(प्रजापति का इतिहास)

४७५ वैश्वदेवेन प्रजापतिः प्रजाअसृजत, ता सृष्टा अप्रसूता वरुणस्य, यवानजक्षुः। ताः वरुणो वरुणपाशैः प्रत्यबध्नात्, ताः प्रजाः प्रजापतिंपितरमेत्योपावदन्। उप तं यज्ञ क्रतुं जानीहि, येनेष्ट्वा वरुणमप्रीणात स प्रीतो वरुणो वरुणपाशेभ्यः सर्वस्मात पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्त इति। तत एतं प्रजापतिं यज्ञक्रतुमपश्यत्। वरुणप्रघासं तमाहरत। तेनायजत। तेनेष्ट्वा वरुणमप्रीणात्। स प्रीतो वरुण पाशेभ्यः सर्वस्मात पाप्मन प्रजाः प्रामुञ्चत। प्र ह वा एतस्य प्रजा वरुण पाशेभ्यः सर्वस्माच्च पाप्मनो मुच्यन्ते। य एवं वेद॥ गो. ब्रा.। उत्तरभा.। प्रपा. ५। ब्रा. २१॥

(इन्द्र की भार्या पौलोमी और उसके तीन पुत्र)

४७६ पुरुष हवै नारायणं प्रजापतिरुवाच॥गो० पू० प्र० ५ ब्रा० ११॥ शक्रस्य भार्या पौलोमी, तस्या जातास्त्रयः सुताः। मीढुष ऋषभश्चैव, जयन्तश्च तथैवच॥१॥

---

४७४ प्रजापति का ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र था प्रजापति ने अपने इस ज्येष्ठ पुत्र का ब्रह्मचर्य धारण कराया था॥ ब्रह्मचर्य पुण्य है, ब्रह्मचर्य लौक्य अर्थात् लोक हितकारी है। ऐसा गोपथ में ब्रह्मचर्य का महत्व लिखा है "ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विराक्षति॥ अथर्व०॥ काण्ड ११। सू० ५। ब्रह्मचर्य रूपी तप से राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है

४७५ प्राचीन समय में इन्द्र के पिता प्रजापति ने वैश्व देवनामक यज्ञ से प्रजाओं को उत्पन्न किया था।

४७७ उरुक्रमस्य भार्याऽभूत्, कीर्ति नाम्नी ततोऽभवत ॥
बृहच्छोकस्ततो जातः, सौभगादिः क्रमेशावै ॥२॥
(इन्द्र इतिहास)

४७८ विश्वरूपं हित्वाष्ट्र मिन्द्रोहं स त्वष्टाहत पुत्रोऽभिचरणीय मपेन्द्रंसोम माहरत् । तस्येन्द्रो जज्ञिरे
(गो० उ० प्र० ५ ब्रा० ६)

४७९ उत्पन्न हुई प्रजाओं ने अपने छोटे पन में ही वरुण ने खेतके जवों को चर डाला इसलिये वरुण ने अपने पाशों (बन्धनों) से उन प्रजाओं को बांध डाला इतने में सब प्रजाएं मिलकर अपने पिता प्रजापति के पास जाकर बोली, पिता जी उस यज्ञ क्रतु को जानते हो, जिसके करने से वरुण की तृप्ति होती है, यज्ञ से प्रसन्न हुआ वरुण अपने वरुण पाशों से सभी अपराधों से प्रजाओं को मुक्त कर दिया । प्रजापति ने अपने प्रजापति यज्ञ क्रतु का देखा = जाना । उसका नाम वरुणप्रघास था । प्रजापति ने वरुण प्रघास नामक यज्ञ करके वरुण को तृप्त किया था । प्रसन्न हुवे वरुण ने कारागार से प्रजाओं को मुक्त कर दिया । सारांश यह कि वरुण प्रघास यज्ञ से वर्षा हुई जब की खेती वर्षा से अच्छी हो गयी जो (कृषि) खेती को अच्छा करना चाहे कि अन्न बहुतायत से उत्पन्न हो वह वरुण प्रघास यज्ञ करे । यह वरुण प्रघास यज्ञ आषाढ़ी पौर्णमासी को होता है । मानव गृह्य सूत्र में लिखा है कि " फाल्गुन्या माषाढ्यां कार्तिक्यां वा ॥" अर्थात् फाल्गुनी पौर्णमासी, आषाढ़ी पौर्णमासी और कार्तिकी पौर्णमासी ये चार ऋतु सन्धि की पौर्णमासी हैं, चार २ मास में पौर्णमासी को ये यज्ञ किये जाते हैं इसीसे इनको चातुर्मास्य पर्व कहा है । प्रजापति का यह सङ्क्षिप्त इतिहास है इन्हीं प्रजापति के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र हैं वेद में " तुवि कूर्मिन् " यह इन्द्र का विशेषण आया है, कूर्मिन् से व्याकरण में कूर्मी शब्द बना है । कूर्मी का अर्थ सायणादि भाष्य कारों ने 'अनेक विध कर्मा लिखा है । इन्द्र कूर्मी अर्थात् अनेक प्रकार के सङ्ग्राम (युद्ध) सम्बन्धी कर्मों का करने वाला होने से इन्द्र भी कूर्म था

४७९ "इन्द्रो विश्वस्य भूपतिः ॥" आश्व० । अ० ८ ॥
४८० ओकःसारी ह वेषामिन्द्रो भवति यथा गोः प्रज्ञातगोष्ठम्
(गो० उ० प्र० ६ ब्रा० ४)

(इन्द्र की स्त्री—इन्द्राणी के नाम)

४८१ पुलोमजाशचीन्द्राणी, नगरी त्वमरीत्वमरावती ।

प्रजापति पुरुष नारायण से बोला । यहां प्रजापति और पुरुष नारायण दोनों पृथक २ स्पष्ट लिखे हैं ॥

४७७ प्रजाओं का पति (स्वामी) प्रजापति कहाता है । प्रजापति का पुत्र इन्द्र था । इन्द्र की भार्या का नाम पौलोमी था, पौलोमी के तीन पुत्र थे । १ मीढुष २ ऋषभ ३ जयन्त । उरुकर्म की भार्या कीर्ति थी उससे बृहच्छोक और सौभागादि क्रम से हुए ॥

(व्याख्या) प्रजापति और इन्द्र शब्द उपाधिवाचक हैं ॥ इन्द्र को गोत्र परिवर्तन करने का अधिकार होता है । गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था में गोत्र परिवर्तन का अधिकार प्राचीन काल में रहता था, इसीसे इन्द्र का नाम गोत्र भित् है ॥

४७८ (अर्थः) विश्वरूप (विश्व का भूपति) मैं (त्वाष्ट्र) देहधारी त्वष्टा का पुत्र इन्द्र हूँ हतपुत्र त्वष्टा इन्द्र से छिपाकर अभिचरणीय सोमवल्ली के रस को हरलाया और पान किया उस हतपुत्र त्वष्टा के इन्द्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ 'देवशिल्पिन्यपि त्वष्टा' अमरकोष नानार्थवर्ग श्लो ३४॥ त्वष्टा का अर्थ देव (सूर्य) और शिल्पी (बढ़ई) दोनों हैं । इन्द्र के सोम को हरलिया था उस त्वष्टा के विश्वरूप इन्द्र पुत्र उत्पन्न हुआ ।

४७९ आश्वलायन गृह्य सूत्रमें लिखा है कि इन्द्र वह है जो विश्व का राजा होता है विश्व का अर्थ संसार है ॥

४८० इन स्तोताओं में से 'इन्द्र 'ओकः सारी" ओक का अर्थ स्थान है वह एक स्थान मे ही निवास कर समस्त प्रजापर शासन करता है 'देहली'. का नाम

हय उच्चैःश्रवाः सूतो मातलिर्नन्दनं वनम् ॥४४॥

४८२ स्यात् प्रासादो वैजयन्तः जयन्तः पाकशासनिः ॥

(अमर को. स्वर्ग व. कां. १ श्लो. ४५)

(इन्द्र के ३५ नाम)

४८३ १ इन्द्र २ मरुत्वान् ३ मघवा ४ विडौजाः ५ पाकशासनः ६ वृद्धश्रवाः ७ शुनासीर ८ पुरुहूत ९ पुरन्दर १० जिष्णु ११ लेखर्षभ १२ शक्र १३ शतमन्यु १४ दिवस्पति १५ सुत्रामा १६ गोत्रभित् १७ वज्री १८ वासव १९ वृत्रहा २० वृषा २१ वास्तोष्पति २२सुरपति २३ बलाराति २४ शचीपति २५ जम्भभेदी २६ हरिहय २७ स्वाराट् २८ नमुचिसूदन २९ शक्रनन्दन ३० प्रच्यवन ३१ तुराषाट् ३२ मेघवाहन ३३ आखण्डल, ३४ सहस्राक्ष ३५ ऋभुक्षाः ॥

अमर को. स्व. व. श्लो. १४

प्राचीन काल में 'इन्द्रप्रस्थ' था। इन्द्र की नगरी से उसकी उपमा दी गयी थीं और अब भी देहली (दिल्ली) का नाम संस्कृत के इतिहास में इन्द्रप्रस्थ हीं लिखा जाता है॥

४८१ इन्द्राणी के नाम—१पुलोमजा २ शची ३ इन्द्राणी ॥४४॥ इन्द्र पुरी का नाम अमरावती, । इन्द्र के घोड़े का नाम उच्चैः श्रवाः । इन्द्र के सारथी का नाम-मातलि था। इन्द्र के बगीचे का नाम नन्दन वन था॥

१— जयन्त और पाक शासनि ॥४९६॥

४८२ इन्द्र के प्रासाद (महल) का नाम वैजयन्त

(इन्द्र का इतिहास)

४८४ एतेन ह वा इन्द्रः सप्त स्वर्गांल्लोकानारोहत् ।

(गो० उ० प्र० ६ ब्रा० १०)

४८३ शतपथ के ७ सातवें काण्ड में कूर्म का अर्थ। 'कूर्मोवैवृषा योषाऽषाढ़ा लिखा है वृषा शब्द 'वृषु' सेचने धातु से बना है। सायण ने इस का यौगिकार्थ लिखा कि 'वृषा' "वीर्य सेचने समर्थः पुमान्" 'वीर्य सेचन अर्थात् अपत्योत्पादन में समर्थ क्षत्रिय युवा पुरुष का नाम कूर्म है। अर्थात् देहधारी दृढाङ्ग शरीर से हृष्ट पुष्ट ऐसा युवा पुरुष कूर्म क्षत्रिय कहाता है इस हमारे अर्थ की पुष्टि अथर्व वेद के मन्त्र में आये हुवे कौरम शब्द से भी होती है। कौ पृथिव्यां रमते। कौरमः। कौरम का अर्थ पृथिवी में रमण शील राजा कौरम कहाता है। वेद में कूर्म शब्द इन्द्र का विशेषण आया है। वह मन्त्र इस ग्रन्थ के आरम्भ में लिख-चुके हैं। कौरम शब्द अथर्व वेद में आया है यह भी मन्त्र पूर्व लिखा जा चुका है। कौरम किसी का विशेषण मन्त्र में नहीं है वह स्वयं क्षत्रियार्थ का वाचक है। कूर्मवंश के क्षत्रिय होने में इससे अधिक प्रमाण अन्य नहीं होसकता यदि उपर्युक्त गुण कर्म न होगा तो वह "त्रयस्ते नाम बिभ्रति" मनु के कथनानुसार नाम होगा कोई कहेंगे कि- यदि कौरम शब्द वेद में आया है तो वेद कौरम के बाद बने, परन्तु यह कथन युक्ति युक्त नहीं है, वेद सृष्ट्यारम्भ में ही प्रकाशित हुवे हमारा कहना इतना ही है कि क्षत्रिय वाचक कौरम शब्द वेद में है, वेद से ही यह नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ।

द्विज शब्द अथर्ववेद में आया है "पावमानी द्विजानाम्" अर्थात् वेद माता गायत्री द्विजों को पवित्र करने वाली है" कूर्मियों में वेदोक्त १६ संस्कार होने से द्विज हैं॥

४८४ इन्द्र सात स्वर्ग लोकों में आरोहणकर रहता था (व्याख्या) इन्द्र ऊंचे नीचे सुन्दर दिव्य ७ सात मन्जिल वाले प्रासादों में रहता है

४८५ आरोहन्ति सप्त स्वर्गाल्लोकात्॥ गो० उ० प्र० ६ ब्रा० १०॥

४८६ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः॥ ऋ० १।२।७।१६॥

(सप्तपदीमें वधूवर के ७ वें पगके न रखनेतक विवाहकृत्य पूर्ण नहीं)

४८७ पाणिग्रहणिका मन्त्रा, नियतं दारलक्षणम्। तेषान्तु निष्ठा विज्ञेया, विद्वद्भिः सप्तमे पदे॥ म.।अ. ८।श्लो. २२७॥

४८५ इन्द्रादिदेव सात मञ्जिल वाले दिव्य प्रासादोंमें वसते हैं। यहां "पञ्चमी विधाने ल्यब् लोपे कर्मण्युप सङ्ख्यानम्" इस वार्तिक से द्वितीया के स्थान में पञ्चमी विभक्ति हुई है अर्थात सप्त स्वर्ग लोकाना रुह्य तत्र वसन्तीत्यर्थः सात स्वर्ग लोकों से अभिप्राय सात मञ्जिल वाले प्रासादों (महलों) से ही है।

४८६ जीवों के पाप पुण्य फल भोगने तथा उनके रहने के लिये सर्व व्यापक परमात्माने पृथिवी से लेकर ऊंचे नीचे स्थानों से संयुक्त सात धाम (लोक) बनाये हैं॥ अथवा इन्द्र "सप्त द्वीपा वसुमती०" महाभाष्ये॥ सात द्वीप युक्त पृथिवी को विमानादिद्वारा भ्रमण करने में समर्थ होता है, सात द्विपही सात स्वर्ग लोक हैं।

अथवा सात स्वर्गलोक का अर्थ जो वेदों में कहे हुये ७ सात गायत्रादी छन्दोंसे का ज्ञान करना है सात छन्दवाले गायत्र्यादि मन्त्रों का अर्थ ज्ञान ही सात स्वर्ग लोक है, जो पवित्र ज्ञान है वही मनुष्य को दिव्य सुख देने वाला है॥ जहां भी कहीं सुख और सुख की पूर्ण सामग्री हो वही स्वर्ग लोक है कहावेगा

४८७ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय०" इत्यादि ६ पाणिग्रहण के मन्त्रों से जब वधूवर प्रतिज्ञा कर चुकते हैं तब दोनों का दार लक्षण अर्थात् पति पत्नीत्वभाव नियत

४८८ साप्तपदीनं सख्यम् ॥ अष्टा. । अ. ५ पा. २ सू ॥२२॥

४८९ अथ कस्मात् षष्ठपदात् षष्ठेऽहनि शस्यन्ते ॥

गो. । उ. । प्र. ६ । ब्रा. १०

४९० विच्छिद्यैव हि तदहः यत सप्तमम् ॥

गो. । उ. भा. । प्र. ६ । ब्रा. १०

(यजमान इन्द्र की गाथाओं से शत्रु को वश में करे)

४९१ " सप्तमेन पदेनाभ्यरुह्य वसन्ति ॥ "

(गो० उ० प्र० ६ ब्रा० १०)

हो जाता है इस में भी सप्तपदी विधि में जबतक ७ सातवां पग न चललेवें विवाह पक्का नहीं माना जा सकता यह मत धर्म शास्त्र का सिद्धान्त है ॥

४८८ सप्तपदी विधि में ७ सात पग चलने चलाने का प्रयोजन सात प्रकार की मैत्री है इस प्रमाण भगवान् पाणिनि, आचार्य का सूत्र है "साप्तपदीनं संख्यम् ॥ अष्टा० । अ० । पा० । सू० ॥ अर्थात् ७ प्रकार की मित्रता अर्थ में साप्तदीन" ऐसा पद व्याकरण में होता है ।

४८९ गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि छठा पग चलने से छठे दिन में प्रशंसा का क्या कारण है, उत्तर हैं कि जो ७ वां पग चलना है वह विवाह समाप्ति का सूचक है। सात के अर्थ को गोपथ कारने सातदिनों से सम्बन्धित किया है कि जो सात पगों का चलना चलाना है वह मानों इन्हीं सातदिनों के चक्र में सदैव रहकर गृहाश्रम के नियमों का पालन करना दिन सात ही हैं सात दिनों को ही सप्ताह कहा जाता है। जैसे ७ वां दिन सप्ताह की समाप्ति का सूचक है, वैदिक सिद्धान्त में विवाह अटूट सम्बन्ध यावज्जीवन का है

४९० विच्छिद्यैव हि० अर्थात् जो ७ वां दिन है वह छ दिनों को विच्छेद (काट करके) ही है। सातवां दिन सप्ताह का और सातवां पग विवाह का दोनों पूर्णता समाप्तिके सूचक हैं

४१२ इमान्त्वमिन्द्र ! मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ॥ दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥

ऋ० अष्टक ८। अध्या० ३ व. २८। मं. ४॥

४१३ अथेन्द्रगाथाः शंसति। यदिन्द्रादो दाशराज्ञ इति। इन्द्रगाथाभिर्वै देवा असुरानाज्ञायाथैनानत्यायन्। तथैवैतद् यजमाना इन्द्रगाथाभिरेवाप्रियं भ्रातृव्यमागाया थैनमति यन्ति।

(गो० । उ० भा० । प्रपा० ६ । ब्रा० १०)

४११ सप्तपदी में सातवां पग विवाह किया के पक्का हो जाने का सूचक है उसके पश्चात् गृहश्रम वास के पूर्ण अधिकारी होते हैं ॥

४१२ इस मन्त्र में विवाहित पति को 'इन्द्र' पद से सम्बोधित किया है कि (मीढ्वः) वीर्य सेचन में समर्थ हे इन्द्र ! 'मीढ्वः' यह 'मिह' सेचने धातु से बना है। ऐसे ही शतपथ के ७ वें काण्ड में कूर्म का अर्थ वृषा लिखा है 'वृष' सेचने धातु से वृषा शब्द बनता है। सायण ने इसका अर्थ किया है 'वीर्य सेचने धातु समर्थः पुमान्" ॥ अर्थात् सन्तानोत्पत्ति में समर्थ युवा पुरुष वृषा और इन्द्र कहाता है।

४१३ गोपथ में इन्द्र की परिभाषा यह लिखी है कि 'यत्' 'इन्द्रः' अदः, 'दाशराज्ञः" अर्थात् जो धन सम्पन्न देश राजाओं पर शासन कर सके वह भी इन्द्र होगा। देवों ने असुरों को इन्द्र की कहानियों से अपने वश में कर लिया था, वैसे ही यजमान लोग भी इन्द्र की गाथाओं से अपने शत्रुओं को जीते। शरीर में रस रक्तादि ७ सात धातु हैं, जिसके शरीर में सातवां धातु क्षीण हो जाता है वह निस्तेज और दीन हीन रहता है, वेद में उपदेश है कि " ब्रह्मचर्येण राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥" अथर्व०। कां.। ब्रह्मचर्य से राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। आठ प्रकार के मैथुन से बचना ब्रह्मचर्य का अर्थ है ॥

(परिणामी प्रकृति के साथ जीवात्मा का भ्रमण)

४९४ अव्यक्ताद् "व्यक्ततां याति व्यक्तादव्यक्ततां पुनः॥"
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवत् परिवर्तते ॥
(च० सं. शा० अ० १ श्लो ६८)

४९५ एते ह वा एतान् पञ्चभिः प्राणैः समीर्योत्थापयन् ॥
गो० प्र० ४ ब्रा. ११ भागउत्त.

वीर्य सेचन में समर्थ कहने से कूर्म्म इन्द्र है। आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ चरक में लिखा है कि

आहारस्य परं धाम, शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षये ह्यस्य बहून् रोगान् मरणंवा नियच्छति ॥

शरीर में खाये पिये हुवे आहार का अन्तिम परिणाम सातवां धातु वीर्य है उसकी रक्षा करनी चाहिये वीर्य के क्षय होने पर शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं अथवा मौत के मुख में ही चला जाता है ॥

४९४ प्रकृति अपनी अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था को प्राप्त होती और इसी प्रकार व्यक्तावस्था से प्रलय में अव्यक्तावस्था को प्राप्त होती है ॥

यह प्रकृति नटिनी के समान अपना रूप बदला करती है और जीव प्रकृति के रजस् और तमस् गुणों से घिरा हुवा (चक्रवत्) शकट के (चक्र) पहिये के समान ऊपर से नीचे और नीचे से उपर लोकों में जाता आता रहता है (यह जीत माला) (मुसाफिर) यात्री है ॥ संसार रूपी यात्री शाला में यह अपना पाप पुण्य फल भोगने को शरीर में आया हुवा है ॥

४९५ अग्नि प्राणादि पांच देवों ने इन असुरों को पांच प्राणों से जगा दिया इस कारण ये पांच देवता (उक्थ) सामवेद में गाये जाते हैं। जैसे जो है

४९६ या वाक् सोऽग्निः। यः प्राणः स वरुणः। यन्मनः स इन्द्रः
यच्चक्षुः स बृहस्पतिः । यच्छ्रोत्रं स विष्णुः ॥

(सात्विक कुलीन का ही यज्ञ जागरूक होता है)

४९७ इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यःस्वराभरत्॥ अ. कां. ११ सू. ५।

४९८ प्रजापति र्ह्येतेभ्यः पञ्चभ्यः प्राणेभ्यो देवान् ससृजे ।
यदुचेदं किञ्च पाङ्क्तं तत सृष्ट्वा व्यान्वलयत् ॥

४९६ वह अग्नि है जो प्राण है वह वरुण है । जो मन है वह इन्द्र । मन इन्द्रियों का राजा है राणी मक्खी के समान । राणी मक्खी के उड़जाने से अन्य सब मक्खीयो उड़जाती है। इसी प्रकार मृत्यु समय मनके निकल जाने से इन्द्रियों का व्यापार बन्द हो जाता है । आंखें बृहस्पति हैं । कान विष्णु हैं शरीर में ये ही पांच देवता हैं । जो जीवान्वित हो शरीर में प्रयत्नशील है ॥

("अव्यक्ताद् व्यक्ततां याति" का दूसरा अर्थ)

यह भी हो सकता है कि जब इस स्थूल शरीर से पाप पुण्य भोगकर जीवात्मा अलग हो जाता है तब अव्यक्त होता है और जब फिर शरीर धारण करता है तब व्यक्त प्रकट हो जाता है इस प्रकार रजो गुण और रजोतमो गुण से युक्त चक्र (गाडी के पहिये के समान कभी उपर लोकों में कर्मानुसार भ्रमण करता रहता है ।

४९७ इन्द्रने ब्रह्मचर्य धारण कर देवों को दिव्य सुखदिया ॥ ५११॥

४९८ प्रजापति अर्थात् गर्भस्थ जीवात्मा– १ अग्नि २ प्राण ३ मन ४ चक्षु और श्रोत्र इन पांच प्राणों से पांच ज्ञानेन्द्रियों को उत्पन्न करता है (ते) ये (ह) प्रसिद्ध (देवाः) देव बोले कि यह मेरा प्रजापति पिता अर्थात् गर्भस्थजीव सुख भावुक म्लान अर्थात् जागने की दशा में नहीं अतः इस को जगाना चाहिये क्यों कि यह तमो गुण (अज्ञानावस्था) से म्लान होरहा है अतएव पुनः इसको सतोगुण से प्रेरित कर जगायेंगे, वह प्रजापति जीवात्मा सतोगुण से ही सचेत होगा ।

ते होतुर्देवाः । म्लानोऽ यं पिता मयोभूः ॥

४९९ प्रजापतिर्वै यज्ञः ॥ गो० । उ० । प्र. २ । ब्रा. १८ ।

तस्य हैते गोप्तारस्ते ह नमसिताः कर्तारमति सृजन्तीति॥

तत्त एतं प्रजापतिं यज्ञं प्रपद्यते नमो नम इति ॥

(यज्ञ ऐन्द्र, इन्द्रो ब्रह्मा,)

५०० तदाहुः । यदैन्द्रो यज्ञः । इन्द्रो वै वेधाः ।

(गो० । उ० । प्र० ३ । ब्रा. २०) तथा प्र० २ । ब्रा. २० ॥)

५०१ यद्वै किञ्च पीतवत् तदैन्द्रं रूपं तेनेन्द्रं प्रीणाति॥ गो० प्र० २ ब्रा० २० ॥

सात्विक कुलीन पुरुष का ही यज्ञ जागता है। दूसरों को जगाने वाला यज्ञ सतोगुण प्रधान रहता है।

४९९ प्रजापति यज्ञ का नाम है ॥ यहां यह अलङ्कार रूपसे वर्णन है। प्रजापति का अर्थ यहां यज्ञ और गर्भस्थ जीवात्मा है। जीवात्मा के गर्भ में आने पर ही पञ्चतन्मात्राओं से स्थूल भूत पांच इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है सोते हुए मनुष्य का जीवात्मा तमोगुण में रहता है वह म्लान पिता है। सूर्य के निकलते ही सब इन्द्रियां जाग उठती अर्थात् अपना २ व्यापार करने में समर्थ होती हैं और म्लान पिता तमोगुण सम्पन्न जीवभी जाग उठता है

५०० इन्द्रका यज्ञ अयेन्द्रयज्ञ कहाता है। यहां इन्द्र नाम ब्रह्माका है। पूर्वचार्य भी कहते हैं कि जो यह यज्ञ है वह अयेन्द्र अर्थात् ब्रह्मा ही का है। यज्ञों के प्रचारक ब्रह्माजी हुए हैं। ब्रह्मा इन्द्र ही हैं और इन्द्र कूर्म है।

५०१. यहां गोपथ में यह प्रश्न है कि प्रातः सवन में प्रस्थित हुओं को इन्द्र सम्बन्धी दो मंत्रो से क्यों आहुतिदेनी चाहिए। क्यों कि दूसरों से इनका कोई सम्बन्ध

(यज्ञ करने से मृत्यु पर विजय)

५०२ अथात एकाहस्य प्रातः सवनम् । प्रजापतिं यज्ञं तन्वानं बहिष्पवमान एव मृत्युं मृत्युपाशेन प्रत्युपाक्रमत् । निष्केवल्यमेवात्र हि प्रजापतिं मृत्युर्व्यजहात् ॥ गो० उ० । प्र. ३ ब्रा. १२॥

५०३ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥ अ० कां. ११ । सू. ५

(प्रजापति का इन्द्र से कथन)

५०४ इन्द्रमब्रवीत । प्रजापतिरितिशेषः। त्वं न इमं यज्ञस्याङ्गमनु समाहरन् ब्राह्मणाच्छंसीयाम् । केन सहेति । सूर्येणेति । तथेत्यब्रूताम् ॥

नहीं है । इसका समाधान वहां ही यह है कि जो कुछ जिसने सोमपान किया वह उतना इन्द्र का रूप हो गया । अतः ! इन्द्र सम्बन्धी दो मंत्रों से आहुति देना अनुचित नहीं । यहां ब्रह्मा तथा कूर्म एकार्थक हैं । ब्रह्मा का पुत्र कश्यप और कश्यप ही का नाम कूर्म है । यह कूर्मराज आगे जाकर राजर्षि हुए ।

५०२ एक दिन का यज्ञ प्रातः सवन कहाता है । बहिष्पवमान (ब्रह्मचारी) प्रजापति यज्ञ को विस्तृत रूप से करता हुआ मृत्यु के पाश (बन्धन) से मुक्त हो जाता है। निष्केवल ही यहां प्रजापति पर मृत्यु ने आक्रमण किया था ॥

५०३ वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य रूपी तप और यज्ञादि शुभकर्मों के अनुष्ठान से देवों (विद्वानों) ने मौतपर विजय पाया और पाते हैं अर्थात् मृत्यु से छूटकर मुक्तावस्था को प्राप्त हो जाते हैं

५०४ प्रजापति ने इन्द्र से कहा कि तू इस हमारे यज्ञाङ्ग ब्राह्मणाच्छंसीयाऋचा को स्तुतिरूप से ग्रहण कर । इन्द्रने कहा किस के साथ । प्रजापतिने कहा सूर्य के साथ। प्रजापति और इन्द्रने कहा– तथास्तु ॥

५०५ तस्माद् ब्राह्मणाच्छंसी प्रातः सवन ऐन्द्राणि सूर्याङ्गानि श
ंसति ॥ गो० । उ० । प्र. ३ । ब्रा. १५॥

(कूर्म का अर्थ प्रजापति और आदित्य)

५०६ यजुर्वेद अ० १३ मन्त्र ३० पर महीधरभाष्य । जैसे-
कूर्मः प्रजापतिरादित्यो वा" ॥

५०७ द्वे कूर्मदेवत्ये कूर्मश्च प्रजापतिरादित्यो वा ।
य. अ. १३ म. ३० पर उवटभाष्य

५०८ वीर्यं वा इन्द्रः । यज्ञो विष्णुः ॥
(गो. । उ. भा. प्र. ६ ब्रा. ७)

५०५ इस कारण तबसे ब्राह्मणाच्छंसी प्रातः सवन में इन्द्र सम्बन्धी सूर्य के अङ्गों की स्तुति करने लगा ॥ इन्द्र और सूर्यने बलवान् होकर तम स्वरूप मृत्यु को भगा दिया ।

५०६ प्रजापति और आदित्य कूर्म कहाते हैं ॥

५०७ दो कूर्म देवता हैं (१) प्रजापति और दूसरा आदित्य ।

(व्याख्या) प्रजापति ब्रह्मा का नाम है ब्रह्मा के अथर्वा और कश्यप आदि पुत्र हुए । कश्यप की स्त्री पुराण मत अदिति, थी । अदिति के गर्भ से आदित्य उत्पन्न हुवे । आदित्य की अर्थ सूर्य है । सूर्य के समान तेज- स्वी वंश कूर्म वंश कहाता है ।

५०८ इन्द्र का अर्थ बल है जिसके बाहुओं में बल हो जो परमैश्वर्यवान् हो और शत्रु विजयी हो वह कूर्मेन्द्र कहाता है

५०९ महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि लिखते हैं कि शब्दों की प्रवृत्ति चार प्रकार की होती है १ जातिशब्द जैसे मनुष्य कहनेसे मनुष्य मात्र का बोध होता है२ दूसरे गुण वाचक हैं । जैसे—धर्म, अधर्म, संस्कार, शुल्क, हरित, नील, पीत आदि

(कूर्म शब्द विशेषणरूप में प्रतिष्ठा वाचक है)

५०९ चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः । जातिशब्दा, गुणशब्दा, क्रिया, शब्दा यदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाः ॥ इति महाभाष्ये पतञ्जलिमुनिः ।

५१० आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ॥ अष्टा. । अ. ६ । पा. १ सू. १४६ ॥

३ तीसरे क्रिया वाचक हैं जैसे पकाना, खाना, लिखना आदि ४ चौथे यदृच्छा शब्द हैं जैसे 'क्लृपक' आदि । यदृच्छा शब्द अशक्तिज के अनुकरण में होते हैं। पाणिनि मुनिने भी 'यौगिक, योगरूढि और रूढि भेदसे तीन प्रकार के शब्द माने हैं। 'कूर्मो वै वृषा योषाऽषाढा' शतपथ के इस प्रमाण के मनन करनेसे यह सारांश निकलता है कि 'वृषा और योषा' कूर्म शब्द के ये दोनों अर्थ क्षत्रियार्थ के ही द्योतक हैं शतपथकार "सयत् कूर्मो नाम। एतद्वैरूपङ्कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत" इसका अर्थ प्रजापति ने कूर्म रूप करके प्रजा उत्पन्न की ऐसा नहीं मानते किन्तु प्रजा पालक कूर्म ने प्रजा उत्पन्न की, यह अर्थ मानकर ही "यद् सृजद् करोत् तस्मात् कूर्मः॥" यह यौगिक अर्थ चरितार्थ होसकता है। शतपथ के समय में यह अपने क्षत्रिय के गुण कर्म स्वभाव को लिये हुवे क्षत्रिय अर्थ में प्रयोग किया जाता था 'एतद्वैरूपङ्कृत्वा" यह वचन कूर्म वृषा और योषा अर्थ से विरुद्ध है। अतः यह पीछे से अवतारवाद की सिद्धि के लिये किसीने मिलाया, वृषा योषा कूर्म के इस अर्थ से शतपथकार अवतारवादी न थे यह सिद्ध है। कुछ काल के पश्चात् गङ्गा और यमुना के मध्य में काशी नगरी के विजयार्थ सूर्यवंशी वीतहव्यने चन्द्रवंशी दिवोदासादि के साथ घोर युद्ध किया था यद्यपि अन्त में चन्द्र वंशाही विजयीरहा फिर भी उस समय से क्षत्रिय सूर्यवंश चन्द्रवंश कूर्म में शिथिलता आगयी और क्षत्रियार्थ कूर्म शब्द योगरूढि अर्थ में चलागया, सूर्यवंश चन्द्रवंश में जो क्षत्रिय उत्पन्न हुए उन्होंने अपना ही कूर्म रख लिया, किन्तु अथर्ववेद के २० वें काण्ड के प्रथम मन्त्र में 'कोरम' शब्द क्षत्रियार्थ में ही है वहां कौरम शब्द विशेषण रूप नहीं है किन्तु कौरम

राजा के अर्थ में है। वर्तमान कूर्मशब्द जातिवाचक अर्थ में रूढि है और अपने मुख्यार्थ क्षत्रिय अर्थ को ही विशेष्य रूपसे लिये हुवे है।

शतपथ के ७ वें काण्ड के कूर्मो वै वृपा थांपा प्रमाण से कूर्म क्षत्रिय न कहकर केवल क्षत्रिय कहना उचित है शतपथ के इस अर्थ की पुष्टि में अथर्व वेद का 'कौरम शब्द' प्रमाण है। और अपने नाम के अन्त में मनुजी की व्यवस्थानुसार 'वर्मा' शब्द लगाना चाहिये मनु की व्यवस्था यह है कि ब्राह्मण के नाम के अन्त में 'शर्म्मा' क्षत्रिय के नाम के अन्त में वर्मा, और वैश्य के नाम में गुप्त शब्द हो और शूद्र के नाम के अन्त में दास का प्रयोग होना समुचित है।

५१० यदि शतपथ के अर्थानुसार चाहते और कूर्म शब्द को विशेषण वाचक रखना है तो फिर कूर्मा क्षत्रिय ऐसा कहना होगा किन्तु हम क्षत्रिय हैं वर्म्मा हैं हमारी उत्पत्ति स्वायम्भुवमनु में कश्यप कूर्म से है। जब हम विशेषण रूपसे अपने को कूर्म क्षत्रिय कहेंगे तब कूर्म शब्द प्रतिष्ठा अर्थ का वाचक होगा अथवा योग्यता अर्थका, जैसे कहते हैं कि आप कौन आस्पद हैं तो उत्तर में कहाजाता है कि हम द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, वाजपेयी, आवसथिक दीक्षित और मिश्र इत्यादि हैं इससे अपनी २ योग्यता का परिचय दिया जाता हैं ऐसेही कूर्म क्षत्रिय हैं ऐसा कहने से हम शूरवीर, सङ्ग्रामादि में अनेक विध कर्मा प्रजाजनरक्षक क्षत्रिय हैं यह अर्थ होगा दोनों ही प्रकार ठीक हैं॥

और जब कूर्म यह ऋषि का नाम होगा तब हम कूर्म ऋषि के वंशज हैं इतना ही कहना होगा।

५११ "वीर्यं वा इन्द्रः"॥ गो० ब्रा। उत्तरभा. प्र० ६। ब्रा० ७॥

जो बाहु बल में बली हो वह इन्द्र कहाता है। इन्द्र ही अपने तप और बाहुबल से दूध देने वाले गौ आदि पशुवों को यज्ञ में लाकर उनको अपने निरीक्षणता में रखने के लिये समर्थ होता है और वही अधिष्ठाता और प्रदाता होता है

५१२ योद्धालोग जिसके बिना शत्रु को जीत नहीं सकते, और युद्ध समय जिसको अपनी रक्षार्थ आह्वान करते हैं, जो विश्व की मूर्ति है, जो निरपराधियों की रक्षा करता, तथा अपराधियों को यथायोग्य दण्ड देता वह इन्द्र कहाता है उसी का नाम वेद में 'तुविकूर्मितम इन्द्र आया है॥ एतद् विषयक वेद मन्त्र इस ग्रन्थ के आरम्भ में देखिये। वही कूर्मेन्द्र और वही कश्यप कूर्म प्रजापति है

इत्याद्यस्य स्वायम्भुवमनूत्पन्नस्य कश्यपकूर्मप्रजापते रुत्पत्त्यादि विषयः समाप्तः।

॥ यह प्रथम स्वायम्भुव मनु में उत्पन्न हुवे कश्यप कूर्म के उत्पत्यादि का विषय समाप्त हुआ॥

(क्षत्रिय का मुख्यधर्म पश्वादि रक्षा है ॥)

५११ वीर्येणैव तद् यज्ञेन चोभयतः पशून् परिगृह्य क्षत्रेऽन्ततः प्रतिष्ठापयति । तस्मात् क्षत्रियो भूयिष्ठं हि पशूनामीशसे योधिष्ठाता प्रदाता ॥ गो. । उ. । प्र. ६ । ब्रा. ७ ॥

५१२ यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते । यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत स जनास इन्द्रः ॥

अथर्व । कां. २० । सू. ३४ । म. ९ ॥

(स्वायम्भुव पहिला मनु है और दूसरा स्वारोचिष)

५१३ स्वायम्भुवो मनुरभूत प्रथमस्ततोऽमी स्वारोचिषोत्तमजा, तामसरैवताख्याः षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम् ॥२९॥

(सिद्धान्तशिरोमणौ)

५१३ स्वायम्भुव नामक प्रथम मनु तत्पश्चात् स्वारोचिष, उत्तमज, तामस, रैवत, और छठे चाक्षुष नामक मनु प्रकट हुए। इस समय पृथिवी में प्रसिद्ध वैवस्वत नामक सातवें मनुका काल प्रचलित है ॥

५१४ स्वायम्भुव मनु के अनन्तर यह दूसरा क्रमशः स्वारोचिष मन्वन्तर है इस स्वारोचिष मनुके देवों के तेज सदृश १ नभ २ नभस्य ३ प्रसृति और कीर्ति के बढाने हारे अनेक सूर्य नाम पुत्र उत्पन्न हुवे ॥

५१५ उत्तम का अपत्य (सन्तान) औत्तमि कहाता है ॥१॥

एक मनु के समाप्ति में दूसरे मनु का आरम्भ मन्वन्तर का अर्थ है ॥ ७१ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है । और १४ मन्वन्तर का एक कल्प होता है ॥

(अथस्वारोचिष मन्वन्तरो द्वितीयः)

५१४ स्वारोचिषस्य तनया, श्चत्वारो देववर्च्चसः। नभो नभस्य
प्रसृतिः मानना: कीर्तिवर्धना: ॥७॥

(औत्तमिमन्वन्तरस्तृतीयः) औत्तमि तीसरा मन्वन्तर है)

५१५ उत्तमस्यापत्यं पुमान् औत्तमिः। अपत्यार्थे 'अतइञ्'
इत्यनेन सूत्रेण 'इञ्' प्रत्ययः ॥

(तामसश्चतुर्थो मन्वन्तरः)

५१६ मन्वन्तरञ्चतुर्थन्तु, तामसं नाम विश्रुतम्।
कविः पृथुस्तथैवाग्निःरकपिः कपिरवे च॥
तथैव जल्पधीमानौ, मुनयः सप्त नाम ते ॥१॥
(मत्स्य पु.। आधिपत्य अभिषेचन नाम अ. ८)

---

५१६ तामस मन्वन्तर में १ कवि २ पृथु ३ अग्नि ४ रकपि ५ कपि ६ जल्प और धीमान ये सात मुनि उत्पन्न हुए थे तामस नामक यह चौथा मन्वन्तर है ॥

(१४ मन्वन्तरों के नाम)

१ स्वायम्भुव	२ स्वारोचिष	३ उत्तम	४ तामस
५ रैवत	६ चाक्षुष	७ वैवस्वत	८ सावर्णि
९ दक्ष सावर्णि	१० ब्रह्मसावर्णि	११ धर्म सावर्णि	१२ रुद्र सावर्णि
१३ देवसावर्णि	१४ इन्द्र सावर्णि		

(ये १४ मन्वन्तरों के नाम हैं)

रैवतो मन्वन्तरः पञ्चमः ॥

(रैवत यह पांचवां मनु है)

५१७ पञ्चमस्य मनोस्तद्वत्, रैवतस्यान्तरं शृणु ।
देवबाहुः सुबाहुश्च, पर्जन्यः सोमपो मुनिः ॥
स्थिण्य रोमा सप्ताश्च:, सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥
मत्स्य पु० । आधिपत्य अभीषेचन नाम अ. ८

(छठा मनुचाक्षुष है)

५१८ ऋभवोऽथऋभाद्याश्च, वारिमूलदिवौकसः ।
चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ताः, देवानां पञ्चमोजयः ॥
(मत्स्य पु० । आधिपत्य अभिषेचननाम अ.

---

५१७ १ देवबाहु २ सुबाहु ३ पर्जन्य ४ सोमप ५ मुनि ६ स्थिणय रोमा ये सब ऋषि रैवत मन्वन्तर में हुवे ॥

५१८ १ ऋभभव २ ऋभाद्य ३ वारिमूल ४ दिवौकस और देवों में पांचवा पांच मुनि चाक्षुप मन्वन्तर में उत्पन्न हुवे थे ॥

इति श्रीकूर्मसिद्धान्तविमर्शे पूर्वभागः
प्रथमः परिच्छेदश्च समाप्तः ॥

इत ऊर्ध्वं द्वितीयपरिच्छेदाऽऽरम्भः ॥

(सप्तमो वैवस्वतमन्वन्तरः ॥ सातवां वैवस्वतमन्वन्तर है)

५३५ गतेन्तरे चाक्षुषनामधेये, वैवस्वताख्ये, च पुनः प्रवृत्ते ।
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य, बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः ॥
॥ मत्स्य पु० । आधिपत्य-अभिषेचन नाम अ. ८ ॥

५३६ स्वायम्भुवो मनुरभूत् प्रथमस्ततोऽमी, स्वारोचिषोत्तमज
तामसरैवताख्याः। षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां,
वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम् ॥२१॥ सिद्धा.शि.॥

(तत्र वैवस्वतमन्वन्तरः)

५३७ तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥
(अ. । कां. ८ सू. १०)

---

५३५ चाक्षुष नामक मन्वन्तर के व्यतीत होने पर और वैवस्वत ७ वें मन्वन्तर के आरम्भ में इस चराचर जगत् का प्रजापति सूर्य वंश चिन्ह प्रादुर्भूत (प्रकट) हुआ ॥

स्वायम्भुव नामक प्रथम मनु तत्पश्चात् स्वारोचिष, उत्तमज, तामस रैवत और ६ छठे चाक्षुष नामक मनु प्रकट हुवे और अब इस समय पृथिवी में प्रसिद्ध वैवस्वत नामक सातवें मनु का काल प्रचलित है

५३६ आदि में स्वायम्भुव मनु हुआ तत्पश्चात् क्रमशः स्वारोचिष उत्तमज तामस और छठा चाक्षुष हुवा और इस समय ७ वां वैवस्वत है ॥

५३७ वेदमन्त्र का अर्थ पूर्व आचुका है ॥ अतः यहां नहीं लिखा गया

५३८ युगे युगे धर्मपादः क्रमेणाऽनेन हीयते।
गुणपादश्च भूताना-मेवं लोकः प्रलीयते ॥
॥ च. सं. । विमानस्था. । अ. ४ । श्लो. ३० ॥

५३९ कल्पाख्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माऽह्नस्य दिनत्रये।
प्राप्ते सप्तमुहूर्ते वै, मनुर्वैवस्वतोऽभवत् ॥
(वराह पु० । अ. ५९ । श्लो)

(सूर्यवंश की उत्पत्ति)

५४० आकाशप्रभवो ब्रह्मा, शाश्वतो नित्य अव्ययः।
तस्मान्मरीचिः सञ्जज्ञे, मरीचेः कश्यपः सुतः ॥५॥

५४१ विवस्वान् कश्यपाज जज्ञे, मनुर्वैवस्वतः स्वयम्।
सतु प्रजापतिः पूर्व, मिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः॥६॥
॥ वाल्मीकिरामा० । अयोध्या कां. । सर्ग ११० ॥

---

५३८ सत्य युगादि प्रत्येक में इस क्रम से धर्म का चतुर्थांश और पृथिव्यादि भूतों के गुणोंका चतुर्थ भाग कम हो जाता है और ऐसा होते २ अन्त में लोक प्रलयावस्था को प्राप्त होता है ॥

५३९ श्वेत वाराह कल्प में ब्रह्माद् के तीसरे दिन सातवीं घटिका में यह सातवां मनु उत्पन्न हुआ था ॥

५४०-४१ आकाश प्रभव अर्थात् ब्रह्मा अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुवा था ब्रह्मा से मैथुनी सृष्टिमें मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से विवस्वान् (सूर्य नामा पुरुष) विवस्वान् (सूर्य) से मनु प्रजापति हुआ, मनु का पुत्र इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु के १०० सौ पुत्र हुवे ॥६॥

५४२ मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ।
ब्राह्मणक्षत्रादयस्तस्मा, न्मनोर्जातास्तु मानवाः ॥८३॥

(मरीचि का पुत्र कश्यप)

५४३ नैःश्रेयसमिदं कर्म, यथोदितमशेषतः ।
मानवस्यास्य शास्त्रस्य, रहस्यमुपदिश्यते ॥

॥ महाभा. । आदिप. । अ. ७५ ॥

५४४ मरीचेः कश्यपः पुत्रः॥ मत्स्य पु. । अ. १९९ । श्लो. १

५४५ मरीचिः (मरीचः कश्यपः) कश्यपः जातवेदाः ।
जगती। अ.कां. ७। अ. ६ । म. १ कश्यपो मारीचः।
सामवे० । प्रथमादशतिः ख. ३॥

---

५४२ सब मनु से हुए । मनु से ही सब विस्तार हुआ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये वेदोक्त चारों वर्ण पूर्व कल्प के सञ्चित अपने २ गुण-कर्म स्वभावानुसार हुवे ॥ "मनुष्या ऋषयश्चये । ततो मनुष्या अजायन्त" । यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है ॥ स. प्र. ८ समु. "जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे वे अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुवे और जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के न थे वे मैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुवे" (ऋषिदयानन्द)

५४३ इस मानव शास्त्र का यह (नैःश्रेयस) मुक्तिद कर्म ज्यों का त्यों सम्पूर्णता से कहा यही इस शास्त्र का निष्कर्ष है ॥

५४४ मत्स्य पुराण कहता है मरीचि का पुत्र कश्यप था ।

५४५ कश्यप मारीच है । सा. वे. । प्र. द. । खं. ३ ॥ तथा अथर्व

५४६ मैथुनी सृष्टि में कश्यप ऋषि का जन्म हुआ था कश्यप की पत्नी अदिति थी । यह कश्यप ब्रह्मा का (अंश) पुत्र था और अदिति पृथिवी का अंश थी परन्तु

(कश्यप की पत्नी अदिति)

५४६ पुरुषः कश्यप स्त्वासी-ददितिस्तु प्रियास्मृता।
ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः, पृथिव्याऽदितिः स्मृता ॥

वराहपु०।

५४७ अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्। तत उच्छिष्टमश्नात्।
सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त ॥
॥ गो. ब्रा. पूर्वा. प्र. २। कां. १५ ॥

(कश्यप के आदित्यादि १२ पुत्र)

५४८ भगोंशश्चार्यमा चैव, मित्रोऽथव रुणस्तथा।
सविता चैव धाता च, विवस्वांश्च महाबलः ॥१५॥

५४७ गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि प्रजा (सन्तान) की कामना करने वाली अदिति ने ओदन अर्थात् भात पकाया, उससे यज्ञ किया, पुनः यज्ञशेष खाया गर्भवती हुई उससे आदित्य गण उत्पन्न हुवे ॥ अदितेरपत्यम् आदित्यः ॥ दित्यदित्या-दित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः "॥अष्टा०। अ० ४। पा०। सू० इत्यनेनण्यः प्रत्ययः अदिति अपत्य (सन्तान) आदित्य कहता है। यहां 'दित्यदित्यादित्य.,, सूत्र से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय हुवा है

५४८-५६ कश्यप के आदित्यादि १२ पुत्र हुवे।१ भृगु २ अंश ३ अर्यमा ४मित्र ५ वरुण ६ सविता ७ धाता ८ विवस्वान् ९ महाबल १० पूषा ११ इन्द्र १२ विष्णु नासत्य और दस्र ये दो अश्विनी कुमार के पुत्र हुवे आठवें महात्मा मार्तण्ड के नासत्य और दस्र ये दोनो अश्विनी कुमार हुवे. श्रीमान् महायशस्वी विश्वरूप और त्वष्ट पुत्र हुवे ॥१८॥ इनमें-आदित्य गण क्षत्रिय हैं, मरुद गण वैश्य हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। और आङ्गिरस ब्राह्मण हैं।

५४९ तथा पूषा तथैवेन्द्रो: द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
इत्येते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसम्भवाः ॥१६॥
५५० नासत्यश्चैव दस्रश्च, स्मतौ द्वावश्विनावपि ।
मार्तण्डस्यात्मजा वेता, अष्टमस्य महात्मनः ॥१७॥
५५१ तुष्टश्चैवात्मजः श्रीमान्, विश्वरूपो महायशाः ॥१८॥
आदित्याः क्षत्रियास्तेषां, विशश्च मरुतस्तथा ॥२३॥
५५२ अश्विनौ तु स्मतौ शूद्रौ, तपस्युग्रे समास्थितौ ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसा देवा, ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥२४॥

"१-दक्ष २ मरीचि ३ अत्रि ४ पुलस्त्य ५ पुलह ६ क्रतु ७ वसिष्ठ
८ गोतम ९ भृगु और १० अङ्गिरा ये दश महर्षि अपनी क्रियायोंसे संसार में विख्यात और १३ तेरह गुणों के फैलाने वाले हैं इनके सन्तान अग्र जन्मा ब्राह्मण और इनके अतिरिक्त मनुवंशज ब्राह्मण जानना"

(पृष्ठ) ५५३।५५४। दक्षादि १० दशों में जिन ऋषियों से वंश चले वे आठ हैं उन के नाम ये हैं १-भृगु २ अङ्गिरा ३ मरीचि ४ पुलस्त्य ५ पुलह [क्रतु ७ अत्रि और आठवे ८ वसिष्ठ ये सब ब्रह्मा के ही पुत्र हैं ॥५५३।५५४ काशी निवासी श्री प० बटुक प्रसादजी मिश्र स्वरचित पुस्तक में]

[टिप्पणी] यहां मरीचि को ब्रह्मा का पुत्र लिखा है अन्यत्र मनुस्मृति में मनु का कश्यप पुत्र मरीचि है

५५७ जैसे इस समय सृष्टि है कहीं नाश है कहीं उत्पत्ति है वैसे ही अवान्तर प्रलयों में भी कहीं उत्पत्ति और कहीं नाश रहता है" अत्यन्त [उच्छेद [नाश] सृष्टि का नहीं होता ॥ यह कपिल मुनिका मत है ॥

उपर्युक्त कपिल मुनि के प्रमाण से स्वायम्भुव मनुत्पन्न कश्यप कूर्म की वंशलता इस सातवें मन्वन्तर में [जो कि कूर्मी नाम से प्रसिद्ध है] पायी जाती है

५५३ इत्येतत् सर्वं देवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम् ॥

॥ महाभा० । शान्ति प. । अ. २०८ ॥

(ब्रह्मा के आठ पुत्र)

५५४ दक्षं मरीचिमत्रिञ्च, पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वसिष्ठं गौतमञ्चैव, भृगुमङ्गिरसं मुनिम् ॥७०॥

५५५ भृगुराङ्गिरा मरीचिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः (टिप्पणी)
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च, अष्टौ ते ब्रह्मणः सुताः ॥९॥

५५६ लोकस्य सन्तान करा-स्तैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः
प्रजापतय इत्येवं, पठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः ॥१०॥

(मत्स्य पु० । अ० १९४)

(अवान्तर प्रलयों में सृष्टि का अत्यन्त उच्छेद नहीं होता)

५५७ इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ सां. । अ. १ ।
सू. १५९॥ "कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. कां. ७ । अ० ५
प्रपा० ४ ॥

पूर्व प्र ४८६ में लिखित 'मरीचि० ' इस ७० वें श्लोक में १० अग्रजन्मा-ओं में एक मरीचि भी है परन्तु इन का जन्म गोत्र तथा प्रवर दोनों से रहित है । कारण इन के पुत्र कश्यप से काश्यपीय प्रजा उत्पन्न होने के कारण मरीचि को ब्रह्मा अर्थात् विश्वसृज् [म. अ. १२ श्लो. ५०] कहा गया है इस लिये महर्षि कश्यप का नाम गोत्र तथा प्रवर दोनों में आया है । मरीचि का कुल पांच ऋषियों से चला है । १ कश्यप २ विध्रुव ३ रेभ ४ शाण्डिल्य ५ लौगाक्षि यह विचार ब्राह्मणोत्पत्ति भास्कर के कर्ता श्री प० बटुकप्रसादजी काशी निवासी का है

स्वायम्भुवमनु से चाक्षुषमन्वन्तर पर्यन्त

(६) मन्वन्तर बीत गये)

५५८ याताः षण्मनवो युगानिभमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः
गोद्रीद्रन्द्रिकृताङ्क दस्रनगगोचन्द्राः शकाब्दान्विताः
सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्तमाने गताः ॥२८॥

(सिद्धान्तशिरोमणौ)

५५९ स्वायम्भुवो मनुरभूत, प्रथम स्ततोऽमी
स्वारोचिषोत्तमज,-तामसरैवताख्याः
षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां
वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम् ॥२९॥ (सि. शि.)

[व्याख्या] ब्रह्मा का पुत्र मरीचि का पुत्र कश्यप, कश्यप ही कूर्म है— कश्यप कूर्म से मैथुनी सृष्टि चली, कश्यप की माता का नाम अदिति था।

५५८ शालि वाहन शके आरम्भ में ६ छमनु (२७) सत्ताइस महायुग और तीन युग चरण चौथे युग के ३१७९ व्यतीत हुए हैं ये सब मिलकर १९ ७२ ९४ ७१ ७९ इतने वर्ष होते हैं। इन में शक वर्षों को जोड़ देने से वर्तमाने समय में ब्रह्म दिन के आरम्भ से गत सौर वर्ष की सङ्ख्या होती है॥

५५९ स्वायम्भुवनामक प्रथम मनु, तत्पश्चात् स्वारोचिष, उत्तमज, तामस, रैवत। और छठे चाक्षुप नामके मनु प्रकट हुए इस समय पृथिवी में प्रसिद्ध वैवस्वत नामक सातवें मनु का काल प्रचलित है ॥५५७॥

(वर्तमान २८ वें महायुग के आरम्भ से भी यह वर्तमान
सत्ययुग बीत गया)

५६० कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः ।
वैवस्वतस्य च मनो, युगानां त्रिघनोगतः ॥२२॥
(सूर्यसि० मध्यमाधि० श्लो. २२)

५६१ अष्टाविंशाद् युगादस्माद, यातमेतत कृतं युगम् ।
अतः कालं प्रसंख्याय,संख्या मेकत्र पिण्डयेत् ॥२३॥
(सू. सि. मध्यमा. श्लो. २३)

(काल के नवमान)

(इदानी मनयैव काल विभाग परिभाषया सौरा-
दीनि तन्मानान्याह)

५६२ रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं
द्युरात्रश्च देवासुराणान्त देव ।
रवीन्दो युंते संयुति र्यावदन्य
विधो र्मास एतच्च पैत्र्यं द्युरात्रम् ॥१९॥

---

५६० इस वर्तमान कल्प के आरम्भ से अपनी सात सन्धियों के साथ छ मनु व्यतीत होगये और वर्तमान ७ सातवें वैवस्वत मनु के भी

५६१ २७ सत्ताइस युग बीत गये ॥२२॥ इस वर्तमान २८ वें महायुग के आरम्भ से भी यह वर्तमान सत्ययुग बीतगया इस कृतयुग के अनन्तर अभिमत समयतक जितना गत समय हो उसको मन्वादिकों को गतसङ्ख्या में जोड़ देना चाहिये ॥ २३ ॥

५६२ इनो द्वयं द्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम् ।
तदेवमेदिनी दिनं, भवासरस्तु भभ्रमः ॥२०॥
सिद्धान्तशिरोम० । ग्रहगणिते मध्यमाधि.
कालमानाध्यायः

५६१ अर्कमान २ देवमान ३ चान्द्रमान ४ पैत्र्यमान ५ सावनमान और ६ नाक्षत्रमान
५६२ इन चारों को मिलाकर एक मानुषमान की कल्पना जाननी चाहिये ॥ वर्ष, अयन, ऋतु, और युगादि सौरमान से और मास तिथि की चान्द्रमान से गणना होती है। व्रत, संस्कार कर्म सावनमास से और चिकित्सा नाक्षत्रमान से जानना चाहिये । श्लोक ३२ में कहा है कि काल के ९ नवमान अलग २ हैं । १ मानव २ दैव ३ बार्हस्पत्य ४ पैत्र्य ५ नाक्षत्र ६ सौर ७ चान्द्र ८ सावन ९ ब्राह्म ॥

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं, प्राजापत्यं गुरोस्तथा
सौरंच सावनं चान्द्रं मार्क्षं मानानि वै नव ॥ सू० सि० ॥

संहिता स्कन्ध के ज्ञाता बृहस्पति के मध्यम मान से राशि भोग काल को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं ॥

	(पितरों का अहोरात्र)
देवासुरों का अहोरात्र-३६५ दिन । १५ घ. । ३० प०	२९ दिन । ३१ घ. । ५० फल
	३० दिन का पितरों का चान्द्रमान
देवासुरों का मास ३० दिन का	३६० चान्द्रमास दिनों का पितरों का वर्ष
	सावनदिन ३६५ दि. १५ घ. ३० पल
देवासुरों का वर्ष ३६० दिन का	२२ विपल । ३० ।

५६३ (यांमेधाम्) हे अग्ने परमेश्वर ! परमोत्तमया मेधया धारणावत्या बुध्यासह(मा)मां मेधाविनं सर्वदा कुरु का मेधत्युच्यते ।(देवगणाः)विद्वत्समूहाः पितरो विज्ञानिनश्च यामुपासते (तया) तया मेधया (अद्य) वर्तमानदिने मां

(तत्र)

॥ देवपितॄणां कालविभागविषयः ॥

५६३ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्यमेधयाऽ
ग्ने मेधाविनं कुरु ॥

(य० । अ० ३२ मं. १४)

५६४ ऋतुत्रयमप्ययनमयने द्वे वत्सरः, अहोरात्रे विभजते,
सूर्यो मानुषदैविके ८९ रात्रिः स्वप्नाय भूतानां, चेष्टायै
कर्मणामहः, पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागास्तु पक्षयोः
९०

५६५ कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी देवरात्र्य
हनी वर्षं, प्रविभागस्तयोः पुनः ॥९१॥

५६६ अहस्तत्रोदगयनं, रात्रिः स्याद्, दक्षिणायनम् । ब्राह्मस्य तु
क्षपाहस्य, यत्प्रमाणं महीपते ! ९२॥

५६७ एकैकशो युगानान्तु, क्रमशस्तन्नि बोधमे, चत्वार्याहुः
सहस्राणि, वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥९३॥

५६८ तस्य तावच्छती सन्ध्या, सन्ध्यांशश्च स्तथाविधः, त्रेता
त्रीणि सहस्राणि, वर्षाणि च विदुर्बुधाः ॥९४॥

५६९ शतानिषट्च राजेन्द्र ! सन्ध्यासन्ध्यांशयोः पृथक्,
वर्षाणां द्वे सहस्रे तु द्वापर परिकीर्तिते ॥९५॥

५७० चत्वारि च शतान्याहुः सन्ध्यासन्ध्यांशयो बुधाः, सहस्रं
कथितं तिष्ये, शतद्वयसमन्वितम् ॥९६

५७१ यदेतत् परिसंख्यात मादावेव चतुर्युगम् ॥९७॥ एतद्
द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते । दैवि

५७२ कानां युगानान्तु, सहस्रं परिसंख्यया ॥९८॥
(भविष्य पु० ॥ अ० २ ॥)

५७३ यत् प्राग्द्वादशसाहस्रं, मुक्तं सौयेतसं युगम् । तदेक
सप्ततिगुणं, मन्वन्तरमिहोच्यते ॥१०६

५७४ मन्वन्तराण्यसंख्यानि, सर्गः संहारएवच । तथाप्येह
सदा ब्राह्मे मनवस्तु चतुर्दश १०७

सर्वदा युक्तं कुरु सम्पादय (स्वाहा) अत्र स्वाहा शब्दार्थप्रमाणं निरुक्तकारा आहुः स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा । तासमिषा भवति ॥ निरु० अ० ८ खं. २० ॥

५६४-५७४ मनुस्मृति के प्रथमाध्याय में जैसा देव और पितरों के काल विभागका विषय है वही यहां भविष्य पुराण द्वितीयाध्याय में भी है मनूक्त देवपितरों के काल विभाग का विषय इस पृष्ठ से अग्रिम पृष्ठ में है वह वहां सार्थ होने से तद्विषयक भविष्य के द्वितीयाध्यायो के श्लोकों का अर्थ यहां नहीं लिखा गया तथापि सङ्क्षेपार्थ यह कि '५४६ वसन्तादि तीन ऋतुओं का अयन, दो अयनों का एक वर्ष सूर्य मानुष और देवों के दिनरातों को विभाग करता है ॥८९॥ श्लो० १०६ का अर्थ जो पूर्व १२०० वर्ष की युग सञ्ज्ञा कही है वह चान्द्रमान से है यदि १२०० वर्ष की युग संख्या को ७१ से गुणन करें तो जो गुणन फल आवेगा वह एक मन्वन्तर का प्रमाण होगा ॥१०६॥ मन्वन्तर असंख्य हैं और सृष्टि तथा संहार (नाश) अनगिनत हैं तथापि इस ब्राह्म कल्प में १४ मन्वन्तर हैं ॥१०७॥

(मनुस्मृति में कहा हुआ ब्राह्ममान)

(व्याख्या) उत्पत्ति स्थिति प्रलयों का धर्म के साथ सम्बन्ध होने से और काल विभाग के बिना उत्पत्ति आदि की व्यवस्था बन नहीं सकती इस कारण धर्मशास्त्र में भी प्रसङ्गानुसार कालविभाग का व्याख्यान किया है। निम्न लिखित ब्राह्ममान मनुस्मृति में भी है ॥ जैसे–

५७५ अहोरात्रे विभजते, सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां, चेष्टायै कर्मणामहः ॥६५॥
५७६ पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥
५७७ दैवे रात्र्यहनी वर्षं, प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं, रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम् ॥६७॥
५७८ ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य, यत् प्रमाणं समासतः ।
एकैकशो युगानान्तु, क्रमशस्तन्निबोधत ॥६८॥
५७९ चत्वार्याहुः सहस्राणि, वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या, सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥

(मनुस्मृति अ० १)

५७५ सूर्य ही मनुष्य कोटि के मनुष्यों ने अनुभव किये ६० घड़ी के मानुष और देशस्थ प्राणियों ने अनुभव किये १२ बारह मास परिमित दिन रातों को दिन रात और दक्षिणायन उत्तरायण के भेद से पृथक् करता है। प्राणियों के सोने के विश्राम के लिये रात्रि और कर्मों की चेष्टा के लिये दिन उपयोगी हुआ प्रयोजन साधक होता है ॥६५॥

५७६ पितृलोकवासियों के रात दिन एक मास के होते हैं और एक २ पक्ष के दिए रात दो भाग होते हैं कर्म करने के निमित्त कर्म के साधनों से युक्त समय

(मनुस्मृति में कहाहुआ ब्राह्ममान)

५८० इतरेषुस सन्ध्येषु, ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्तन्ते, सहस्राणि शतानिच ॥७०॥

५८१ यदेतत् परिसङ्ख्यात- मादावेव चतुर्युगम्
एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥७१॥

५८२ दैविकानां युगानान्तु, सहस्रं परिसङ्ख्यया
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेय, तावती रात्रिरेवच ॥७२॥

५८३ तद्वै युग सहस्रान्तं, ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ।
रात्रिञ्च तावतीमेव, तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥७३॥

५८४ तस्य सोहर्निशस्यान्ते, प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।
प्रतिबुद्धश्च सृजति, मनः सदसदात्मकम् ॥७४॥

(मनुस्मृति अ. १)

कृष्ण पक्ष (अह) दिन और उनके सोने के लिये रात्रि शुक्ल पक्ष है ॥६६॥ ५५९

५७७ मनुष्य का एक वर्ष देवलोकवासियों का एक दिन रात होता है फिर उन दिन रातों का विभाग यह है कि उस एक वर्ष में उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि है अर्थात् छ महीने का दिन और छ महीने की रात्रि होती है ॥६७॥

५७८ अब ब्राह्म दिन रात का सङ्क्षेप से जो प्रमाण है और एक २ कृतादि युगों का जो प्रमाण है उसको क्रम से कहेंगे तुम सुनों और जानों ॥६८॥ दिव्य गणना से चार हजार वर्ष जो समय

५७९ उसको कृत युग वा सद्युग कहते हैं उस कृत युग की सन्ध्या नाम प्रातः-काल की पूर्ति में उतने सौ वर्ष होते हैं जितने उसमें हजार हैं और सायंकाल

रूप सन्ध्यांश में भी चार सौ वर्ष होते हैं ॥६९॥ दिव्य काल मानेन ४००० कृतयुग मानम् । चतुः शतवर्षाणि सन्ध्या, चतुः शत वर्षाणिच सन्ध्यांशः । एवम् ४८०० एतद्दिव्यै वर्षैः कृतयुग प्रमाणम् । मानुषवर्षैस्तु १७२८००० सप्तदशलक्षाण्यष्टाविंशति सहस्राणिच ॥

५८० सूत्रादेकैकं सहस्रं सन्ध्यासन्ध्यांशकयोरप्येकैकं शतं त्याज्यं तथा सति त्रेतायां दिव्यवर्ष प्रमाणम् १२९६००० तथा कलियुगस्य दिव्यवर्ष प्रमाणम् । १२०० । मानुषवर्ष प्रमाणन्तु ४३२००० इयमेका चतुर्युगी कथ्यते । महायुगानामप्यवस्था एव ॥ ७० ॥ ५८१ 'एकापायेन, इत्यास्यायमर्थः उत्तरोत्तरमेकैकंसहस्रं शतं च हित्वा (वर्तन्ते) पूर्वश्लोकद्वयेनोक्तं दिव्य मानेन मानुषचतुर्युगानां यत् प्रमाणम्-कृतस्य ४८०० त्रेतायाः ३६०० द्वापरस्य २४००, कलेश्च १२०० दिव्यमेकं युगंज्ञेयम् । इतिमानवधर्मशास्त्रभाष्ये स्व. श्री गुरुवर्य भीमसेन शर्माणि यह देवदेशस्थ प्राणियों का एक युग है अर्थात् यह दिव्य एक युग कहाता है ॥७१॥ ५८२ (भा०) दिव्य हजार युग का एक ब्राह्म दिन और उतनी ही बडी रात्रि होती है अर्थात् सृष्टि की

५८३ स्थिति और प्रलय में बराबर ही काल जानना चाहिये ॥७२॥ उस दिव्य सहस्र युग के पश्चात् अन्त समाप्ति नाश जिसका ऐसे धर्म के हेतु ब्राह्मदिन और उतनी ही बड़ी रात्रिको जो लोग यथावत् जानते हैं वे दिन रात वा सृष्टि प्रलय की व्यवस्था को जानने वाले कालज्ञ हैं ॥ ७३ ॥ ७३ का तात्पर्य यह है कि सृष्टि और प्रलय में परमेश्वर के क्या २ नियम हैं– उन नैसर्गिक नियमों से अविरुद्ध सृष्टि प्रलय जगत् को ठीक २ दशाओं में व्यवस्थित रखते हैं इन सृष्टि प्रलयों का वा दिन रातों का हमारे साथ क्या सम्बन्ध है यह सोचना आवश्यक है हमको भी दिनरात के प्रवाह से सृष्टि प्रलय नित्य काम में लाने होते हैं । परमेश्वर के नियमों के अनुसार हमको अपने मानुष सृष्टि प्रलयों को नित्य २ उपयोग में

लावें तो जानो कालज्ञ हैं ॥७३॥५८४वह सृष्टिकर्ता ब्रह्मा परमेश्वर प्रलयके समय सोता अर्थात् अपने स्वाभाविक कार्य से निवृत्त होता और ब्राह्म दिनरात रूप कल्पके समाप्ति में जागता अर्थात् अपने स्वाभाविक कार्य में प्रवृत्त होता और जागा हुआ कार्य कारण रूप वा स्थूल सूक्ष्म रूप अहङ्कार नामक प्रकृति के कार्य और स्थूल जगत् के कारण को रचता वा प्रवृत्त करता है ॥७४॥ (५८४)

(कल्प प्रमाणम्)

महायुग प्रमाण— १०००

४३२०००००० कल्प

चार अर्ब ३२ करोड़ वर्ष का एक कल्प होता है, इतने समय तक सृष्टि वर्तमान रहती है इसमें वेद का प्रमाण यह कि–

शतन्तेऽयुतं हायनान् द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ॥

॥ अथर्व. काण्ड ८ अनु. २ म. २१ ॥

इससे पूर्व सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन करते हुये परब्रह्म उपदेश करते हैं कि सृष्टि की स्थिति का हिसाब समझने के लिये इस प्रकार जानो कि वे वर्ष दश हजार सैकड़ा अर्थात् दस लाख तक शून्य देने के पश्चात् २, ३, ४, क्रम से लगाने से प्राप्त होते हैं ॥ यदि १२००० दिव्य वर्ष रूप युग के १० दशवें भाग को चार, तीन, दो, और १ से गुणाकरदें तो क्रम से सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग की दिव्य वर्ष संख्या होगी।

(अब काल की स्थिति कहते हैं)

४३२०००० × ७१ = ३०६७२०००० मनु वर्षमान।

और ३०६७१०००० × १४ = ४२९४०८०००० = ब्रह्मा का दिन मान। परन्तु १४ मनुओं में १५ सन्धि होती हैं और सन्धिकाल कृत वर्ष १७२८००० के तुल्य हैं यह युग ४३२०००० का २ × $\frac{1}{2}$ = $\frac{5}{2}$ सार्द्ध द्वयांश है इसलिये युग के सार्द्ध-द्वयांश को १५ से गुणादेने से २ × ४३२०००० × १५ = २५९२०००० यह षड्

५

गुण युगमान हुवा इसको पहिले सिद्ध हुवे ब्रह्मा के दिन में जोड़ने से ठीक ब्रह्मा का दिन ४३२००००००० हुवा। दिन मान दूना करने से अहोरात्र मान, यह तीससे गुणने से मास मान और १२ से गुणने से वर्षमान ३१११०४००००००० हुआ इस को १०० से गुणित करने से ब्रह्मा की आयु होती है।

४३२०००० × ४ = १७२८००० कृत	सत्य युग में ब्रह्मा, विष्णु, महेश
,, × ३ = १२९६००० त्रेता	त्रेता ,, में महाराज राम
,, × २ = ८६४००० द्वापर	द्वापर ,, में भगवान् कृष्ण
,, × १ = ४३२००० कलि	कृष्ण का उत्पत्ति काल द्वापर का अन्त
४३२०००० महायुग	और २८ वां महायुग जैसे

(आदर्श जीवन)

(द्वापर के अन्त में भगवान् कृष्ण का जन्म)

५८५ पुरा गर्गेण कथितं-मष्टाविंशतिमे युगे ।
द्वापरान्ते हरेर्जन्म, यदोर्वंशे भविष्यति॥ मत्स्य पु० ।
यदुवंशव० । अ० ४३

५८६ जाते रामेऽथ निहते, षड्गर्भे चातिदक्षिणे ।
सुदेवो हरि धींमान्, देवक्यामुदपादयत् ॥ लिङ्गपु ।
अ. ६९ । श्लो. ४६ ॥

५८७ परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ॥ गी. अ. ४
श्लो. ८ ॥

(कृष्ण जी की १६ कलाओं में से एक
कला के अंश कूर्म हैं)

५८८ सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे,बिभर्ति सिद्धार्थसमञ्च विश्वम् ।

---

५८५ मत्स्य पु० में लिखा है कि पूर्व काल में गर्ग मुनिने कहा था कि २८ वें युग और द्वापर के अन्त में कृष्ण जी का जन्म महाराज यदु के वंश में होगा ॥४३॥

५८६ जब दुष्ट कंस ने देवकी के ६ गर्भों का नाश किया था उसके पश्चात् ७ सातवें गर्भ में भगवान् कृष्ण जी का जन्म हुआ था ॥४६॥

५८७ गीता में श्री कृष्ण जी कहते हैं कि मैं धर्मात्माओं की रक्षा और दुष्टों के नाश करने तथा धर्म की स्थापनार्थ प्रत्येक युग में जन्म लेता हूँ ॥८॥

(व्याख्या) भगवान् कृष्ण को धर्म के स्थापनार्थ ऐसी इच्छा योग्य थी भगवान् कृष्ण जी का जन्म मथुरा में हुआ था। भगवान् कृष्णजी जीवन्मुक्त योगी थे परन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण उनको ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर उन्हीं की एक कला का अंश कूर्म राज को मानता है॥ अर्थात् कूर्म वंश चन्द्रवंशी है॥

कूर्मे च शिषो मशके गजो यथा, कूर्मश्च कृष्णस्य कला कलांशः ॥८॥

ब्रह्म वै० । ब्रह्मखं० । श्लो. ८॥

५८९ कूर्मस्य नाम्ना मरुदेव कुन्तिभोजोऽथैनां वर्द्धयामास सम्यक् ।

तत्राऽऽगच्छङ्करांशोऽति कोपो, दुर्वासास्तं प्राह वासयेति ॥

भारततात्पर्यनिर्णय । अ. ११ । श्लो. १४९ ॥

५८८ हजार शिर वाले शेषनाग के शिरपर सर्पपों के दाने के समान यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया हुआ है और शेष कूर्म पर है जैसे मशक पर (मशा) । हाथी हाथी को मशा कुछ नहीं भार है ऐसे ही शेष के लिये जगत् है । कृष्णजी यदुवंशान्तर्गत वृष्णि वंश में उत्पन्न हुए थे । " कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः " ॥ कूर्म कृष्ण जी की १६ कलाओं में से एक कला के अंश हैं ॥८॥ (व्याख्या) शेष का अर्थ ईश्वर है उसकी सृष्टि में असंख्यात शिर हैं यह सहस्रशीर्षा का अर्थ है । कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः " कृष्ण का उत्पत्ति काल द्वापर का अन्त आता है ।

५८९ भारततात्पर्यनिर्णय के निर्माताने मरुत् कूर्म नाम से कुन्तिभोज को लिखा है । मरुत् का अर्थ वायु है । महा भा० शा० प० अ० २०८ में २३ वां श्लोक 'आदित्याः क्षत्रियास्तेषां, विशश्च मरुतस्तथा " यहां मरुद्गण वैश्य हैं ऐसा कहा है । वैश्यवर्ण का मरुत् (वायु) के साथ सम्बन्ध है यह मद्रु गण वैश्य हैं और मरुत् शब्द कूर्म के साथ अन्वित है इसलिये कूर्म कुल में कूर्म वैश्य भी थे । सुश्रुत में कहा है कि " रजो बहुलो वायुः " वायु में रजो गुण अधिक है और क्षत्रिय भी रजोगुण प्रधान होता है । कूर्म अर्थात् शूर वीर बहुकर्मा कुन्तिभोज था ॥

शेष और बैल किसका बच्चा है तो कहेंगे कश्यप कद्रू और बैल गाय का कश्यप से मरीचि, मरीचि से मनु मनुसे विराट् विराट् से ब्रह्मा और फिर ब्रह्मा

५९० ज्यामघस्याऽभवद् भार्या, शैब्या शीलवती सती ।
सा चैव तपसोग्रेण, शैब्या वै सम्प्रसूयत ॥३७॥
(लिङ्ग पु. । अ. ६८ श्लो. ३७)

५९१ सुतं विदर्भं सुभगा, वयःपरिणता सती ।
राजपुत्र सुतायान्तु, विद्वांसौ क्रथकैशिकौ ॥
पुत्रौ वैदर्भराजस्य, शूरौ रणविशारदौ ॥३९॥

५९२ क्रथो विदर्भस्यसुतः कुन्ति स्तस्यात्मजोऽभवत ।
कुन्तेर्धृन्तस्ततोजज्ञे, रणधृष्टः प्रतापवान् ॥४१॥
(लिङ्ग पु० । अ० ६८)

का पुत्र विराट् हुवा ब्रह्मा आदि सृष्टि का था । जब शेष का जन्म न हुआ था उसके पहिले पांच पीढ़ी हो चुकी थीं तब किसने धारण की थी अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी तो " तेरी भी चुप मेरी भी चुप " ॥ स० प्र० ८ वां समु० ॥

वास्तव में— मध्ये समन्ता दण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं, ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥
(सू० सि०)

ब्रह्म की धारणात्मिका परम शक्ति को धारणा करता हुवा यह भूगोल ब्रह्माण्डान्त र्गत केन्द्र के बीच आकाश में स्थित है

५९० लिङ्ग पुराण पूर्व भाग वंशानुवर्णन अध्याय ६८ श्लोक. ३२ में रुक्म कवच के ५ पांच पुत्र उत्पन्न हुए लिखे हैं । १-रुक्मेषु २ पृथुरुक्म, ३ ज्यामघ ४ परिघ ५ हरि । शीलवती शैब्या नाम्नी ज्यामघ की भार्या में उसके उग्रतप से विदर्भ पुत्र उत्पन्न हुआ ।

५९१ एवम् विदर्भ राज के शूरवीर और रण विशारद विद्वान् पुत्र क्रथ और कौशिक हुए ॥३९॥

(यदुवंश चन्द्रवंशान्तर्गत होने से कुन्तिभोज चन्द्रवंशीय कूर्म ऋषि के वंश में)

५९३ कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्वतानां महारथः !
तस्यान्वये सम्भूता भोजा वै देवतोपमाः ॥ लिङ्ग पु० । सोम वं. अ. ६९ श्लो. ९

५९४ शूरस्य पुत्री गुणशीलरूप-युक्तादत्ता सख्युरेव स्वापित्रा । नाम्ना पृथा कुन्तिभोजस्य तेन, कुन्ती भार्या पूर्वदेहेऽपि पाण्डोः

भारत तात्पर्यनि. । अ. ११ । श्लो. १४८ ॥

(सूत उवाच)

५९५ शतं पुत्रास्तु तस्येह, तालजङ्घाः प्रकीर्तिताः ।
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः॥१३॥

---

५९२ विदर्भ का पुत्र क्रथ, क्रथ का पुत्र कुन्ति, (इसी कुन्ति का नाम पीछे) कुन्ति भोज हुवा क्यों कि भोज के पास इन्होंने पालन पोषण पाया) वास्तविक नाम कुन्ति था, यह कुन्त का पुत्र कुन्ति यदुवंशीय महाराज सात्वत के वंश में उत्पन्न भोजों में पालन पाने से कुन्तिभोज कहाया- मथुरा नगरी में प्रथम यदुवंशीय लोग भोज के अधिकार में रहते थे पीछे कृष्णजी के प्रताप से वही मथुरा यादवों की हो गयी ऐसा राजपूत इतिहास में लिखा है ॥

५९३ महाराज सात्वत के वंश में कीर्तिमान् महा तेजस्वी देव सदृश भोज और भोज वंशीय लोग उत्पन्न हुये थे ॥९॥

५९४ शूर—वृष्णि का पुत्र था "वृष्णेः शूरस्ततोऽभवत्"॥ लिङ्ग. पु. अ.६९ श्लो. ३२ भगवान् कृष्णजी वृष्णि वंश में उत्पन्न हुवे थे । कुन्ती कृष्ण जी की बुआ थी । भारततात्पर्य के निर्णयानुसार कुन्तिभोजने कुन्ति का विवाह पाण्डु के साथ किया था कुन्तिभोज को भारत तात्पर्य निर्णय अ. ११ श्लो. १४९ में , मरुत

५१६ वृषप्रभृतयश्चान्ये, तत्सुताः पुण्यकर्म्मणः ।
वृषो वंशकरस्तेषां, तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥१४॥
५१७ मधोः पुत्रशतञ्चासीत, वृष्णिस्तस्य तु वंशमाह ।
वृष्णोस्तु वृष्णयः सर्वे, मधोर्वै माधवाः स्मृताः ॥
यादवा यदुवंशेन, निरुच्यन्ते तु हैहयाः ॥१५॥
५१८ तेषां पञ्चगणा ह्येते हैहयानां महात्मनाम् ॥१६॥
वीतिहोत्राश्च हर्यातास्तालजङ्घास्तथैवच ॥१७॥
५१९ शूरश्च शूरसेनश्च, वृषः कृष्णस्तथैवच ।
जयध्वजः पञ्चमस्तु, विख्याता हैहयोत्तमाः ॥ ॥१८॥

कूर्म लिखा है। इस प्रकार कूर्म कुल का चन्द्रवंश के साथ सम्बन्ध (रिश्तेदारी) का प्रमाण भी मिलता है। क्रथ का पुत्र कुन्ति और क्रथ विदर्भ का पुत्र था और विदर्भ ज्यामघ का पुत्र और ज्यामघ रुक्म कवच का पुत्र था– लिङ्ग पु॰ वंशानु. अ० ६८ श्लो. ३२ से। " शुनको यस्य शौनकः ॥" विष्णु पुराण आदि में चन्द्रवंशीय गृत्समद का पौत्र (नाती) शौनक लिखा है और कूर्म ऋषि यजुर्वेद अ० ३४ में मन्त्र द्रष्टा ऋपि लिखते हैं, ये कूर्म ऋषि चन्द्रवंशीय गृत्समद के पौत्र ही हो सकते हैं क्यों कि सूर्यवंश में जो गृत्समद् के पुत्र कूर्म ऋर्षि हुवे हैं उनके पिता राजा वीतहव्य हैं और इन के पिता शुनहोत्र के पौत्र थे सात्वतवंश यदुवंशान्तर्गत है। और यदुवंश चन्द्रवंशान्तर्गत होने से कुन्तिभोज चन्द्रवंशीय, कूर्म ऋषि के कुल में ही होते हैं। पृथा शूर की पुत्री थी, उसे शूरने अपने मित्र कुन्ति को दिया था, तब से पृथा का नाम कुन्ती हो गया, भोज के समीप रहनेसे क्रथ के पुत्र भी कुन्ति थे,वे कुन्तिभोज कहाये। ये कुन्तिभोज पाण्डवों की ओर से महारथी हो कर महाभारत के युद्ध में आये थे ॥ ५९४ ॥

६०० शूरश्च शूरवीरश्च, शूरसेनस्य चानघाः ।
शूरसेन इति ख्याता, देशास्तेषां महात्मनाम् ॥ ॥१९॥
॥ लिङ्ग पु० । अ० ६९ ॥

(महात्मा वसु की भूमि में सुमागधी नदी के
तटपर कूर्म ऋषि की तपश्चर्या)

६०१ माल्यमालिनीभक्तस्य, कूर्मनाम्नो ऋषेः कुले ।
जातः प्रथमतोराजा, प्राणनाथः इतीरितः ॥ ॥६४॥
(स्कन्द पु० । सह्याद्रिख. । अ० ३३ । श्लो. ६४)

...सात्वत के तालजङ्घादि १०० पुत्र, तालजङ्घ के नाम से प्रसिद्ध हुए, इन में सबसे बड़ा पुत्र राजा वीति होत्र था ॥५९५॥

५९६ पुण्यकर्मा वीति होत्र के वृष आदि अन्य पुत्र हुए उन सबमें वृष वंशधर हुआ,

५९७ वृष का पुत्र मधु ॥ १४ ॥ (५९६) मधु के १०० पुत्र उनमें वृष्णि वंशधर था वृष्णि से वृष्णि वंश और मधु से माधव वंश और यदु से यादव वंश प्रचलित हुआ उन महात्मा हैहयों के वक्ष्यमाण ५ पांच गण हैं ॥१६॥

५९८ वीतिहोत्र १ गण, हर्यात २ गण, भोज ३ गण, अवन्ति ४ गण शूरसेन ५गण

५९९ वैसेही तालजङ्घ, परन्तु तालजङ्घ ५ वें गण में नहीं केवल नामार्थ है जैसे शूरसेन विख्यात हुए वैसे ही तालजङ्घ भी ॥ १७ ॥

शूर, शूरसेन,वृष, कृष्ण और पांचवें जयध्वज ये हैहयवंश में अति श्रेष्ठ हुवे १८॥

६०० शूरसेन के शूर और शूरवीर उत्पन्न हुए, उन महात्मा हैहयों के देश शूरसेन के नाम से विख्यात हुए थे ॥१९॥

व्याख्या— महाभारत सभापर्व में युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से राजसूय यज्ञ के करने के विषय में पूछा, श्रीकृष्णजीने कहा कि भरतनन्दन राजाययाति के भोजवंश का विस्तार उनके श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव से चारोदिशाओं में फैला हुवा है इसका आशय यह कि राजसूय यज्ञ करो उसका समय है।

६०२ सुमागधी नदी रम्या, मगधान् विश्रुता ययौ ॥
पञ्चानां शैलमुख्यानां, मध्ये मालेव शोभते ॥ ॥८॥

६०३ सैषा हि मागधी राम ! वसोस्तस्य महात्मनः ।
पूर्वाभिचरिताराम ! सुक्षेत्रा सस्यमालिनी ॥ ॥९॥
(वाल्मीकियरा० । बाल कां. । सर्ग ३२) ❀

---

६०१ माल मालिनी के भक्त कूर्म नामक ऋषि के कुल में पहिला राजा प्राणनाथ हुआ ॥६४॥ (व्याख्या) स्कन्द पुराणान्तर्गत सह्याद्रि खण्ड अध्याय ३३ चन्द्र वंश में शाखा रूप अस्सी ८० कुलों में कूर्म कुल भी है ॥

६०२ सुमागधी (शोणा) नदी है, जो पांच मुख्य पर्वतों के बीच में माला- इव, शोभते । गोलाकार पुष्प मालाओं के समान शोभायमान है ॥८॥

६०३ हे राम उस महात्मा वसु की यह मागधी भूमि है और हे राम यह सुन्दर क्षेत्र वाली उपजाऊ भूमियुक्त पूर्व की ओर बहती है ॥९॥

(व्याख्या) "मालमालिनीभक्तस्य" इसका अर्थ यह हुआ कि कूर्म नामक ऋषि माल मालनी अर्थात् पांचों पर्वतों के बीच शोभादेनेवाली मागधी नदी के तटपर रहते थे । यह मागधी नदी पुष्पों के समान पहाड़ों के बीच में शोभा को प्राप्त होरही है कूर्म ऋषि यहीं तप करते थे । 'अरण्य गुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः" ॥ न्या० । अ० ४ । सू. ४२ ॥ योगाभ्यास आदि का उपदेश (अरण्य) जङ्गल (गुहा) गुफा और (पुलिन) नदी आदि के तट पर ही उत्तम होता है । राजा कुश ब्रह्मा का पुत्र और राजा कुशका पांचवा पुत्र वसु ने सुमती नाम की नगरी बसायी ये कूर्म ऋषि चन्द्रवंशीय महात्मा वसुकी मागधी नदी के किनारे तप करते थे ॥

❀ किन्हीं के विचार में ये श्लोक प्रक्षिप्त हैं ॥ ल० रा० शर्मा

(राजर्षि कुशकुल कूर्मकुलेवर्णनम्)
(राजर्षि कुश के कुल में कूर्मकुल का वर्णन)

६०४ ब्रह्मयोनिर्महानासीत, कुशोनाम महातपाः ।
आक्लिष्टव्रतधर्मज्ञः सज्जनप्रतिपूजकः ॥१॥
६०५ स महात्मा कुलीनायां, युक्तायां सुगुणोल्वणान् ।
वैदर्भ्यां जनयामास, चतुरः सदृशान् सुतान् ॥ ॥२॥
६०६ दीप्तियुक्तान् महोत्साहान्, क्षत्रधर्मचिकीर्षया
तानुवाच कुशः पुत्रान, धर्मिष्ठान् सत्यवादिनः ॥ ॥३॥
६०७ कुशस्य वचनं श्रुत्वा, चत्वारो लोकसम्मताः ।
निवेशं चक्रिरे सर्वे, पुरीणांनृवरास्तदा ॥४॥
६०८ कुशाम्बस्तु महातेजाः, कौशाम्बीमकरोत्पुरीम्
कुशनाभस्तु धर्मात्मा, पुरञ्चक्रे महोदयम् ॥५॥
६०९ आधूर्तरजसो राम ! धर्मारण्यं महीपतिः ।
चक्रे पुरवरं राजा, वसुर्नाम गिरीव्रजम् ॥६॥
६१० एषा वसुमती राम ! वसोस्तस्य महात्मनः ।
एते शैलवराः पञ्च, प्रकाशन्ते समन्ततः ॥ ॥७॥
(वा० रा० । सर्ग ३२ । श्लो १-७)

६०४ पूर्वकाल में सज्जनों का प्रति पूजक, कठिन व्रतों के धर्म की जनाने वाला और महातपस्वी ब्रह्मा का पुत्र एक कुशनाम का बड़ा भारी राजा था ॥१॥ ६०५ उस महात्मा राजा ने अपने समान चार पुत्र उत्पन्न किये ॥२॥ ६०६ राजा ने कहा कि हे पुत्रो ! तुम प्रजा पालन करो इससे तुम बड़े भारी धर्म को प्राप्त होओगे ॥३॥ ६०७ उन नर श्रेष्ठ चारों ने कुश के वचनों को सुनकर नगरों की स्थापनाकी॥४॥६०८-६०९ तेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी नगरी धर्मात्मा कुशनाभने महोदय नाम नगर और राजा वसुने गिरीव्रज नाम नगर बसाया ॥५॥ ॥६॥

(कूर्म कुल का वर्णन)

६११ सुमागधी नदी रम्या, मगधान् विश्रुता ययौ ।
पञ्चानां शैलमुख्यानां, मध्ये मालेव शोभते ॥८॥
६१२ सैषा हि मागधी राम ! वसोस्तस्य महात्मनः।
पूर्वाभिचरिताराम ! सुक्षेत्रा सस्यमालिनी ॥९॥
वा. रा. । बा. कां. । सर्ग ३२
६१३ मालमालिनीभक्तस्य, कूर्मनाम्नो ऋषेः कुले ।
जातः प्रथमतो राजा, प्राणनाथ इतीरितः ॥
(स्क. पु. । सह्याद्रि खं. । अ. ३३ । श्लो. ६४)
६१४ तस्य वंशे नृपो जज्ञे, बाहुशाली इतीरितः
तदन्वये नृपो जातो, दीर्घबाहुरिति श्रुतः ॥
६१५ तस्माच्च वीरसेनाद्या, बभूवुः प्रीतिवर्द्धनाः ॥
स्कं. पु. । सह्याद्रि खं. अ. ३३ । श्लो. ६५ । ६६ ॥

६१० हे राम उस महात्मा वसु की यह वसुमती नाम नगरी है और पांच उत्तम पर्वत इसके चारों ओर प्रकाश हो रहे हैं ॥७॥

६१० से ६१३ के अर्थ पूर्व होने से यहाँ नहीं लिखे गये ॥ माल मालिनी के भक्त कूर्म नाम के ऋषि के कुल में पहिला राज प्राणनाथ हुवा
६१४ राजा प्राणनाथ के वंश में राजा बाहुशाली और बाहुशाली के वंश में
६१५ राजा दीर्घ बाहु हुआ, दीर्घ बाहु के प्रीति बढ़ाने वाले वीरसेनादि पुत्र हुए ॥६१५॥

॥ इति राजर्षि कुशकुलोत्पन्नस्य मागधी
निवासिनस्तपस्विनः कूर्मस्य कुलाख्यानम् ॥
यह राजर्षि कुश के कुल में मागधी निवासी तपस्वी कूर्म का कुल कहा गया ॥

(रुक्मिणी के स्वयम्वर में महाकूर्म राजा का आगमन)

६१६ जरासन्धः सुनीथश्च, दन्त वक्रश्च वीर्यवान् ॥६॥
साल्व सौभपतिश्चैव, महाकूर्मश्च पार्थिवः
क्रथकैशिकमुख्याश्च, नृपाः प्रवरवंशजाः ॥७॥
हरिवंश पु० । अ० ५३ । श्लो० ६ । ७॥

(तत्र घोर आङ्गिरस का मन्त्रद्रष्टृत्व विषय)

६१७ तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय, देवकी पुत्रायोक्त्वो वाचापिपासएव स बभूव, सोन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रति पद्येत । क्षितमस्यच्युतमसि प्राणास ॐ शितमसीति । तत्र द्वे ऋचौ भवतः । आदित्प्रत्नस्य रेतसः, उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्तः उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योति रुत्तमिति ॥ छा० । खं. १७ । मं. ७॥

६१६ जरासन्ध, सुनीथ, पराक्रमी दन्तवक्र, साल्व, सौभपति, राजा महाकूर्म (मरुत् कुन्ति भोज) और श्रेष्ठ वंशोत्पन्न क्रथ, तथा कैशिकादि मुख्य २ राजे महाराजे रुक्मिणी के स्वयम्वर में आये थे ॥६। ७॥ क्रथ और कैशिक राजा विदर्भ के पुत्र हैं। और राजा विदर्भ ज्यामघ के पुत्र थे। विदर्भ से विदर हो गया है जो दक्षिण में निजाम राज्य में आज कल है ।

(व्याख्या) भगवान् कृष्ण को हुवे पांच सहस्र वर्षों से कुछ अधिक समय हुवा उस समय यदुवंशीय राजा महाकूर्म रुक्मिणी के स्वयम्वर में विद्यमान थे ।

६१७ घोर आङ्गिरस कृष्ण जी से बोले, हे कृष्ण ! मनुष्य अन्त समय इन तीनों बातों का अवश्य स्मरण रखे भूले नहीं। वे तीन बाते ये हैं हे परमात्मन् ।

(मन्त्रद्रष्टा घोर आङ्गिरस)

६१८ 'इमामृषिप्रभृतिं सातयेधाः' इति पर्यासः। तस्य दशमी मुद्धरति ।घोरस्य वा आङ्गिरसस्यैतदार्षं नेद्यज्ञं निर्दहेत्। शंस्यमानं पिबावर्धस्व तवघा सुतास इति यजति। एतामेव तद्देवतां यथा भागं प्रीणाति। वषट् कृत्यानुवषट् करोति। प्रत्येवाभि मृशन्ते। नाप्याययन्ति, नह्यनाशशंसा, सीदन्ति ॥

(गो० । उ० । प्र० ४ । ब्रा. ३०)

(मन्त्रद्रष्टा घोर आङ्गिरस)

६१९ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्व सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

रुद्राष्टाध्यायी । परिशिष्ट भा० । अ० १० मं. ८॥

ऋग्वेद मण्डल ३ सू० ३६ में मन्त्र १-१० पर्यन्त के घोर आङ्गिरस ऋषि और मन्त्र ११ के गाधि पुत्र विश्वामित्र ऋषि हुए हैं। निम्न मन्त्रों के मन्त्र द्रष्टा घोर आङ्गिरस हैं।

आप 'क्षितमसि' अखण्डनीय मेरे आत्मा हैं। 'अच्युतम् असि' आप अविनाशी स्वरूप हो। ३ प्राण संशितम् असि' प्रशंसित जीवन हो।

घोर आङ्गिरस के लोग इस समय घुरेन कूर्मियों के नाम से लोक में प्रसिद्ध हैं। घुरेन कूर्मि घोर आङ्गिरस कूर्म ऋषि के कुल में उत्पन्न हुवे। इस ऋषि का वास्तविक नाम घोर था इसीलिये घुरेन कूर्मी यही नाम अब भी विख्यात है परन्तु जब यह घोर आङ्गिरसों में जाकर मिल गये तब से घोर आङ्गिरस कहाये। घोर ने समाधिस्थ होकर वेद मन्त्रों के अर्थों को जाना था इसलिये मन्त्र द्रष्टा पदवी इनको मिली ॥७॥

६१८ (आदित् प्रत्नस्य) ये मंत्र खण्ड प्रमाण के लिये हैं।

(टि०) घोर आङ्गिरस और भगवान् कृष्ण जी समकालीन हैं वा नहीं! यह अभी विचार कोटि में है ल० श०

६२० इमामूषु प्रभृतिं सातयेधाः शश्वच्छश्वदूतिर्याचमानः सुते सुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतोऽभूत् ॥

(मन्त्रद्रष्टा घोर आङ्गिरस)

६२१ इन्द्राय सोमा प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभि वृषपर्वा विहायाः प्रयम्यमानान् प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥

६२२ पिबा वर्धस्व तवघा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उते मे । यथा पिबः पूर्व्यां इन्द्र सोमाँएवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥२॥

---

६१९ ऋग्वेद मण्डल दो के मन्त्र द्रष्टा कूर्म ऋषि हैं और ऋग्वेद मण्डल (३, सूक्त ३६ मन्त्र १–१० पर्यन्त के मन्त्र द्रष्टा ऋषि घोर आङ्गिरस हैं । ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त ३६ आरम्भिक मन्त्र 'इमामूषि प्रभृति में है। इस मन्त्र की १० वीं ऋचा 'असमे प्रयन्धि०' है । गोपथकार कहते है कि यह घोर आङ्गिरस का मन्त्र है अर्थात् वे इस के ऋषि हैं । उनका यह कथन है कि मनुष्य कभी भी यज्ञ का त्याग न करे । 'शंस्यमानं पिबावर्धस्व ' इस से यजन करे, इसी देवता को यथाभाग तृप्त करे । वषट् कर अन वषड् करे । यज्ञ न करने वालों की उन्नति नहीं होती । जो यज्ञ कर्म से अनभिज्ञ हैं वे यज्ञ में न बैठें ।

६२० इमामूषि० मन्त्र का भावार्थ-जो मनुष्य विज्ञान का प्रारम्भ करके सूक्ष्म कारण पर्यन्त व्यापक परमाणु रूप पदार्थों को जानकर उपयोग करते हैं वे इस संसार में उन्नति को प्राप्त होते हैं और जो विद्वान् जनों से केवल विद्या की याचना करते हैं वे बहुश्रुत होते हैं ॥१॥

६२१ हे मनुष्यो इस संसार में जैसे श्रेष्ठ यथार्थ वक्ता पुरुष दुष्ट व्यवहार का त्याग और श्रेष्ठ आचरण का ग्रहण करके नियमित आहार विहार रोग रहित और अधिक अवस्था वाले होते हैं वैसे ही आप लोग भी हूजिये ॥६२१॥

६२३ महाअमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः। नाह विव्याच पृथिवीच नेनं यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४॥

६२४ महाउग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन। इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्रजायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥

(मंत्रद्रष्टा घोर आङ्गिरस)

६२५ प्रयन् सिन्धवः प्रसवं यथाऽऽयन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥

६२२ जो मनुष्य उत्तम प्रकार संस्कार युक्त रसों का पान करें उनकी वृद्धि होवे और जो वृद्धि को प्राप्त होकर धर्म का आचरण करें वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥३॥

६२३ जो शरीर आत्मा सेना मित्र बल आरोग्य धर्म और विद्या की वृद्धि करता है वही सबका उपकार करता है ॥४॥

६२४ जो विद्वान् पुरुष सुपात्र और कुपात्र की परीक्षा करके सत्कार और असत्कार करता है उसी के सब पशु आनन्द और उपकार युक्त होते हैं ॥५॥

६२५ जो मनुष्य निर्वैर होकर सब का उपकार करते हैं उनके प्रति जैसे नदियां समुद्र को और जल अन्तरिक्ष के सम्मुख को प्राप्त होते हैं वैसे मनुष्य जाते हैं, उनसे उत्तम शिक्षा को प्राप्त उत्तम प्रकार से सींचे गये औषधियों के समूह के सदृश सब को सुख देने को समर्थ होते हैं ॥६॥

६२६ समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रै र्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः
॥७॥

६२७ ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि
अन्ना यदीन्द्र प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वां अवृणीत
सोमम् ॥८॥ (ऋ. । मण्ड. २ सू. ३६)

(मंत्रद्रष्टा घोर आङ्गिरस)

६२८ आ तू भर आकिरेतत् परिष्ठात् विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम्
। इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्रयन्धि ॥९॥

६२९ अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीरांछश्वत इन्द्र
शिप्रिन् ॥१०॥
(ऋ. मण्ड. २ सू. ३६)

६२६. जैसे सब ओर से जल आदि का ग्रहण कर नदियां वेग से समुद्र को प्राप्त होकर रत्नवाली और शुद्ध जलयुक्त होती हैं वैसे ही ब्रह्मचर्य से विद्याओं को धारण करके तीक्ष्ण बुद्धि से पूर्णज्ञान वाले ही पवित्र हुए परमेश्वर को प्राप्त होकर सिद्धियों से परिपूर्ण शुद्ध आनन्दी मनुष्य होते हैं ॥७॥

६२७ जो पुरुष गम्भीराशय से युक्त सूर्य के सदृश प्रतापी ऐश्वर्य के धारण करने वाले अपने और दूसरे के दोषों को नाश करके ऐश्वर्य का स्वीकार करते हैं वे ही प्रसन्नात्मा होते हैं ॥८॥

६२८ विद्वान् जनों को चाहिये कि सम्पूर्ण जनों के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि आप लोग दोषों को त्याग गुणों के धारण और धन तथा ऐश्वर्य को प्राप्त होके अन्य सुपात्र पुरुषों के लिये देवें ॥९॥

(मन्त्र द्रष्टा-घोर आङ्गिरस)

६३० शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ११

६३१ घोरा ऋषयो नमो अस्मभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्।
बृहस्पतये महिषद्युमन्नमो विश्वकर्मन्। नमस्ते पाह्यस्मान् ॥४॥ अ.। कां. २। ३५ अनु ६ मं. ४।

६२९ वही उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् लोग हैं कि जो लक्ष्मी का विभाग करके अन्य जनों को बाट के फिर आप भोजन करते हैं और मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य के उपदेश से सौ वर्ष की अवस्था वाले करके सम्पूर्ण कर्मों मे उत्साही भयरहित और पुरुषार्थी करते हैं॥

६३०-६३१ सूक्ष्मदर्शी पुरुष (घोराः) [पापकर्मोपरक्रूर होते हैं] उन ऋषियों को अन्न वा नमस्कार हो क्यों कि उन [ऋषियों] के मन की आंख निश्चय करके यथार्थ [देखने वाली] है, हे पूजनीय परमेश्वर बडे २ ब्रह्माण्डों के स्वामी [आप] को स्पष्ट नमस्कार है ॥४॥

उपर्युक्त मन्त्रार्थ श्री पं. क्षेम करणदास कृत है। छान्दोग्योपनिषद् के खण्ड १७ मन्त्र ७ जो पूर्व लिखा है उसमें 'देवकीपुत्राय कृष्णाय, यह पद आया है परन्तु गोपथ ब्राह्मण उत्तर भाग प्रपाठक ४ ब्राह्मण (३) में (जहां कि घोर ऋषि का नाम है) वहां यह पद नहीं है अतः पीछे से प्रक्षेप किया हुआ प्रतीत होता है ॥४॥

(इति श्रीकूर्मकुलोत्पन्नस्य घोराङ्गिरसस्य साक्षात्कृता मन्त्राः समाप्ताः)

ये कूर्मकुलोत्पन्न घोर आङ्गिरस के साक्षात् किये हुवे मन्त्र समाप्त हुए।

(वेद में कृषिविद्या का उपदेश)

६३२ कृषीवलाः [कच्छपः] य० । अ० ३५ । मं. १३ ।

६३३ अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेय ँ स्वस्तये ।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणोभव ॥१३॥

विश्वामित्रः । सीता ।

६३४ सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ य. अ. १२

६३५ युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिराच श्रुष्टिः सभराऽ असन्नो नेदीय इत्ऽसृण्यः
पक्वमेयात् ॥ (य० अ० १२ । मं. ६८ ॥)

६३२ जो विद्वान् योगी लोग ध्यान करने वाले हैं विभाग से योगाभ्यासोपासनार्थ नाड़ियों में परमात्मा के जानने के लिये अभ्यास करते हैं, तथा जो योगयुक्त कर्मों का विस्तार करते हैं, वे विद्वान् और योगियों के बीच में सुखपूर्वक स्थित होकर परमानन्द को प्राप्त होते हैं ६७

६३३ का अर्थ— हे उपासक लोगो ! तुम योगाभ्यास तथा परमात्मा के योग से नाड़ियों का ध्यान करके

६३४-६३५ परमानन्द को विस्तार करो इस प्रकार करने से योनि अर्थात् अपने अन्तःकरण को शुद्ध और परमानन्द स्वरूप परमेश्वर में स्थिर करके उसमें उपासना विज्ञान से विज्ञान रूप बीज को अच्छे प्रकार बोओ तथा पूर्वोक्त प्रकार से वेद वाणी करके परमात्मा में युक्त होकर उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना में प्रवृत्ति करो तथा तुमलोग ऐसी इच्छा करो कि हम उपासना योग के फल को प्राप्त हों और हम को ईश्वर के अनुग्रह से वह फल शीघ्र ही प्राप्त हो कैसा

(वेद में कृषि का उपदेश)

६३६ इन्द्रः सीतां निगृह्णातु, ता पूषा मभिरक्षतु सा नः पयस्वती दुहा मुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥४॥ अथर्व० । कां. ३ ।

६३७ शुनं सुफला वितुदन्तु भूमिं, शुनं की नाशा अ. नु यन्तु वाहान् । अथर्व । (३ । १७ । ५ शुना सीरा हविषा तोषमाना, सुपिप्पला ओषधीः कर्तु मस्मै ॥५॥

६३८ शुनं वाहाः शुनंनरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुन मष्ट्रा मुदिङ्गय ॥६॥

वह फल है कि जो परिपक्व शुद्ध परमानन्द से भरा हुआ और मोक्ष सुख को प्राप्त करने वाला है अर्थात् उपासना योग वृत्ति सब क्लेशोंको नाश करने वाली और सब शान्ति आदि गुणों से परिपूर्ण है उन उपासना योग वृत्तियों से परमात्मा के योग को अपने आत्मा में प्रकाशित करो ॥७॥ ॥६२०॥

ऋग्वेद में कृषिविद्या— जुवा का निषेध और खेती का उपदेश– । "अक्षै-कृष्यस्व वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः ॥ ऋ० ।१०।३४।१३। 'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः ॥ अ० । १२ । १ । १२ ॥

कल्याण करने वाला फार– शुनं सु फाला विकृषन्तु भूमिं, शुनं की नाशा अभियन्तुवाहैः । शुनं पर्जन्यो मधुनापयोभिः, शुनासीरा शुनमस्मा सुधत्तन् ऋ. । ४ । ५७ ।८ ॥ शुनः सुफाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वा है, शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥ य. अ. १२ मं. ६९ कृषि में आत्मिक शान्ति— 'सोदक्रामत् सामनुष्यानागच्छत् ताँ मनुष्या उपाह्वयन्ते, रावृत्ये हीति ॥९॥ तां पृथ्वीं वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सत्यं चाऽधोक् ॥ ११ ॥ ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति ॥ १२ ॥ अथर्व ८ । १३ । ९ । १२ ॥ सुसस्याःकृषीस्कृधि कृषीः ॥ य. । अ. ४ । मं. १० ॥ राजा का कर्तव्य– नो राजा निकृषिं तनोतु ॥ अ. । ३

। १२ । ४ ॥ वेद में हल २७ बैलों से वाला हल–पड् योग ·········सीरम आहुः ॥ अ० । ८ । ९ । १६ ॥ पड्गवेन, कृपील ॥ तैत्तिरी. सं. । ५ । २ ॥ बारह बैलों से चलाये जाने वाला हल – द्वादशगव सीरम् तैत्तिरीय सं. । १ । ८ । ७ । १ ॥ द्वादशगवेनसीरं वा, द्वादशायोगम् ॥ काठक संहि० । १५ । २ ॥

(कृषिविद्या विषयः)

६३६ कृषा के विषयमें यथा बीजमुर्वरायां कष्टे फालेन रोहति । एवामयि प्रजापशयवोऽन्न-मन्नं विरोहतु (अ० । १० । ६ । ३३ ॥)

६३७ शुनासीरे हस्म मे जुषेशाम् । यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमा मुपसिञ्चतम् ॥७॥

६३८ सीते वन्दामहेत्वार्वाची सुभगे भव । यथानः सुफला सुवः ॥८॥

६३९ घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । सानः सीते पय साऽस्मावववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना अ० । कां० ३ । अनु. ४ । सू. १७ । मं. १–९ ॥

(इति कृषि विद्यायां वेदस्य प्रामाण्यं समाप्तम्)

यह कृषि विद्या विषय में वेदका प्रमाण समाप्त हुआ ।

यह कृषि विद्या के विषय में वेद का प्रमाण समाप्त हुआ ॥

(कुशिक के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र)

६३९ कृतादिषु युगाख्येषु, सर्वेष्वेव पुनः पुनः ।
वर्णाश्रम व्यवस्थानं क्रियते प्रथमन्तुवै ॥१७॥ ॥१॥
वायु पु० । अ० ६१ । श्लो १७॥

६४० विश्वामित्रन्तु दायादं, गाधिः कुशिकनन्दनः (२)
जनयामास पुत्रन्तु, तयोर्विद्या शमात्मकम्
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां, योसप्तर्षितां गताऽयं ॥ (३)
हरिवंश पु० । अमवास वंश कीर्त० । अ० २० ॥

६४१ विश्वामित्रस्य तुसुताः देवरातादयः स्मृताः । (४)
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥१॥

६४२ देवश्रवाः कतिश्चैनव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः । शाला
वत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेथ रेणुमान् ॥२॥

(विश्वामित्र के पुत्र कच्छप आदि)

६४३ साङ्कृतिर्गालवश्चैव, मुद्गलश्चेति विश्रुताः ॥३॥

---

६४० महाप्रलयादि के पश्चात् जब २ सृष्टि होती है तब २ सत्य युगादि सभी युगों के आरम्भ में वर्ण और आश्रमों की स्थापना की जाती है ॥१॥

६४१ कुशिक के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र थे, विश्वामित्र ब्रह्मर्षि की समता को प्राप्त हो कर सप्तर्षित्व को प्राप्त हुए थे ॥२॥

६४२ विश्वामित्र के पुत्र देव अरातादि हुए जो तीनों लोकों में प्रख्यात थे उनके नाम सुनो ॥३॥ देवाश्रवा, कति, और कतिका कात्यायन हुआ, शालावती से हिरण्याक्ष और रेणु हुवे थे, रेणु से रेणुमान् ॥२॥

६४४ मधुच्छन्दो जयश्चैव, देवलश्च तथाष्टकः

कच्छपो हारितश्चैव, विश्वामित्रस्य वै सुताः ॥४॥

६४५ विश्वामित्रस्य दायादो, गाधिकौशिकनन्दनाः

६४६ बादरायणिनश्चान्ये, विश्वामित्रस्य धीमतः ॥५॥

ऋष्यन्तरविवाह्याश्च, कौशिका बहवः स्मृताः

६४७ पौरवस्य महाराज ! ब्रह्मर्षेः कौशिकस्यच ॥६॥

सम्बन्धोप्यस्य वंशेऽस्मिन्, ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः॥६॥५३॥

हरिवंश पु० । हरिवंश पर्व अमात्यसुतवंशकीर्तने २७ सप्तविंशत्यध्यायः ।

---

६४३ १. साङ्कृति २ गालव ३ मुद्गल ४ मधुच्छन्द ५ जय ६ देवल

६४४ ७ कच्छप और ८ हरित ये सभी विश्वामित्र के प्रसिद्ध पुत्र हुये थे ॥

६४५ गाधि और कौशिक के सभी पुत्र विश्वामित्र के दायाद हुए । एवम्

६४६ अन्य बादरायण आदि तथा दूसरे ऋषि और अनेक कौशिकादि धीमान् विश्वामित्र के वंश में हुए जानना चाहिये ॥५॥

६४७ हे महाराज! कुशिक ऋषि के वंश में उत्पन्न हुवे दूसरे ऋषि विवाह योग्य अनेक हुए इससे पौरव और ब्रह्मर्षि कुशिक वंश के पारस्परिक विवाहादि सम्बन्ध भी ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के वंश में लोक प्रसिद्ध है ॥५३॥ (व्याख्या) विश्वामित्र क्षत्रिय थे पीछे तपश्चर्यादि से ब्राह्मण हुए यह तो तपश्चर्यासे ब्राह्मण हुवे परन्तु इनके पिता गाधि और गाधि के पूर्व सब क्षत्रिय ही थे इस अंश को लेकर हरिवंश पुराण कहता है कि कुशिक वंशोत्पन्न क्षत्रियों का विवाहादि सम्बन्ध भी विश्वामित्र ब्रह्मर्षि के वंश में हुआ इसीसे ब्रह्मक्षत्र का सम्बन्ध कहा जा सकता है। विश्वामित्र का वर्ण पूर्व क्या था तप के बाद क्या हुवा यह समझने समझाने के लिये ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ऐसा कहना ठीक

(कृषक द्विज, कूर्म और कच्छप का एक अर्थ
कछवाह उमराव दीपसिंह का राजा बुध के पास जाना)

६४८ कुलीनःकुलपतिश्चैव, कुटुम्बी कच्छपी तथा ।
कुलमित्रः अर्द्धसीरिण्यः षडैते कृषका द्विजाः ॥१॥ (टिप्प०)

६४९ कच्छपः कूर्म आख्यातः, सर्वमण्डलधारकः ।
भूमिसरक्षणो राजा, दृढ़ाङ्गः सम्भविष्यति ॥५०॥
लघुनारदीय उपपु० । अ० ११ । श्लो ५०॥

६५० दोहा— कूरमपति यह वत्तसुनि, सम्भरभूप समीप ।
कूरम पुञ्छल मुक्कल्यो, कुंभानी भट दीप ॥३२॥
वंशभास्कर सप्तम राशि, सप्तविंश मयूख (पृ० ३०९०)

है। अमावसु दो हुवे एक कुशिक का पुत्र और दूसरा पुरूरवा का पुत्र, कुशिक अमावसु जो पुरूरवा का पुत्र था, उसके वंश में एक कुश (कुशिक) उत्पन्न हुआ था कुशिक से ६ पुत्र कौशिक आदि हुए ॥

विश्वामित्र के पुत्रों में से उनका एक पुत्र कच्छप भी था कूर्मियों में कछवाहे कूर्मी आजकल भी प्रसिद्ध हैं। कछवाहे कूर्मी आजकल भी प्रसिद्ध है। कछवाहे कूर्मी विश्वामित्र के वंश में हुये जान पड़ते हैं ॥

६४८ कुलीन, कुलपति, कुटुम्बी, (कुनबी) कच्छपी (कछवाहवंश) कुलमित्र और अर्द्धसीरी। ये (६) छ कृषक द्विज कहाते हैं ॥१॥

६४९ कच्छप का अर्थ कूर्म है, वह सब भूमण्डल का धर्ता, शरीर से दृढ़ाङ्ग भूमिपति राजा होगा ॥५०॥

६५० कूर्म्मपतिने विवाह की इस बात को सुन राजा बुधसिंह के पास कुम्भान शाखा के कछवाह उमराव दीपसिंह को भेजा ॥३२॥

(टिप्पणी.) यह श्लोक किसी अष्टादश स्मृतियों में से है 'पराशरस्मृति को देखना चाहिये ।

(जयसिंह का बुन्दी के राजा से प्रश्न)

६५१ —दोहा—दीपसिंह कछवाह जाय, बुन्दीश निकट तब।
यह सगपन अवरोध साधि, अञ्जलि पूँछ्यो सब ॥

६५२ (श्लोक) रहस्याहूय बुन्दीशं, जयसिंहस्तदानृपः।
पप्रच्छ जामिजोदन्तं भक्तो नीतिपरायणः ॥४१॥

६५३ शृण्वन्नित्थं कूर्मराजो महात्मा, व्यामर्षीः प्रोन्नद्धभोगोऽवसर्पः तर्जन्नुग्रो जामियम्प्रत्युवाचा,ऽस्मज्जामेयेऽनौरसे कोत्र हेतुः ॥४२॥

(वंशभास्कर सप्तमराशि सप्तविंश २७ मयूख पृ० ३०९०)

(जयसिंह ने अपने नाम से जयपुर नगर की स्थपाना की)

६५४ विधायैवंमथाम्पुरं कूर्मराजः, श्रुती धीर आसङ्ग्ये लब्ध्वा स्मृतीश्च। द्विजेन्द्रान् समादृत्य धर्मानुरागस्ततस्सवर्णाश्रेय आविश्चकार ॥१५॥

वंशभास्कर सप्तमराशि २७ सप्तविंशमयूख पृ० ३१० १

---

६५१ रोकने का कारण हाथ जोड़ कर यह कुंवर मुझ से उत्पन्न हुआ नहीं है सौत को पुत्र वाली समझ कर गर्व सहित १ वेदकी रीतिसे यह उचित नहीं है ॥३२॥

६५२ तब बुन्दी के राजा को एकान्त में बुलाकर उसनीति निपुण जयसिंहने नम्र होकर भानजे का वृत्तान्त पूंछा ॥४१॥

६५३ इस प्रकार महाशय कछवाहों के राजाने क्रुद्धहोकर फण उठाये हुए सर्प के समान उग्र तर्जना करके (बहनोई) बुध सिंह से कहा कि हमारे भानजे के अनौरस होने में यहां क्या कारण है ॥४२॥

तत्र कुशिकवंशोत्पत्तिः
(अनेनस के वंश में शुन होत्र हुवा)
(वैशम्पायन उवाच)

६५५ रम्भोऽ नपत्यस्तत्रासीद् वंशं वक्ष्याम्यनेनसः ।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥१॥
६५६ प्रतिक्षत्रसुतश्चापि, सञ्जयो नाम विश्रुतः
सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥२॥
६५७ विजयस्य कृतिः पुत्र, स्तस्य हर्यश्वतश्च यः ।
हर्यश्वतः सुतो राजा, सहदेव : प्रतापवान् ॥३॥
६५८ सहदेवस्य धर्मात्मा, नदीन इति विश्रुतः ।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः ॥४॥
६५९ सङ्कृतेरपि धर्मात्मा, क्षत्रधर्मा महायशाः ।
शुनहोत्रस्य दायादा स्त्रयः परमधार्मिकाः ॥५॥
(हरिवंश पुराण अध्या. २९)

---

६५४ धर्म को धारण करने वाले कछवाहों के राजा जयसिंह ने इस प्रकार प्रधान नगर (जयपुर) बसाकर वेदविहित कर्म करके स्मृतियों को पाकर ब्राह्मणों को एकत्रित करके धर्म शास्त्र की मर्यादा से चल चारों वर्ण और आश्रम के कल्याणकारी मार्ग को प्रकट किया ॥५१॥

रम्भमके कोई सन्तान न होने से उसका वंश नहीं चला। अब मैं अनेनस का
६५५ वंश कहूंगा। अनेनस का महायशस्वी पुत्र प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्र का सञ्जय सञ्ज

(शुन होत्र के पुत्र काश, शल, गृत्समद गृत्समद का शुनक और शुनक का शौनक)

६६० काशः शलश्च द्वावेतौ, तथा गृत्समदः प्रभुः ।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥६॥

६६१ ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव, वैश्याः शूद्रास्तथैवच ।
शलात्मजश्चार्ष्टिषेण स्तनूजस्तस्य काशकः ॥७॥

६६२ काशस्य काशयो 'राजन्' पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।
धन्वसु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरि स्ततः ॥८॥

६६३ तपसोऽन्त सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो, मानुषेष्विह जज्ञिवान् ॥९॥
हरिवंश पु. । अ. २९ ॥

का जय जय का विजय विजय का कृति कृति का हर्य्यश्वत हर्यश्वत का सहदेव सहदेव का नदन नदीन का जयत्सेन जयत्सेन का सङ्कृति सङ्कृति का महायशस्वी और धर्मात्मा क्षत्रधर्मा पुत्र हुआ यह अनेनस का वंश है अनेनस के वंश में शुनहोत्र हुआ शुनहोत्र के परमधार्मिक तीन पुत्र हुवे ॥५॥ ६५५- ६५९ ।

६६० शुनहोत्र के परम धार्मिक तीन पुत्र -१- काश २ शल ३ रा गृत्समद गृत्समद का पुत्र शुनक, शुनक का पुत्र शौनक ।

६६१ शौनक के वंश में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्ण गुणकर्म स्वभावानुसार हुए

[व्याख्या] शौनक के वंश में चारों वर्ण होना इस बात के लिये प्रमाण है कि वर्ण का नियम गुण कर्म और स्वभावसे

६६१ ही होता था जन्म से नहीं ॥६॥ शल का पुत्र आर्ष्टिषेण, आर्ष्टिषेण का काश क

६६२-६६३ काशक का काशय, हे राजन काशये का पुत्र दीर्घतपा महान् और धीमान्

(शौनक के वंश में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र)
चारों वर्ण थे ॥

६६४ स चाविलथः पुत्रान्, जनयामास पञ्च वै ।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं, गयं गर्गन्तथैव च ॥
कपिलञ्च महात्मानं, सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ।
काशकश्च महासत्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः ॥
तथा गृत्समतेः पुत्राः ब्राह्मण क्षत्रियाः विशः ॥
॥ हरिवंश पु. । अ. ३२ ॥

वृद्ध दीर्घ तपा के तपसे धन्वन्तरी से मनुष्यों में पुनर्वार जन्म लिया ॥९॥

व्याख्या-शौनक वेदज्ञ थे अपने नाम से अथर्व का शौनक गृह्यसूत्र रचा । एवम् धन्वन्तरिमुनिने सुश्रुतादि रचकर अपने सुयोग्य शिष्यों द्वारा आयुर्वेद का पुनरुद्धार किया ॥

६६४ अवितथ ने पांच पुत्रों को उत्पन्न किया। १- सुहोता ३ गय ४ गर्ग ५ वां कपिल। सुहोत्र के दो पुत्र, एक महाबलवान् काशक और दूसरा राजा गृत्समति, गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र गुण कर्म स्वभावानुसार हुए। यह सिद्ध है कि राजा गृत्समति के समय में वर्ण का निर्णय जन्म से न था किन्तु गुण कर्म स्वभाव पर था अन्यथा एक ही गृत्समति के पुत्र चारों वर्णों में किस प्रकार होते ॥ हरिवंश पुराण अध्याय २९ में सङ्कृते रपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशा

व्याख्या अर्थात् सङ्कृति का धर्मात्मा क्षत्रधर्मा पुत्र हुआ यहां तक अपत्यक्रम लिखकर आगे "शुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिका": ॥ लिखा किन्तु शुन होत्र किसका पुत्र था यह नहीं यह नहीं स्पष्ट है परन्तु फिर अध्याय ३२ में 'स चाविलथः पुत्रान्०" इसमें शुनहोत्र को भरद्वाज का पुत्र लिखा है। शुनहोत्र भले ही क्षत्रधर्मा का पुत्र न हो परन्तु अनेनस् के वंश में ही हुआ मानना पडेगा अन्यथा अनेनस् के प्रकरण में लिखना व्यर्थ हो जायेगा

(सुहोत्र) (शुनहोत्र) के पुत्र कूर्म और शौनक)

६६५ क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र, शुनहोत्रो महायशाः ।
सुहोत्रस्य दायादा-स्त्रयः परमधार्मिकाः
काशः शलश्च द्वावेतौ, तथा गृत्समदः प्रभुः ।
(ब्राह्मणोत्पत्तिभास्करे श्री. वटुकप्रसादमिश्रविरचिते)

६६६ चन्द्रान्वये समुद्भूतः, सुहोत्रो धर्मतत्परः । सुहोत्र-
तनयो राजा, गृत्समद इतीरितः ॥४०॥
तस्य पुत्रौ महाधीरौ क्षत्रियौ कूर्मशौन''कौ

६६७ तयोः कूर्म सुराजर्षिः नीतिमान् सज्जनप्रियः । (४१)
काशिराजसुता भीमा, सेयं भीमपराक्रमा ।
तस्यां जज्ञे सुमध्याह्ने पुष्यर्क्षे चैत्र शुक्लके ॥४२॥

६६८ गौरवर्णो महाबाहुर्विशालाक्षो मनोहरः ।
राजलक्ष्मसमायुक्तो, भीमा, हर्षमुपागता ॥४३॥
लघु नारदीय उपपु० । उत्तरा० चन्द्रवंशीय राजर्षिवर्णन
। अ० ११ ॥

---

६६५ क्षत्रवृद्ध का पुत्र शुनहोत्र हुआ, शुनहोत्र के परमधार्मिक ३ तीन दायाद हुवे । काश, शल, और राज्य गृत्समविन्द ॥

६६६ इस प्रकार चन्द्रवंश में सुहोत्र अर्थात् शुनहोत्र का जन्म हुआ, शुनहोत्र के पुत्र धैर्यशाली कूर्म और शौनक हुए । दोनों में कूर्म राजर्षि, नीतिमान् और सज्जनों के प्रियज्या हुआ ॥ ४१ ॥

६६७ भयङ्कर पराक्रम युक्त भीमा नाम्नी एक पुत्री काशी के राज की थी.

६६८ चैत्र शुक्ल, पुष्य नक्षत्र में भीमा के कूर्म नामक पुत्र मध्याह्न में उत्पन्न हुआ ॥४२॥ कूर्म का वर्ण गौर था भीमा उसको आजानु बाहु, बडे नेत्रों वाला, मनोहर, और राज चिह्नों सहित देख कर भीमा बहुत प्रसन्न हुई ।

(कूर्म की माता भीमा और कूर्म का नामकरणसंस्कार)

६६९ गृत्समदं समाजग्मु, र्ब्राह्मणा ऋषयस्तदा ।
गृह्यसूत्रविधानेन, द्वादश्यां नाम चक्रिरे ॥४४॥

६७० ईश्वरः कूर्म विख्यात, स्तत्सर्वेश्वरो ह्ययम् ।
भूमि संरक्षणार्थन्तु चक्रवर्ती भविष्यति ॥४५॥

६७१ ❀ क्षत्र वृद्धात सुहोत्रः पुत्रो ह्यभूत ॥ विष्णु पु० ।
अंश । अ० ॥ ८ ॥
त्रपुः पुत्रो ह्यनुज अयुरित्यभूत ॥ स्कन्द पु० ।
सह्याद्रि खं. । अ० ३१ श्लो. १४

---

६६९ राजा गृत्समद के समीप ब्राह्मण और ऋषि लोग आये और गृह्य सूत्रोक्तरीत्या भीमा के पुत्र का १२ वें दिन नाम रक्खा । ब्राह्मणों ने

६७० आशीर्वादात्मक वचन कहे कि यह कूर्म पृथिवीपतियों के मध्य में चक्रवर्ती राजा होगा । प्रजा के बीच में राजा का अधिक सामर्थ्य होने में प्रजा को ईश्वर कहते हैं ॥

६७१ विष्णु पुराण अंश (८) में लिखा है कि क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र स्क० पु० सह्याद्रि खं. अ. ३१ श्लो. १४ लिखा है कि त्रयुका छोटा पुत्र आयु था ॥६५६॥ (शुनहोत्र) हुआ ॥

---

* क्षत्र वृद्ध का पुत्र सुहोत्र अथवा शुनहोत्र था और क्षत्रवृद्ध किस का पुत्र था यह विष्णु पु० अंश । अ. में देखलेना चाहिये ।

(कूर्म शब्द के अनेक अर्थों का सङ्ग्रह)

६७२ आदित्यः कूर्म इत्युक्तः, आदानात् सर्वमण्डले ।
सोयं कूर्म इति ख्यातः प्रकाशाच्छत्रुतापनात् ॥४६॥

६७३ सर्पाणां कूर्मसंख्यातः मणिमान् बलवत्तरः ।
तथैवायं महावीर्यो, राजकूर्मो भविष्यति ॥४७॥

६७४ प्राणादि दशवायूनां कूर्मो वै देहमध्यगः ।
वायुवत्सर्वगन्तासौ, भवेद् गृत्समदात्मजः ॥४८॥

६७५ चन्द्रकूर्मौषधीशो वै जनानां सुखदायकः ॥
तदन्वयेषु सम्भूतो, भूमौ कूर्मस्तथाविधः ॥४९॥

६७६ कच्छपः कूर्म आख्यातः सर्वमण्डल धारकः ।
भूमिसंरक्षणो राजा दृढाङ्ग! सम्भविष्यति ॥५०॥

लघुना० उपपु० उत्तरा० चन्द्रवंशीय राजर्षि वर्णन अ. ११

६७२ पृथिवी मण्डल में रसादि के आकर्षण करने से आदित्य का नाम कूर्म है। प्रकाश और शत्रुतापन सेभी आदित्य की कूर्म सञ्ज्ञा है ॥ ४६ ॥

सर्पों में सर्पण वाला सांप बड़ा बड़ा बलवान होता है उसकी कूर्म संज्ञा और वह क्षत्रिय है ॥४७॥ इसी प्रकार महापराक्रमी राजा कूर्म होगा ॥४७ ॥

प्राणादि दश वायुओं में जो देह मध्य में स्थित वायु है उसका नाम कूर्म है यह गृत्समद पुत्र वायु सदृश सब में प्राप्त होने वाला है ॥४८॥ ओषधिपति चन्द्र कूर्म है जो कि जनों को सुख देनेवाला है तद्वत् चन्द्रवंश में जो उत्पन्न हुआ वह चन्द्रवंशी कूर्म कहाता है ॥४९॥

आदित्य सदृश गोलाकार सर्व मण्डल धारी कच्छप का नाम कूर्म है, दृढाङ्ग-पृथिवी पति राजपद सुशोभित कूर्म होगा ॥५०॥ ६७२-६७६

(लघुनारदीय उपपुराण में कूर्म शब्द का अर्थ)

६७७ स एष कूर्म इम एव लोकाः, द्यावापृथिव्यामपि कूर्म शब्दः। रसोहि कूर्मो रस आत्मवीर्ये, वृषा हि कूर्मः स तु इन्द्रदेवः ॥५१॥

६७८ स कूर्म स्रष्टा जगतः प्रजापतिः सृष्ट्वा सदा पाति स कूर्म-सञ्ज्ञकः । ऋषीन् सदा सर्जति सैव कश्यपः कूर्मस्तदीया भवतीह काश्यपीः॥५२॥ लघुनारदीय-उपपु०। उत्तरार्द्ध चन्द्रवंशीयराजर्षिवर्णनं नाम अ. ११

जो ये पृथिव्यादि लोक हैं वे कूर्म कहाते हैं, एवम् द्युलोक भी कूर्म है। दुग्धादि और अन्य मधुरादि रसों का भी नाम कूर्म है।

६७७ रस का अर्थ आत्मबल है। वृषा अर्थात् इन्द्र (सूर्य) कूर्म है। जगत् का स्रष्टा प्रजापति परमात्मा कूर्म कहाता है। जगत् की रक्षा करने से भी ईश्वर का नाम कूर्म है। एवम्-कश्यप ही कूर्म है। और कश्यप कूर्म की प्रजा काश्यपी कहाती है॥ उपर्युक्त कूर्मशब्द के अर्थ शतपथ ब्राह्मण-काण्ड ७। अ० ५। प्र० ४ में भी हैं॥

इन श्लोकों की रचना अति सरल और अर्थ भी सुगम है। श्लोकों की रचना आधुनिक है॥

६७८ राजा गृत्समदने ऋषियों के वचन सुनने पश्चात मंत्रियों के साथ मन्त्र कर के उन ऋषियों को दक्षिणा······ देना निश्चित किया॥ गोदान, भूमिदान, वस्त्रदान, चांदी सुवर्णदान अन्न, और घोड यथाभिलाषित सबको दे नमस्कार कर अशीर्वाद लिया कि राजर्षि कूर्मि के पुत्रों से यह भूमि भरजायगी, उनका नाम कूर्मी होगा, और वे कूर्म वंश के क्षत्रिय कहायेंगे सूर्य के समान वे कुलवृद्धि करने वाली माल मालिनी कूर्मी की प्रजा के वे भूमिपति होंगे। और गृत्समद का अपत्य कूर्म ऋषि वेद का मन्त्रऽद्रष्टा होगा॥ इस प्रकार ब्राह्मण और ऋषियों ने दक्षिणा प्राप्ति के पश्चात् गृत्समद को आशीर्वाद दिये॥ ६७८-६८३

६७९ ऋषीणां वचनं श्रुत्वा, राजा गृत्समदस्तदा ।

ऋषिभ्यो दक्षिणा देया, मंत्रिभिः संविचार्य च ॥५३॥

६८० गोदानं भूमिदानञ्च, वस्त्ररौप्याहिरण्यकम्

अन्नदानञ्चाश्वदानं, यथाभिलषितं वरम् ॥५४॥

६८१ दत्वा तान्स नमस्कृत्य, आशीर्वादं गृहाण च ।

कूर्मिराजर्षिपुत्रैश्च, भूमिः पूर्णा भविष्यति ॥५५॥

६८२ कूर्मिसञ्ज्ञां लभन्ते ते, क्षत्रियाः कूर्मवंशजाः ।

भूमिधारणकर्तार-स्तुविकूर्मो यथा दिवि ॥५६॥

६८३ मालमालिनीं समभ्यर्च्य, देवीं कुलविवर्द्धिनीम् ।

वेदे गार्त्समदः कूर्मो, मन्त्रद्रष्टा भविष्यति ॥५७॥

६८४ आशीर्वादं ददुः सर्वे, ब्राह्मणा ऋषयस्तदा ॥५८॥

नारदीय उपपु० । अ. ११ । श्लो. ५३-५४-५५-५६ ५७-५८ ॥

---

६८४ जहां कहीं विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठ की सम्मति हो वहां देवयजन (यज्ञशाला) बनावे । परन्तु सर्वोत्तम तो यह कि जल के समीप बनावे, जहां सब ओर जल बहते हों ऐसे नदी आदि के तटपर बनावे, जो स्थान सम हो ऊंचा नीचा न हो, समूल विदग्ध न हो अर्थात् भूमि के भीतर से अग्नि का भय नहो ज्वाला मुखी पर्वतों के पास न बनावे । जहां भूमि के नीचे श्वेत कूर्म (कछुआ, निकले, वृक्ष, पहाड़ वेगवती नदी हो ऐसे स्थानों देवयजन न बनावे ।

(अथ नागवंशः)

६८५ यत्र क्वचिद् ब्राह्मणो विद्यावान् मन्त्रेण करोति तद् देव यजनम् । अथैतद् भौमं यजनम्-यत्रापस्तिष्ठन्ति प्र तद्धहन्त्यु-द्धहन्ति तद् देवयजनम् । यत्र समं समूलमविदग्धं प्रतिष्ठितं प्रागुदकप्रवणं समं समास्तीर्णमिव भवति । यस्य श्वभ्रकूर्मो वृक्षः पर्वतो नदी पन्था पुरस्तात्स्यान्न देवयजनमात्रं पुरस्तात् पर्यवशिष्येन्नोत्तरतोऽग्नेः पर्य्युपसीदेरन्निति ब्राह्मणम् । (गो. ब्रा. पू. भा. । ब्रा. १४)

हिम-उदकम्

६८६ दरीनेऽन्यच्च खारण्य-पर्ण-श्वभ्र-हिमोदकम् ॥
अ. को. । कां. ३ । श्लो. २२३ ॥

(नागवंशः)

६८७ १—अधोभुवनं पातालम् । २— बलिसद्मरसातलम् । ३— नागलोकाः (काद्रवेयाः) अ. को. । पातालभोगिव० । कां. १ श्लो. १ पृ ३१ ॥

---

६८५ श्वभ्र का दूसरा अर्थ पाताल है प्रमाण अमर .ोप काण्ड ३ श्लो २२३ है। श्वभ्रन्तु पातालम् । यह अ० को० खेमराज श्री कृष्णदास जी के प्रेस बम्बई का छपा है । टीका पं० भोलानाथात्मज प० रामस्वरूप कृत है । पाताल देश का राजा बलि था । पाताल देश को आजकल अमेरिका कहते हैं ॥

६८६ पाताल के नाम । १- अधोभुवन २ पाताल ३ बलिका घर रसातल ४ नागलोक यह सब कद्रू की सृष्टि है ॥

६८७ हेम से सुतपा, सुतपा से बलि, बलि के क्षेत्र अर्थात् स्त्री में दीर्घतमा ने नियोग विधि से अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, और पुण्ड्र ये पांच क्षत्रिय उत्पन्न किये इनके

६८८ हेमात सुतपा तस्माद् बलिस्तस्य क्षेत्रे दीर्घतमा अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग सुह्म पुण्ड्राख्यं वालेयञ्च क्षत्रमजीजनत् । तन्नाम सन्ततिसञ्ज्ञाश्च बभूवुः ॥ विष्णुपुराण

(विष्णु पु० । ४ । १८ । १-२)

६८९ शेषोऽनन्तो वासुकिश्च, कर्कोटकं धञ्जयः ।
कूर्मश्च कुलिकश्चैव, काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः
फणलाङ्गूलसंहिता-मनुष्याका रसर्पकाः ॥महाभा०॥

६९० कपिलश्चाम्बरीषश्च, घृतपादश्च कच्छपः ।
प्रह्लाद पद्म चित्रश्च गन्धर्वोऽथ मनस्विकः ॥७३॥

६९१ नहुषः खररोमाच, मणिरित्येवमादयः ।
काद्रवेयाः समाख्याताः खशायास्तु निबोधत ॥७४॥

वायु पु० । अ. ६९ श्लो. ७३-७४

(नागवंश अर्थात् पातालनिवासी)

६९२ तेषां प्रधाननागाश्च शेप वासुकि-तक्षकाः ॥ वायुपु. । अ. ६९ ॥

नाम से अङ्गादि पांच देश बसाये गये । वङ्ग बङ्गाल के नाम से आज भी विख्यात है ॥ पाताल देश का नाम नागलोक भी है ॥

६८८ शेष २ अनन्त ३ वासुकि ४ केर्कोटक ५ धनञ्जय ६ कूर्म और कुलिश ये सब कद्रू से उत्पन्न होने से काद्रवेय कहे गये । फणालाङ्गलादि लिखना यह चिन्त्य है॥

६८९ कपिल, २ अम्बरीष ३ घृतपा ४ कच्छप (कूर्म) ५ प्रहलाद ६ पद्मचित्र गन्धर्व 'मनस्विक, ९ नहुष १० खररोमा और मणि ११ इत्यादि सब काद्रवेयह कहाते हैं।

६९० नहुष, खररोम और मणि आदि कद्रू के पुत्र हैं अब अन्य पुत्रों को सुनो ॥७॥

६९१ नागवंश में मुख्य राजे १ नाग २ शेप ३ वासुकि और तक्षक हैं ।

६९३ सार्पराज्ञी कद्रूः ॥ य. । अ. ३ मन्त्र ६ । ७ । ८ की ऋषिका हुई है ।

६९४ देवा ह वै सर्वचरौ सत्रं निषेदुः । ते ह पाप्मानं नाप जघ्निरे । तान् होवाचार्बुदः काद्रवेयः सर्पऋषिः मन्त्रकृत् ॥ ऐतरेय ब्रा. । अ. २६ ॥

६९५ नागात्तु कश्यपो जातस्तत् सुतो, धीरमण्डनः ॥५८॥ स्क. पु. सह्याद्रि खं ३१ अ.

६९६ तदीश्वर शेषोऽनन्तः ॥ अ. को. । नाट्यव. को. १ श्लो. ४ ॥

६९७ एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः । पद्भ्या मशक्तोऽन्तरिक्षेण, क्रान्तुं पृथ्वीं ससागराम् ॥१२॥

६९२ महाराज नागराजकी विदुषी रानी कद्रू य० अ० ३ मं. ६ । ७ । ८ । ऋषिका हुई है ।

६९३ देवों ने सब चरु पात्र में यज्ञपाक बनाकर बडे यज्ञ का अनुष्ठान किया परन्तु सफल न हुवे तब उनसे "अर्बुद काद्रवेय मन्त्रद्रष्टा सर्प ऋषि बोला" ॥ यह अर्बुद काद्रवेय ऋग्वेद मण्डल १० में ९४ मन्त्रों का ऋषि हुआ ।

६९४ नागराज का पुत्र कश्यप था और कश्यप का पुत्र धीर मण्डन हुआ

६९५ शेष के नाम १- एक शेष २ दूसरा अनन्त ये दो बडे राजा हुवे

६९६ एक समय महर्षि व्यास पाताल देश (जिसको आजकल अमेरिका कहते हैं) गये वहां उनके पुत्र शुकदेवजी ने पूंछा कि भगवन् क्या आत्मविद्या इतनी ही है, इस पर व्यासजी ने कहा कि तुम मिथिलापुरी जाकर यही प्रश्न राजा जनक से करो यह सुन शुकदेवजी पाताल देश (अमेरिका) से विमान (हवाई जहाज) द्वारा भारतवर्ष आये थे क्यों कि 'पद्भ्याम् अशक्तः' पैरों से इतनी दूर यात्रा नहीं सम्भव थी

* नागपुर पत्तन (शहर) नागराज काही बसाया जान पड़ता है ॥

६९८ स गिरींश्चाप्यति क्रम्य, नदी-तीर्थ-सरांसिच । बहुव्याल समाकीर्णा ह्यटवीश्च वनानिच ॥१३॥

६९९ मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे, वर्षं हैमवतं ततः । क्रमेणैव व्यतिक्रम्य, भारतं वर्षमासदत् ॥१४॥

(महाभा.। शान्तिप.। मोक्षधर्मे, व्यासशुकसंवादे)अ.३२७॥

६९८ समुद्र भी बीच में था। शुकदेवजी पहाड़ों नदियों मुनिस्थान तीर्थों तड़ागों बहुत हाथियों वाले जङ्गलों और वनों को उल्लङ्घन करते हुए भारत वर्ष की ओर चले ॥ १२ ॥

६९९ मेरु और हरि (यूरोप) से ईशान तथा वायव्य कोण में जो देश हैं उनमें और हैमवत देश में क्रम से होते हुए शुकदेवजी भारतवर्ष में शुभागमन कर सुशोभित हुवे उस समय मिथिलापुरी पहुंचकर राजा जनक से वही प्रश्न किया कि राजन् क्या आत्मविद्या इतनी ही है इसका सन्तोषजनक उत्तर राजा जनक से पाकर शुकदेवजी कृतार्थता को प्राप्त हुए। ये उपर्युक्त श्लोक सत्यार्थ प्र० दशम समुल्लास में भी हैं ॥

इस उपर्युक्त महाभारतोक्त प्रमाण से भारतीय ऋषि और मुनि आदिकों का पाताल देश में जाना आना और नागवंशियों का वहां राज्य करना स्पष्ट है और यह भी कि कूर्मराज नागराज के पुत्र थे। ६९६-६९९

(इति नागवंशीय-कूर्मराज-वर्णनं समाप्तम्)



६९३ सार्पराज्ञी कद्रुः ॥ य. । अ. ३ मन्त्र ६ । ७ । ८ की ऋषिका हुई है ।

६९४ देवा ह वै सर्वचरौ सत्रं निषेदुः । ते ह पाप्मानं नाप जघ्निरे । तान् होवाचार्बुदः काद्रवेयः सर्पऋषिः मन्त्रकृत् ॥ ऐतरेय ब्रा. । अ. २६ ॥

६९५ नागात्तु कश्यपो जातस्तत् सुतो, धीरमण्डनः ॥५८॥ स्क. पु. सह्याद्रि खं ३१ अ.

६९६ तदीश्वर शेषोऽनन्तः ॥ अ. को. । नाग्व्व. को. १ श्लो. ४ ॥

६९७ एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः । पद्भ्या मशक्तोऽन्तरिक्षेण, क्रान्तुं पृथ्वीं ससागराम् ॥१२॥

६९२ महाराज नागराजकी विदुषी रानी कद्रू य० अ० ३ मं. ६ । ७ । ८ । ऋषिका हुई है ।

६९३ देवों ने सब चरु पात्र में यज्ञपाक बनाकर बडे यज्ञ का अनुष्ठान किया परन्तु सफल न हुवे तब उनसे "अर्बुद काद्रवेय मन्त्रद्रष्टा सर्प ऋषि बोला" ॥ यह अर्बुद काद्रवेय ऋग्वेद मण्डल १० में ९४ मन्त्रों काऋषि हुआ ।

६९४ नागराज का पुत्र कश्यप था और कश्यप का पुत्र धीर मण्डन हुआ

६९५ शेष के नाम १- एक शेष २ दूसरा अनन्त ये दो बडे राजा हुवे

६९६ एक समय महर्षि व्यास पाताल देश (जिसको आजकल अमेरिका कहते हैं)गये वहां उनके पुत्र शुकदेवजी ने पूंछा कि भगवन् क्या आत्मविद्या इतनी ही है, इस पर व्यासजी ने कहा कि तुम मिथिलापुरी जाकर यही प्रश्न राजा जनक से करो यह सुन शुकदेवजी पाताल देश (अमेरिका) से विमान (हवाई जहाज) द्वारा भारतवर्ष आये थे क्यों कि 'पद्भ्याम् अशक्तः' पैरों से इतनी दूर यात्रा नहीं सम्भव थी

* नागपुर पत्तन (शहर) नागराज काही बसाया जान पड़ता है ॥

६९८ स गिरींश्चाप्यति क्रम्य, नदी-तीर्थ-सरांसि च । बहुव्याल समाकीर्णा ह्यटवीश्च वनानि च ॥१३॥

६९९ मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे, वर्षं हैमवतं ततः । क्रमेणैव व्यतिक्रम्य, भारतं वर्षमासदत् ॥१४॥

(महाभा.। शान्तिप.। मोक्षधर्मे, व्यासशुकंसवादे)अ.३२७॥

---

६९८ समुद्र भी बीच में था। शुकदेवजी पहाड़ों नदियों मुनिस्थान तीर्थों तड़ागों बहुत हाथियों वाले जङ्गलों और वनों को उल्लङ्घन करते हुए भारत वर्ष की ओर चले ॥ १२ ॥

६९९ मेरु और हरि (यूरोप) से ईशान तथा वायव्य कोण में जो देश हैं उनमें और हैमवत देश में क्रम से होते हुए शुकदेवजी भारतवर्ष में शुभागमन कर सुशोभित हुवे उस समय मिथिलापुरी पहुंचकर राजा जनक से वही प्रश्न किया कि राजन् क्या आत्मविद्या इतनी ही है इसका सन्तोषजनक उत्तर राजा जनक से पाकर शुकदेवजी कृतार्थता को प्राप्त हुए। ये उपर्युक्त श्लोक सत्यार्थ प्र० दशम समुल्लास में भी हैं ॥

इस उपर्युक्त महाभारतोक्त प्रमाण से भारतीय ऋषि और मुनि आदिकों का पाताल देश में जाना आना और नागवंशियों का वहां राज्य करना स्पष्ट है और यह भी कि कूर्मराज नागराज के पुत्र थे। ६९६-६९९

(इति नागवंशीय-कूर्मराज-वर्णनं समाप्तम्)



(अथ दान-वेन्द्र-बलि-कूर्माख्यानम्)

मरीचि र्ब्रह्मणः पुत्रो, मरीचेः कश्यपः सुतः ॥

७०० तस्माद्धिरण्यकशिपुः प्रह्लादस्तस्य चात्मजः । प्रह्लाद-
स्य सुतो नाम्ना, विरोचन इतिश्रुतः ॥१॥
अथ विष्णुर्महातेजा, आदित्यां समजायत । छत्रीभिक्षु-
रूपेण, कमण्डलुशिखोज्ज्वलः ॥ वामनं रूपमास्थाय,
वैरोचनिमुपागमत् ॥१८॥
तं दृष्ट्वासुरराजेन्द्रो, वामनत्वञ्च विस्मितः ।
माधवोयमिति ज्ञात्वा पूजया मास धर्मतः ॥१९॥
पूजितस्तेन धर्मात्मा, सर्वलोकहिताय वै । आसाद्यः
यजमानन्तु, तमुवाच भगवान् हरिः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु
महाराज ! यज्ञस्यातीव शोभनः ॥२०॥

यहां यह सन्देह है कि जनक पूर्व हुए और व्यासजी पीछे हुवे तब शुकदेव जी का जनक के पास आना असम्भव है

७०० दानवेन्द्र बलि कूर्म की आख्यायिका सङ्क्षेप से यहहै कि ब्रह्माका पुत्र मरीचि मरीचि का कश्यप, कश्यप का हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद प्रह्लाद का विरोचन पुत्र हुआ ॥६५१॥

अनन्तर छत्र धारण किये और हाथ में कमण्डलू लिये शिखाधारी महातेजस्वी भगवान विष्णुआदित्य सब में प्रकट हुए ॥ और बौना रूप धारण करके विरोचन के पुत्र के समीप पहुंचे । असुर राजेन्द्र विरोचन पुत्र विष्णुजी के उस बौना रूप को देख कर बड़ा विस्मित हुआ, यह समझकर कि भगवान् कृष्णजी हैं धर्म से उनका पाद्य अर्घादि से पूजन किया इस प्रकार असुरेन्द्र से सत्कृत धर्म मूर्ति भगवान विष्णुजी संसार के हितार्थ यजमान से बोले हे महाराज! तेरा कल्याण हो, यह तेरा यज्ञ बहुत ही सुन्दर है ॥२०॥

(दानवेन्द्र-बलि-कूर्माख्यानम्)

७०१ वयं दानार्थिनो राजन् ! श्रुत्वा यज्ञमनुत्तमम् ।
त्वां दृष्ट्वा तत्र योगेषु, किञ्चिल्लब्धुमिहागताः ॥२१॥
७०२ वामनेनैवमुक्तस्तु, मुदा राजा तदाऽब्रवीत्
अद्य मे सफलो यज्ञः कृतार्थोस्म्यद्य वामन! ॥२२॥
७०३ त्वदर्थं कल्पितञ्चैव, मम सर्वस्वमेव च ।
धनौघं रत्नराशिंवा, भूषणं धान्यसञ्चयम् ॥२३॥
७०४ ग्रामं वा नगरं वापि, राष्ट्रं वा यान मेव वा ।
हस्त्यश्वरथपत्तीर्वा, त्वं लभस्वान्यमेव वा
किमिच्छसि महाबाहो ! तद्ददामि तवाऽनघ २४
७०५ एवमुक्तस्तदा राज्ञा, भगवान् पुरुषोत्तमः ।

(दानवेन्द्र व कूर्माख्यानम्)

७०६ उवाचेषत स्मितं कृत्वा, यजमानं महाबलिम् ॥२५॥

७०१ हे असुरेन्द्र राजन विरोचन पुत्र ! सर्वोत्तम आप के यज्ञ को सुनकर और आप को अपने कामों में दत्तचित्त देख कुछ प्राप्त करने के लिये दानार्थी रूप में हम आये हैं ॥६॥ भगवान वामन धारी के इस वचन को सुन बडे आनन्द को प्राप्त हो राजा बोला हे भगवान! आज मेरा यज्ञ सफल हुआ, हे वामन ! आपके शुभागमन से मैं कृतार्थ हूं ।७॥ मेरा जो कुछ धन, तथा रत्नराशि आभूषण धान्यादि सर्वस्व है वह आपका है ॥८॥ वह सब आपको अर्पण करने के लिए मैं तैयार हूं इसमें कुछ भी संशय नहीं, इस प्रकार राजाने जब भगवान पुरुषोत्तम से ऐसा कहा ॥९॥ १०॥ ७०१-७०५

७०६ तब कुछ मुस्कराकर वामन रूपधारी विष्णुजी यज्ञ कर्ता राजा बलि से बोले हे राजेन्द्र। जो २ आपने मुझे देने को कहा उन २ वस्तुओंसे मेरा कोई प्रयोजन

७०७ एतैः किम्मम राजेन्द्र ! तैस्तु नास्ति प्रयोजनम् ।
असमत् पादत्रयाक्रान्तं, देहि भूमिं विभो तदा ॥२६॥
७०८ श्रुत्वा तद् वामनेनोक्तं, स्मितं कृत्वासुरोत्तमः ।
येनेष्टं पूर्यते ब्रह्मं स्तत्कुर्मेति ततोऽब्रवीत् ॥२७॥
७०९ वामनाय महीं दातुं, निश्चितेऽसुरसत्तमे
तं निवार्य महाराजः प्राह शुक्रो द्विजोत्तमः ॥२८॥
७१० विरिञ्च-भव-शक्राद्य, योगिनश्च सुराऽसुराः ।
यं न जानन्ति वेदांश्च, स एषो विष्णु रव्ययः ॥२९॥
७११ दानाऽऽरक्ते ततः शुक्रे, शुक्रं राजपुरोहितम् ।
गृहीत्वा ताडयामास, वैनतेयो महाबलः ॥३०॥

(दानवेन्द्र-बलि-कूर्माख्यानम्)

७१२ पत्न्यासह विनिश्चित्य, यजमानो महाबलिः ।
मायारूपेण देवेशो, मम यज्ञं गतो यदि ।
तदेतद् यज्ञसाफल्य, मेवास्त्विति चाब्रवीत् ॥३१॥

नहीं वह सब वस्तु आपकी ही रहें, मुझे केवल तीन पैरों से मापी हुई दीजिये। राजा बली भगवान् के इस वचन को सुन मुस्कराकर बोला हे ब्राह्मन्! जिस से आपके मनोवाञ्छित की पूर्ति होगी वही मैं दूंगा ॥१२॥ श्रेष्ठ असुरेन्द्र ने वामन रूपधारी विष्णु को जब भूमि देनी निश्चित करली तब द्विजश्रेष्ठ महाराज शुक्रएकान्त में उस असुरेन्द्र से बोले ॥१३॥ हे असुरेन्द्र ब्रह्मा महादेव इन्द्रादि योगी तथा देवता असुर एवं वेद जिसको नहीं जानते हैं वह यह अविनाशी विष्णु भगवान् हैं ॥१३॥ शुक्र की दान की ओर प्रवृत्ति न देख विनता पुत्र बलिने राज पुरोहित शुक्र को पकड़ के ताड़ना दी ॥१५॥ ७०६-७११

७१३ इति मत्वोदकं दत्तं, वामनाय महात्मने ।
तव पादत्रयाक्रान्तां, गृहाणाद्य मही प्रभो ! ॥३२॥
७१४ उदके स्पृष्टमात्रे तु, विश्वरूपधरो हरिः।
तत्रस्थ एव ववृधे, येन पूर्णं जगत्त्रयम्
सायुधैर्बाहुभिः पूर्णा, दिग्विदिक् सर्वमेव हि ॥३३॥
७१५ त्रीन् क्रमानथ भिक्षित्वा, प्रतिगृह्य च मानदः।
आक्रम्य लोकालोकात्मा, सर्वलोकहिते रतः ॥३४॥
७१६ महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमोजसा ।
त्रैलोक्यं स महातेजा, श्चक्रे शक्रवशं पुनः ॥३५॥
वाल्मीकीय रामा० । बा. कां. । सर्ग २९। श्लो. १८-३५॥

---

७१२ अपनी रानी सहित राजाबलि यह निश्चय करके कि माया रूप से यदि भगवान् देवेश विष्णुजी मेरे यज्ञ में आये हैं तो यह मेरा यज्ञ सफल है ऐसा मनमें धारण करके महात्मा बौना रूपधारी भगवान् विष्णु को पग प्रक्षालनार्थं उदक दिया ॥१६॥ विश्वरूप धारी भगवान् विष्णु के जल स्पर्श करते ही वह पादत्रया क्रान्त भूमि इतनी बढ़ गयी कि जिससे तीनों लोक पूर्ण होगये ॥१८॥ आयुध-सहित वाहनोंसे दिशाएं और उपदिशायेंसब पूर्णहोगयीं॥१८.१९॥इसप्रकार विष्णु भगवान् पादत्रयात्मक भूमि को भिक्षा रूप में मांग और ग्रहण करके सब लोकों में जाकर परोपकार करने में तत्पर होगये ॥२०॥ भगवान् विष्णु ने स्वबल से राजाबलि को नियम में करके त्रिलोकी का राज्य इन्द्रको सौंप दिया७१३-७१६

॥ इति कश्यपदानवेन्द्र-बलि-कूर्माख्यानं समाप्तम् ॥



॥ अथ श्रीकूर्म्महनुमन्नुपाख्यानम् ॥

७१७ सूर्यपुत्रञ्च सुग्रीवञ्च, शक्रपुत्रञ्च बालिनम् ।
भ्रातरावुपतस्थुस्ते, सर्व एव हरीश्वराः ।
नलं नीलं हनूमन्तमन्यांश्च हरियूथपान् ।
वा. रा. बा. कां. सर्ग १७ । श्लो. ३२

७१८ पुत्रत्वञ्च गते विष्णौ, राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम् ॥१॥

७१९ सत्यसन्धस्य वीरस्य, सर्वेषां नो हितैषिणः ।
विष्णोः सहायवान् बलिनः, सृजध्वं कामरूपिणः ॥२॥

७२० मायाविदश्च शूरांश्च, वायुवेग समाञ्जवे ।
न यज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान्, विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥३॥

७२१ असंहार्यानुपायज्ञान्, सिंहसंहननान्वितान् ।
सर्वास्त्रगुणसम्पन्ना, नमृतप्राशनानिव ॥४॥

७२२ अप्सरासु च मुख्यासु, गन्धर्वीणां तनूषुच ।
यक्षपन्नगकन्यासु, ऋक्षविद्याधरीषुच ॥५॥

७१७ वे सब बानर सूर्यपुत्र सुग्रीव और इन्द्र पुत्र बाली (जो दोनों भाई थे) इन दोनों की सेवा में तत्पर हो गये, कितने ही वानर नलनील हनुमान तथा अन्य वानर यूथपों की सेवा स्वीकार कर ली ॥ ३२॥ जब विष्णु महात्मा दशरथ के यहाँ अपना पुत्रत्व स्वरूप होना स्वीकार कर चले गये तब भगवान् ब्रह्मा सब देवताओं से यह बोले हे देवताओ! तुम सब सत्यप्रतिज्ञ, शूरवीर हम सब के हितैषी, विष्णु के सहायक हो अतः तुम वीर पुरुषोंको (जो इच्छानुसार रूपधारण कर सकें) रचो ॥२॥ मायावी, शूरवीर, वेग में वायु तुल्य, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, विष्णु सदृश बली और ॥ ३ ॥ शत्रुओं से न हारने वाले, उपायज्ञ

(श्रीकूर्मे हनुमन्नुपाख्यानम्)

७२३ किन्नरीणाञ्च गात्रेषु, वानरीणां तनूषु च ।
सृजध्वं हरिरूपेण, पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥६॥

७२४ पूर्वमेव मया सृष्टो, जाम्बवानृक्षपुङ्गवः ।
जृम्भमाणस्य सहसा, मम वक्त्रादजायत ॥७॥

७२५ ते तथोक्ता भगवता, तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् ।
जनयामासुरेवन्ते, पुत्रान् वानररूपिणः ॥८॥

७२६ ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
चारणांश्च सुतान् वीरान्, ससृजुर्वनचारिणः ॥९॥

७२७ वानरेन्द्रमहेन्द्राभ, मिन्द्रो वालिन मूर्जितम् ।
सुग्रीवं जनयामास, तपनस्तपतांवरः ॥१०॥

वीरता में सिंहसमान, सब अस्त्र विद्या और शक्तिसम्पन्न और अमृतपान करने वालों के तुल्य अर्थात् वीर पुरुषों ॥४॥ एवम् मुख्य २ अप्सराओं, गन्धर्व पत्नी, यक्ष, सर्प, ऋक्ष की कन्याओं तथा विद्याधरियों, किन्नरियों, और वानरियों के शरीरों में अपने तुल्य पराक्रम वाले वानर रूपसे पुत्रों को उत्पन्न करो ॥६॥ ७१८-७२३

(श्री कूर्मी हनुमान्जी का उपाख्यान)

७२४ श्लो० ७ वां- मैंने पहिले ही जाम्बवान् ऋक्षराज को रच दिया है जो जम्भाई लेते हुए मेरे मुख से शीघ्र उत्पन्न हुआ है ॥७॥

(व्याख्या ऐसी उत्पत्ति असम्भव है) ब्रह्मा के ऐसा कहने पर देवताओं ने उनके शासन को अङ्गीकार करके वानर रूपी पुत्रों को उत्पन्न किया ॥८॥ महात्मा, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, सर्प और चारण नामक देवयोनिविशेषों ने बड़े वीर वानर पुत्र उत्पन्न किये ॥९॥ इन्द्रने वानरोत्तम महेन्द्र पर्वतों के तुल्य कान्ति यु.. अति बलिष्ठ बालीको और सूर्य ने सुग्रीव को पैदा किया ॥१०॥ ७२४-७२७

(श्रीकूर्मेहनुमन्नुपाख्यानम्)

७२८ बृहस्पतिस्त्वजनयत्, तारं नाम महाकपिम् ।
सर्ववानरमुख्यानां, बुद्धिमन्तमनुत्तमम् ॥११॥

७२९ धनदस्य सुतः श्रीमान्, वानरो गन्धमादनः ।
विश्वकर्मात्वजनय, न्नलं नाम महाकपिम् ॥१२॥

७३० पावकस्य सुतः श्रीमान्, नीलोऽग्निसदृशप्रभः ।
तेजसा यशसा वीर्या, दत्यरिच्यत वानरान् ॥१३॥

७३१ रूपद्राविण सम्पन्ना, वश्विनौ रूपसम्मतौ ।
मैदञ्च द्विविदञ्चैव, जनयामासतुः स्वयम् ॥१४॥

७३२ वरुणो जनयामास, सुषेणं नाम वानरम्
शरभं जनयामास, पर्जन्यस्तु महाबलः ॥१५॥

७३३ मारुतस्यात्मजः श्रीमान्, हनूमान् नाम वानरः ।
७३४ वज्रसंहननोपेतो, वैनतेयसमो जवे ।
सर्ववानरमुख्येषु, बुद्धिमान् बलवानपि ॥१६॥

---

७२८ सब वानरों में मुख्य, बुद्धिमान्, कपियों में महाकपि तारको बृहस्पति ने उत्पन्न किया ॥ ११ ॥

७२९ धनद का पुत्र श्रीमान् गन्धमादन वानर हुआ, महाकपि नल को विश्व-कर्माने उत्पन्न किया ॥ ॥१२॥

७३० नील वर्ण और अग्निवर्ण सदृश प्रभावाले पुत्र को पावकने उत्पन्न किया पावक के पुत्र नील ने अपने तेज और यशसे अन्य वानरों को पीछे छोड़ दिया ॥१३॥

७३१ धन ऐश्वर्य युक्त, अश्विनी कुमारों के रूप सदृश मैद और द्विविद को अश्वियों ने स्वयं उत्पन्न किये ॥१४॥

७३५ ते सृष्टा बहुसाहस्रा, दशग्रीववधे रताः ।
अप्रमेयबला वीरा, विक्रान्ताः कामरूपिणः ॥१७॥
७३६ मेरुमन्दरसंकाशा, वपुष्मन्तो महाबलाः ।
ऋक्ष-वानर-गोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे ॥१८॥
७३७ यस्य देवस्य यद्रूपं, वेषो यश्च पराक्रमः।
अजायत समस्तेन, तस्य तस्य सुतः पृथक् ॥१९॥
७३८ गोलाङ्गूलीषु चोत्पन्नाः, किञ्चित् सम्मतविक्रमाः ।
ऋक्षीषुच तथा जाता, वानरा किन्नरीषु च" ॥२०॥
७३९ देवा महर्षिगन्धर्वा, स्तार्क्ष्या यक्षा यशस्विनः ।
नागाः किम्पुरुषाश्चैव, सिद्धविद्याधरोरगाः ॥२१॥
७४० बहवो जनयामासु हृष्टास्तत्र सहस्रशः ।
चारणांश्च सुतान् वीरान्, सृजुर्वन चारिणः ॥२२॥

---

७३२ वरुण का पुत्र सुषेण नामक वानर हुआ, और महाबली पर्ज्जन्य शरभ का पुत्र हुआ ॥१५॥

७३३ मारुत का पुत्र श्रीमान् हनुमान वानर हुआ, जिसका शरीर वज्रसम दृढ़ और जो वेग में गरुड़ समान था ॥१५॥

७३४ हनुमान सब वानरों में मुख्य बुद्धिमान् और बलवान् थे ॥१५॥

७३५ रावण के वध में तत्पर बल में अतुल, बड़े शूर विजयी और इच्छानुसार रूप बनाने वाले ऐसे असंख्य वानर उत्पन्न (तैयार) किये गये ॥१७॥

७३६ इस प्रकार मेरु और मन्दर पर्वत के तुल्य, देहधारी और शक्ति शाली अनेक ऋक्ष-वानर और लङ्गूर बहुत शीघ्र उत्पन्न हो गये॥१८ जिस देवता का जैसा रूप, वेष, और पराक्रम था तत्तुल्य ही उन २ के पुत्र पृथक २ उत्पन्न हुए॥१९॥ इनमें से बड़े पराक्रमी कोई तो लङ्गूरोंकी स्त्रियों कोई ऋक्ष की कोई वानरियों की और किन्नरियों की स्त्रियों में उत्पन्न हुए ॥२०॥

(श्रीवाल्मीकि [illegible])

७४१ अप्सराःसु च मुख्यासु, [illegible] रीषु च ।
नागकन्यासु [illegible] ॥२३॥
७४२ कामरूपबल[illegible] ।
सिंहशार्दूलस[illegible] ॥२४॥
७४३ शिलाप्रहरणाः [illegible]
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे, सर्वे [illegible] कोविदाः ॥२५॥
७४४ विचालयेयुः शैलेन्द्रान्, [illegible]येयुः स्थिरान् द्रुमान् ।
क्षोभयेयुश्च वेगेन, समुद्रं सरितां पतिम् ॥२६॥
७४५ दारयेयुः क्षितिं [illegible] तोयदान् ॥२६॥

देवता, महर्षि, गन्धर्व गरुड़ [illegible] यशस्वी यक्ष दिग्गज, किन्नर, सिंह, विद्याधर, और सर्प ये सभी [illegible] प्रसन्न हुए वहां बहुतों ने चारणों, पुत्रों वीरो और वनमें विचरने वालों को उत्पन्न किया ॥२२॥७३५-७४०

७४१ मुख्य २ अप्सराओं [illegible] नाग [illegible] और गन्धर्व पत्नियों में पुत्र उत्पन्न किये गये ॥२३॥ ये सब [illegible] रूप [illegible] में निपुण बलयुक्त, स्वेच्छाचारी अभिमान और बल में सिंह समान थे ॥२४॥ शिला (पत्थर) तथा वृक्षों द्वारा युद्ध करने वाले नख और [illegible] से [illegible] तथा सब अस्त्रविद्या में निपुण थे ॥२५॥ पर्वतों के हिलाने, वृक्षों के तोड़ने, अपने वेगबल से नदियों के पति समुद्र को क्षोभित करने वाले ॥२६॥ पैरों से पृथ्वी को फाड़ने, समुद्र को तरने आकाश स्थल में प्रवेश करने और मेघों के पकड़ने मे निपुण थे ॥२७॥

७४१-७४५ ॥

॥ श्री[illegible] ॥

७४६ [illegible] [illegible] गजानां वने ।
[illegible] पातने [illegible] विहङ्गमान् ॥२८॥

७४७ ईदृशानां प्रसूतानि, हरीणां कामरूपिणाम् ।
शतं शतसहस्राणि, यूथपानां महात्मनाम् ॥२९॥

७४८ ते प्रधानेषु यूथेषु, हरीणां हरियूथपाः ।
बभूवुर्यूथपश्रेष्ठा, वीरांश्चाजनयन् हरीन् ॥३०॥

७४९ अन्ये ऋक्षवतः प्रस्था, उपतस्थुः सहस्रशः ।
अन्ये नानाविधाञ्छैलान् काननानि च भेजिरे ॥३१॥

७५० सूर्यपुत्रं च सुग्रीवं, शक्रपुत्रं च वालिनम् ।

७५१ भ्रातरावुपतस्थुस्ते, सर्वे एव हरीश्वराः ।
नलं नीलं हनूमन्तमन्यांश्च हरियूथपान् ॥३२॥

७४६ ये वीर वानर वनों में घूमते हुए, मत्त हस्तियों के पकड़ने, चिल्लाकर गर्जने और आकाश में से उड़ते तथा पक्षियों के गिराने में बडे समर्थ तथा निपुण थे। इस प्रकार के कामरूपधारी वानर सैकड़ों सहस्रों तथा लक्षों में उत्पन्न हुए ॥२९॥ सुग्रीव से लेकर यूथप पर्यन्त मुख्य २ वानरों में सेनापति हुए ॥३०॥ उनमें से सहस्रों वानर जो ऋक्षवान् पर्वतके शिखरोंमें रहने लगे और अन्य बहुत प्रकार के पर्वत तथा वनों में चले गये ॥३१॥ वे सब वानर सूर्य पुत्र सुग्रीव और इन्द्र के पुत्र वालीकी जो दोनों भाई थे सेवा करने लगे, और कतिपय वानरों में नल नील हनुमान् तथा अन्य वानर यूथपों की सेवा स्वीकार की ॥३२॥ ७४६-७५१

(श्रीकूर्मि-हनुमदुपाख्यानम्)

७५२ ते तार्क्ष्य-बल-सम्पन्नाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
विचरन्तोऽर्दयन् दर्पात्, सिंह-व्याघ्र-महोरगान् ॥३३॥
७५३ तांश्च सर्वान् महाबाहुः वाली विपुलविक्रमः ।
जुगोप भुजवीर्येण, ऋक्ष-गोपुच्छ-वानरान् ॥३४॥
७५४ तैरियं पृथिवी शूरैः सपर्वतवनार्णवा ।
कीर्णा विविध संस्थानैः, नानाव्यञ्जनलक्षणैः ॥ ३५॥
७५५ तैर्मेघ-वृन्दाचल-कूट-कल्पै, र्महाबलैर्वानरयूथपालैः ।
बभूव भूर्भीमशरीररूपैः, समावृता रामसहायहेतोः ॥३६॥
(वा. रा. । काण्ड । सर्ग १७ । श्लो. १-३६)

(श्रीकूर्मि-हनुमन्नुपाख्यानम्)

७५६ एवं बहुविधो वाच्यो, रामो दाशरथिस्त्वया ।
यथा मामाप्नुयाच्छीघ्रं, हत्वा रावणमाहवे ॥६८॥
वा. रा. । सुन्दरकां. । सर्ग ६८

७५२ गरुड़ के समान बली, युद्ध में निपुण सब वानर अपने बलाभिमान से वन में विचरते हुए सिंह व्याघ्र और बड़े २ सर्पों को मारने लगे ॥२३॥ बड़ी भुजा वाले बल शाली बालीने अपने भुजबल से उन सब ऋक्ष लंगूर और वानरों की रक्षा की ॥ ३४ ॥ अनेक प्रकार के स्थूल सूक्ष्मादि शरीर तथा असाधारण धर्म के द्योतक लक्षणों वाले वीर वानरों से सर्वत्र पर्वत वनों में यह पृथ्वी पूर्ण हो गयी ॥ ३५॥ इस प्रकार यह पृथ्वी रामचन्द्र की सहायता के कारण मेघ तथा पर्वताकार शरीरवाले महाबली और भयंकर शरीर तथा रूपसे युक्त वानरों से आच्छादित हो गयी ॥३६॥ ७५२-७५५

७५७ तन्नियोगे नियुक्तेन, कृतं कृत्यं हनूमता ।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥१०॥
(वा. रा. । युद्ध कां. । सर्ग १ श्लो. १०)

७५८ अहंच रघुवंशश्च, लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य,धर्मतः परिरक्षिताः ॥वा.।यु.।स.१श्लो.११

७५९ 'धर्मो रक्षति रक्षितः' । मनु० ।

७६० इदन्तु मम दीनस्य, मनोभूयः प्रकर्षति ।
यदि ह्यस्य प्रियाख्यातु, र्न कूर्मि सदृशंप्रियम् ॥
वा. । यु. । स. १ । श्लो. १२

७६१ कारुण्यकर्ता दाताच, कर्मिकर्मःकृतान्तकः ।
कूर्मः कूर्मपतिः कूर्म—भर्ता कूर्मस्य प्रेमवान् ॥
॥ रुद्रयामलतन्त्रे ॥

७५६ हनुमान् का राम के प्रति सीता का सन्देश—सीता कहती है कि हे वीर हनुमान! प्राण नाथ राम से कहना कि युद्ध रावण को जैसे हो शीघ्र प्राप्त हों इस प्रकार मेरी ओर से बहु प्रकार राम से निवेदन करना ॥६८॥ श्री रामकी आज्ञा में नियु । हनुमान् ने सब काम पूराकिया और अपने आप उत्साह युक्त सुग्रीव को भी सन्तुष्ट किया ॥१०॥ मैं तथा राम और महाबली लक्ष्मणजी आज धर्म से परिरक्षित महारानी सीताजी के दर्शनों को पाकर कृतकृत्य हुवे ॥१॥ महाराज राम कहते हैं कि— मुझ दीन का मन बारम्बार हनुमान् की ओर आकर्षित हो रहा है, ऐसा प्रिय वचन कहने वाला कूर्मि अर्थात् वीर बहुकर्मा हनुमान के सदृश (समान) हितैषी मेरेलिये इस समय संसार में दूसरा नहीं है ॥१२॥ यहां कूर्मि शब्द हनुमान् का विशेषण है ॥ ७५६-७६०

॥ इति श्री कूर्मिहनुमन्नुपाख्यानं समाप्तम् ॥

(अथ [illegible])

(अ[illegible] करते हैं)

७६२ इति [illegible] ।

रोमाञ्चक[illegible] सुरासुराः ॥१॥

([illegible])

७६३ धन्याहं कृत पुण्याहं, [illegible] मया ।

यदेप क्षेत्रमाहात्म्यं, [illegible] ॥२॥

७६४ भगवन् ! देवदेवेश ! संसारार्णवतारक !

पृष्टस्तु यन्मया [illegible] हर ! ॥३॥

७६५ पुनश्च देवदेवेश ! [illegible] ।

नच तृप्तिं [illegible] महेश्वर ! ॥४॥

७६६ किञ्चित् [illegible] ।

तन्मे कथय [illegible] जगत्प्रभो ! ॥५॥

७६२ सूत बोला— कि देवी [illegible] पर उसके नेत्र क्रोध के मारे रक्तवर्ण (लाल २) होगये और वह [illegible] तथा रोमाञ्च युक्त होगयी उस सुन्दर भौंवों वाली देवी से [illegible] ॥१॥ देवी-बोली जो इस प्रभास क्षेत्र की महिमा महादेवजी से मैंने सुनी है [illegible] पुण्या, तपस्विनी और धन्या हूं ॥२॥ हे भगवान् [illegible] ! संसार रूपी समुद्र से तारने वाले महादेवजी जो मैंने आपसे पूर्व प्रश्न किये [illegible] उत्तर यथायोग्य मैंने आपसे सन्तोप जनक पाया ॥३॥ हे देवदेवेश [illegible] ! आपके अमृत रूपी वाक्य श्रवण से मेरी तृप्ति नहीं होती ॥४॥ प्रभास [illegible] के विषय में मैं कुछ और भी पूछना चाहती हूं हे जगत प्रभो कामेश ! [illegible] करके आप मुझसे कहिये ॥५॥

७६२-७६

(भूमिस्वरूपं भारतवर्षस्य परिचयः)

७६७ भूमेः पिण्डः [illegible] -कुलैर्ज्योतिर्नक्षत्र
कक्षा ।
वृत्तैर्वृत्तो वृतः [illegible] ोमतेजोमयम् ॥
नान्याधारः [illegible] नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे ।
निष्ठं विश[illegible] [illegible] [illegible]-मनुजा-दित्य-दैत्यं
समन्तात् ॥२॥

(सि. शि. गोला. श्लो. (२))

(शंकर उवाच)

७६८ पृथिव्या गर्भमध्यस्थं, जम्बूद्वीपमिति स्मृतम् ।
तत्र वै नवधा भिन्नं, [illegible] सुन्दरि ॥६॥
७६९ तस्याद्य भारतं वर्षं, [illegible] नवधा स्मृतम् ।
नवयोजनसाहस्रं, दक्षिणोत्तरमानतः ॥७॥
७७० अशीतिश्च सहस्राणि, पूर्वपश्चायतं स्मृतम् ।
उत्तरे हिमवानास्ते, क्षारोदो दक्षिणे स्थितः ॥८॥
७७१ एतस्मिन्नन्तरे देवि ! भारतं क्षेत्रमुत्तमम् ॥
कृतं त्रेताद्वापरश्च, तिष्यं युगचतुष्टयम् ॥९॥
७७२ अत्रैवैषा युगावस्था, चतुर्वर्णाश्च वै जनः
चत्वारि [illegible], तथैवैकं शरच्छतम् ॥१०॥

(कूर्मरूपस्य भारतवर्षस्य वर्णनम्)

७७३ जीवन्त्यत्र नरा देवि, कृत-त्रेता-दिषु क्रमात् ।
यदेतत् पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ॥११॥

७७४ दक्षिणापरतो यस्य, पूर्वेण च महोदधिः ।
वर्षाणि भारताद् यानि, पत्राण्यस्य चतुर्दिशम् ॥१२॥

७७५ भारते केतुमालंच, कुरु भद्राश्वमेवच ॥
हिमवानुत्तरेणास्य, कार्मुकस्य यथा गुणः ॥१३॥

७७८ तदेतत् भारतं वर्षं सर्वबीजं वरानने ।
तत् कूर्मभूमिनान्यत्र, सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः ॥१४॥

७७९ अपि मानुष्यमाप्स्यामो, भारते प्रयुत क्षितौ ॥१५॥
भद्राश्वेऽश्वशिरः विष्णुः भारते कूर्मसंस्थितः ॥
वराहः केतुमालेच, मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥१६॥

जो यह वायु आकाश और तेज भूतवाला भूमिका पिण्ड गोलाकार है वह चन्द्रमादि कक्षावृत्तों से घिरा हुवा अपनी शक्ति से ही नियुक्त आकाश में स्थित है इस भूमि के पृष्ठ भाग में जगत है अर्थात् दानव, मनुष्य, देव असुर सब ओर से बसे हुवे हैं ॥२॥

पृथिवी के भीतर केन्द्र अर्थात् बीचों बीच का भाग जम्बूद्वीप कहाता है हे सुन्दरी वह जम्बूद्वीप नवखण्डों में बटा हुवा है, दक्षिण और उत्तर के मानसे नव हजार योजन अर्थात् ३६ हजार कोश है। चार कोश का एक योजन माना गया है ॥ ६ । ७ ॥

और पूर्व ओर अस्सी हजार योजन चौड़ा है उस जम्बूद्वीप के उत्तर में हिमालय नगाधिराज है और दक्षिण में समुद्र है ॥८॥

हे देवि इतने अन्तर में यह उत्तम भारत वर्ष देश है, इसी में सत्य युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चारों युग आते जाते हैं ॥९॥

इसी भारत वर्ष में चारों युगों और चारों वर्णों की यथार्थ व्यवस्था है तथा, ४३२१०० वर्षाणि' इत्यादि की भी व्यवस्था है ॥१०॥ ७६७-७७२

७८० तेषु नक्षत्रविन्यासाद्, विषयाः समवस्थिताः ।
चतुर्ष्वपि महादेवि!, कूर्मरूपेण संस्थितः ॥१७॥
नक्षत्रग्रहविन्यासं, तस्य ते कथयाम्यहम् ।
प्राङ्मुखो भगवान् देवो, कूर्म रूपी व्यवस्थितः ॥१८॥

(कूर्मरूपस्य भारतवर्षस्यवर्णनम्)

७८१ आक्रम्य भारतंवर्ष, नवभेदमिदं प्रिये ।
नवधा संस्थितस्यास्य, नक्षत्राणि निबोध मे ॥१९॥

७७३ महादेवजी कहते हैं कि हे देवि ! कृतयुग त्रेता आदि चारों युगों में क्रमशः समस्त प्राणी इसी भारत में जीवित हैं जो यह मैंने गोलाकार पृथ्वी का चतुष्पत्र तुम से कहा है ॥११॥

इस के पूर्व और दक्षिण समुद्र है इस से भिन्न और जितने देश हैं वे इस के चारों दिशाओं में है, केतुमाल, कुरु, भद्रनाश्व इत्यादि ॥१२॥

इस भारत के उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत, ऐसा स्थित है जैसे कार्मुक (धनुष) की (गुण) लर गोलाकार कार्मुक में रहती हैं हे देवि इस प्रकार का यह भारत वर्ष सब देशों का बीज (मूल) है । यह भारत कूर्म (गोलाकृति) भूमि है, पुण्य और पाप की प्राप्ति यहां ही है यह अच्छा और बुरा है ऐसा विवेक इसी कूर्म भूमि में विशेषतः है ॥१४॥

हे देवेशि- सदा सब की यह इच्छा रहती है कि इस भारत भूमि में ही फिर से हमारा मनुष्य जन्म हो ॥१५॥

भगवान् विष्णुजी भद्रनाश्व में अश्वशिर रूप और भारत में कूर्म रूप से स्थित हुवे थे ॥१६॥

तथैव केतुमाल में वराह सदृश बलधारीरूप, तथोत्तर में मत्स्य रूप से जगदुद्धार किया था ॥१६॥

हे महादेवि ! पूर्व कहे हुए चारों में आकाशीय नक्षत्रों के सङ्केत से विषय

७८२ कृत्तिका रोहिणी सौम्यं, तृतीयं कूर्मपृष्ठगम् ॥
रौद्रं पुनर्वसुः पुष्यं, नक्षत्रत्रितयं मुखे ॥२०॥
७८३ आश्लेषाऽथ्यन्तथा पैत्रं, फाल्गुनी प्रथमा प्रिये ॥२१॥
नक्षत्रत्रितयं पादं, संस्थितं पूर्वदक्षिणम् ।
फाल्गुनी चोत्तरा हस्तं, चित्रा चर्क्षं त्रयं स्मृतम् ॥२२॥
७८४ कूर्मस्य दक्षिणे कुक्षौ, चर्क्षं पादन्तथाऽपरम् ।
स्वाती विशाखा मैत्रं, नैर्ऋते त्रितयंस्तम् ॥२३॥
७८५ ऐन्द्रं मूलं तथाऽऽषाढा, पृष्ठे तु त्रितयं स्मृतम् ।
अषाढा श्रवणञ्चैव, धनिष्ठा चात्र शीद्धता ॥२४॥
७८६ नक्षत्रत्रितयं पादे, वायव्ये तु यशस्विनि !
वारुणञ्चैव नक्षत्रं, तथा प्रोष्ठपदाद्वयम् ॥२५॥
७८७ कूर्मस्य वामकुक्षौ तु, त्रितयं संस्थितं प्रिये !
रेवती चास्य दैवत्यं याम्यं चर्क्षमिति त्रयम् ॥
ईशपादे समाख्यातं, शुभाशुभफलं शृणु ॥२६॥

अर्थात् देश स्थित है ॥१७॥
हे देवि अब मैं तुमसे नक्षत्र और ग्रहों के विन्यास (रचना) को कहूंगा भगवान् सूर्य पूर्व दिशा में कूर्म रूप अर्थात् गोलाकार स्थित है ॥१८॥
७७३-७८०
७८१ शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये भारत वर्ष के ९ नौ खण्ड हैं। नव खण्ड में स्थित भारत के नक्षत्रों को तुम मुझसे सुनो ॥१९॥ कृत्तिका, रोहिणी और सोम ये तीनों कूर्म की पीठपर स्थित हैं॥ और रुद्र पुनर्वसु तथा पुष्य ये तीनों कूर्म के मुख में स्थित हैं ॥२०॥ हे प्रिये ! आश्लेषा तथा पैत्र और प्रथमा फाल्गुनी कूर्म के पूर्व दक्षिण और तीनों का चतुर्थ भाग स्थित हैं, और

(कूर्मरूपस्य भारतवर्षस्य वर्णनम्)

७८८ यस्यर्क्षस्य पतिर्यो वै, ग्रहस्तद्वैन्यतो भयम् ।
तद्देशस्य महादेवि !, तथोत्कर्षे शुभागमः ॥२७॥

७८९ एष कूर्मो मयाख्यातो, भारते भगवानिह ।
नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा, यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥२८॥

७९० मेषवृषौ हृदो मध्ये, मुखे च मिथुनादिकौ ।
प्राग्दक्षिणे तथा पादे, कर्कसिंहौ व्यवस्थितौ ॥२९॥

७९१ सिंह कन्या-तुलाश्चैव, कुक्षौ राशित्रयं स्मृतम् ।
घटोथ वृश्चिकाश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे ॥३०॥

७९२ युद्धे तु वृश्चिकाश्चैव, सधनुश्च व्यवस्थिताः ॥३१॥

७९३ कुम्भमीनौ तथा चास्य, उत्तरां कुक्षिमाश्रितौ ।
मीनमेषौ महादेवि ! पादे पूर्वोत्तरे स्थितौ ॥३२॥

७९४ कूर्मदेशा तथा चर्क्षाणि, देशेष्वेतेषु वै प्रिये ।
राशयश्च तथार्क्षेषु, ग्रहा राशिव्यवस्थिताः ॥३३॥

जो चौथाई भाग है वह कूर्म के दक्षिण ओर स्थित है, तथा स्वाती, विशाखा, मैत्र ये तीनों कूर्म के दक्षिण कोने में है ॥२३॥ ऐन्द्र, मूल और अषाढ़ा ये तीनों कूर्म के पृष्ठ भाग में स्थित हैं, तथा अषाढ़ा श्रवण और धनिष्ठा है यशस्विनि ! ये तीनों वायव्य कोण में कूर्म के पैरों में स्थित हैं ॥२४॥ वरुण देवता सम्बन्धी नक्षत्र और दोनों प्रोष्ठ पदा हे प्रिये ! ये कूर्म के बांई ओर स्थित हैं ७८१-८७

७८८ जिस नक्षत्र का जो ग्रह स्वामी है हे महादेवि ! यदि वह ग्रह ठीक न हो तो उस देश के लिये भय है अर्थात् उसकी हानि है और उसके श्रेष्ठ में देश के लिये शुभ है ॥२७॥

(कूर्मरूपस्य भारतवर्षस्य वर्णनम्)

७९५ तस्माद् ग्रहर्क्षपीडा देशपीडां निर्दिशेत् ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति, दानहोमादिकन्तया ॥३४॥

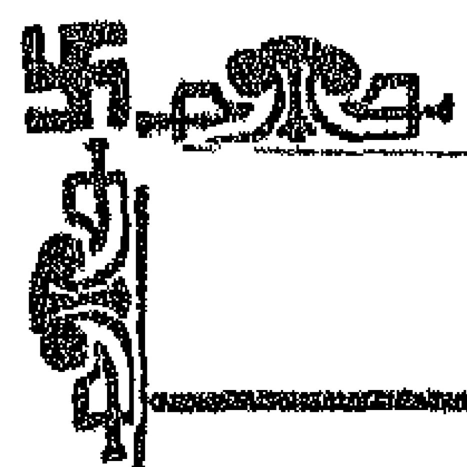
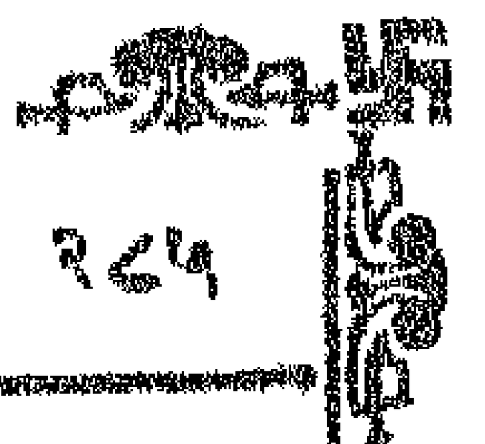
७९६ स एष वैष्णवः पादो, देवि मध्ये ग्रहोऽस्य यः
नारायणाख्यो ह्यचिन्त्यात्मा, कारणं जगतः प्रभुः ॥३५॥

७९७ भौम शुक्रबुधेन्द्वर्क, बुध-शुक्र-महीसुताः ।
गुरुमन्दाऽसुराचार्या, मेषादीनामधीश्वराः ॥३६॥

७९८ एवंविधो महादेवि ! कूर्मरूपी जनार्दनः
तस्य नैर्ऋतपादेतु, सौराष्ट्र इति विश्रुतः ॥३७॥

७९९ स चैवं नवधा भिन्नः पुरभेदेन सुन्दरि!
तस्य यो नवमो भागः सागरस्य च सन्निधौ॥३८॥

शिवजी कहते हैं कि हे देवि। भारत वर्ष में मैंने तुम से कूर्म को कहा, कूर्म अचिन्त्यात्मा नारायण है इसीमें सारा जगत् प्रतिष्ठित है ॥२८॥ कूर्म के हृदय के मध्य में मेष और वृष राशि स्थित हैं एवम् मुखमें मिथुनादि स्थित हैं, कर्क और सिंह पूर्व दक्षिण पैर में है सिंह कन्या और तुला ये तीनों राशियें कूर्म की कुक्षि (कोखली) में स्थित हैं घट और वृश्चिक दोनों दक्षिण और पश्चिम ओर पैरमें स्थित है ॥३०॥ वृश्चिकका आदि धनुष् राशि सहित कूर्म के पुच्छ में स्थित हैं ॥३१॥ कुम्भ और मीन राशि कूर्म के उत्तर ओर स्थित है हे महादेवि मीन और मेष कूर्म के पूर्व उत्तर पैर में स्थित है॥ ३२॥ हे प्रिये कूर्म देश से ही इन सब देश से ही इन सब देशों में नक्षत्र स्थित हैं एवम् राशियें और ग्रह राशि नक्षत्रों में व्यवस्थित हैं ॥३३॥
यदि ग्रह नक्षत्रों में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो गया होतो उनके विकार का प्रभाव (असर) मनुष्यों और अन्य प्राणियों पर पडता है उस समय स्नान दान और होम आदि करने चाहिये ॥३४॥ ७८८-९५

८०० प्रभास इति विख्यातो, मम देवि प्रियः सदा।
योजनानां दश द्वेच, विस्तीर्णः परिमण्डलम्॥३९॥
८०१ मध्येऽस्य पीठिका प्रोक्ता, पञ्चयोजनविस्तृता।
तन्मध्ये मद्गृहं देवि! तिष्ठत्युदधिसन्निधौ॥४०॥
८०२ तस्य मध्ये महादेवि! लिङ्गरूपोवसाम्यहम्॥४१॥
कृतस्मरात् पश्चिमतो, धनुषाञ्च शतत्रये।
वसामि तत्र देवेशि, त्वया सह वरानने॥४२॥

हे सुन्दरि! पुरभेद से यह भारत वर्ष नव (९) भागों में विभक्त है समुद्र के निकट भारत वर्ष का नवा भाग 'प्रभास' कहाता है उस प्रभास का घेरा २० योजन के विस्तार में है॥३९॥

७९६ (श्लो. ३५) वह यह वैष्णव पाद है हे देवि! इस वैष्णव पाद के मध्य में जो ग्रह है वह नारायण है, अचिन्त्यात्मा है,वह प्रभु है जगत् का कारण है॥३५॥

(३६) हे देवि! मङ्गल, शुक्र बुध, चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति ये सब मेषादि राशियों के अधीश्वर हैं॥३६॥

हे महादेवि! इस प्रकार के कूर्म रूपी भगवान् विष्णु हैं, उन भगवान् विष्णु के दक्षिण पैर की ओर सौराष्ट्र देश प्रसिद्ध है॥३७॥

हे सुन्दरि! पुरभेद से यह नवभागों में बंटा हुआ है इसका नवां भाग समुद्र के पास है॥३८॥

उसका नाम "प्रभास क्षेत्र" है। यह प्रभास क्षेत्र मुझे बड़ा प्यारा है इसका परि मण्डल (घेरा) २०योजन विस्तार वाला है॥३९

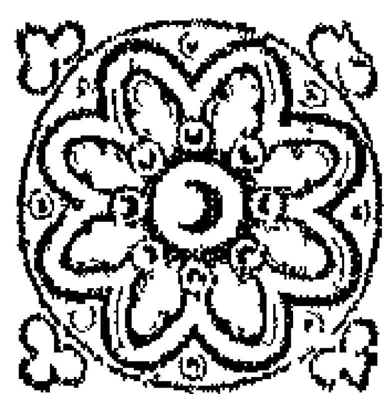
इस के बीच की पीठिका पांच योजन की विस्तृत है, हे देवि! समुद्र के पास स्थित उस प्रभास क्षेत्र के बीचो बीच मेरा घर है॥४०॥ ७९६-८०१

* ग्रह चेतन नहीं अतः उनको पीड़ा पहुचानी असम्भव है हां ग्रहों में कभी २ कोई विकार उत्पन्न हो जाता है, उस का प्रभाव मनुष्यों में भी पडे और देशकी हानि हो

८०३ तन्मे स्थानं महादेवि! कैलासादपि वल्लभम् ।
गोचर्ममात्रं तत्रापि, महागोप्यं वरानने ॥४३॥
८०४ अकथ्यं देव देवेशि! तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
एतत् प्राभासिकं क्षेत्रं, प्रभया दीपितं मम ॥४४॥
८०५ तेन प्रभासमित्युक्त, मादिकल्पे वरानने ।
द्वितीये तु प्रभा लब्धा, सर्वैर्देवैः सवासवैः ॥४५॥
८०६ मम प्रभाभादेवेशि! तेन प्राभासिकं स्मृतम् ।
प्रभावन्तो देवेशि ! यत्र सन्ति महासुराः ॥४६॥
(श्री स्कन्द पु० । प्रभास खं. अ.११ । श्लो.१-४६)

७०२ हे महादेव ! उस प्रभास क्षेत्र के बीच में लिङ्गरूप मैं बसता हूं ॥ ४१ हे वरानने ! पश्चिम से ३०० धनुषों के अन्तर पर कामदेव के स्मरण पूर्वक तेरे साथ मैं रहता हूं ॥४२॥ हे महादेवि ! यह स्थान मुझको कैलास से भी अधिक प्रिय है, हे वरानने! उस कैलास में भी बहुत गुप्तरूप गोचर्म के परिमाण में हे देवदेवेशि ! तुम्हारे स्नेह (प्रेम) से अकथनीय स्थान बना हुआ है। हे देवि! यह प्राभासिक क्षेत्र मेरी प्रभा से प्रकाशित है ॥४३॥४४॥ ८०२-८०४

॥ इति कूर्म रूपस्य भारत वर्षस्य वर्णनं समाप्तम् ॥



८०७ कूर्मी वीणा भेदश्च कच्छपी च
॥ अमर को० । नानार्थवर्ग श्लो. १३ ॥

(कूर्मी-दुर्गादेवी)

(अथ कूर्म्यां दुर्गादेव्याः स्तुतिः)

८०८ सावर्णिर्दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णिकस्ततः ।
धर्म सावर्णि को रुद्र पुत्रो रौच्यश्च भौत्यकः ॥
(सि. शि. । ग्रहगणिते मध्यमाधिकारे कालमानाध्यायः)
उत्तम चरितस्य रुद्र ऋषिः । महासरस्वती देवता ।
अनुष्टुप छन्दः ।

८०५ कूर्मी और कच्छपी ये दोनों नाम वीणा भेद के हैं अर्थात् एक प्रकार की कूर्मी वीणा होती है और इसी प्रकार एक तरह की कच्छपी वीणा होती है। वीणा प्राचीन काल का बाजा है जिस के हलके लम्बे काष्ठ की खूंटियों में तीन या चार लम्बे तार लपेटे रहते हैं। नीचे का भाग गोलाकार अलाबू के समान रहता है। आज कल जिसको सितार कहते हैं यह वीणा का ही भेद है ॥ भगवान विष्णु की पत्नी सरस्वती सदैव वीणा को बड़े प्रेम से बजाती थीं। कूर्मी नाम इसका इसी लिए है कि नीचे का भाग गोलाकार होता है।

८०६ सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णी, कोरुद्र, पुत्ररौच्य, भौत्यक ये मन्वन्तरों के नाम हैं

८०७ उत्तम चरित का रुद्र ऋषि। महा सरस्वती देवता। अनुष्टुप छन्द। भीमा शक्ति। सूर्यतत्व और वेद सामवेद है। स्वरूप है। महा सरस्वती के प्रीत्यर्थ जप में विनियोग है ॥

८०८ दुर्गा देवी के युद्ध का कारण – पूर्व काल में शुम्भ और निशुम्भ दोनों असुरों ने त्रैलोक्य विजयी अपने घमण्डरूपी बल के आधार पर इन्द्र के यज्ञ भाग को

८०९ भीमा शक्तिः । सूर्यस्तत्वम् । सामवेदः स्वरूपम् । महा-
सरस्वती प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥

८१० पुरा शुम्भ निशुम्भाभ्यां-मसुराभ्यां शचीपतेः
त्रैलोक्यं यज्ञभागश्च हृतो मदबला श्रयात् ॥२॥

८११ हृताधिकार स्त्रिदशा स्ताभ्यां सर्वेनिराकृताः ।
महा सुराभ्यां तां देवीं, स्मरन्त्यपराजिताम् ॥३॥
दुर्गासप्तशती अ. ५ । २ । ३ ॥

हर लिया था और देवताओं के सब अधिकार छीन कर उनको देश निर्वासित कर दिया था, उस समय उ दोनों असुरों के साथ युद्ध करने के लिए युद्ध में पराजित न होनेवाली दुर्गा देवी का स्मरण किया ॥

८०९ [अर्थः] देवों ने कहा कि हम लोगों को दुर्गा का वरदान है कि आवश्यकता पर क्षण भर में ही आप की सब आपत्तियों को दूर कर दूंगी ॥ ५ ॥ ऐसा विचार कर के देवगण हिमालय के राजा के पास पहुंचे और वहां उन्हों ने विष्णु माया देवी को प्रसन्न किया ॥ ७ ॥ दिव्य गुणों को धारण करने वाली महादेवी शिवा को हम देवों का सदैव प्रणाम हो , इसी शिवा का नाम ऊपर विष्णु माया देवी भी कहा है, शिव का अर्थ महादेव है । महादेव की पत्नी शिवा कहाती है । प्रकृति और भद्रा भी शिवा के ही नाम हैं ॥ ९ ॥ जो शिवा नित्य ही दुष्टों को रुलाने वाली गौरी व धात्री है, जो शरद ऋतु की चांदनी के समान उज्ज्वल चन्द्ररूपिणी और सुखदा है उस को हम सब देवों का वारम्वार प्रणाम हो ॥ १० ॥ स्तुति करने वाले नर नारियों की कल्याणकर्त्री, ऋद्धि और सिद्धि को देनेवाली कूर्मी अर्थात् युद्धादि बहुविध कर्मकुशला शिवा [दुर्गा] देवी को हम सब देवों का वारम्वार प्रणाम हो ॥ ११ ॥

॥ ८०९-८१३

(कूर्मी-दुर्गादेवी)

८१२ तयास्माकं वरो दत्तो, यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि, तत्क्षणात् परमापदः ॥५॥
८१३ इति कृत्वा मतिं देवा, हिमवन्तं नरेश्वरम् ॥७॥
८१४ नमो देव्यै महादेव्यै, शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्मृताम् ॥९॥
८१५ रौद्रायै नमो नित्यायै, गौर्यै धात्र्यै नमोनमः ।
ज्योत्स्नायै चन्द्ररूपिण्यै, सुखायै सततं नमः ॥१०॥
८१६ कल्याण्यै प्रणतामृध्यै, सिध्यै कूर्म्यै नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतांलक्ष्म्यै, शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥११॥

(युद्धशीला कूर्मी दुर्गा देवी)

८१७ दुर्गायै दुर्गपारायै, शरण्यै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै, धूम्रायै सततं नमः ॥१२॥

८१७ दुर्ग समान शरीर से हृष्ट पुष्ट किलों को पार करने वाली, शरणार्थियों को अपनी शरणमें लेनेवाली सर्वकर्त्री एवं जगत् प्रसिद्ध कृष्ण और धूसर रंगवाली, कूर्मी [बहुविध कर्मकारिणी] ऐसी दुर्गा को वारम्वार प्रणाम हो ॥ १२ ॥ अति सौम्या [बहुत शान्ता] [अति रौद्रा] अतिशय दुष्टों को रुलाने वाली, नम्र, प्रतिष्ठाप्राप्त, कृत्या दुर्गा देवी को हम सब देवों का प्रणाम हो ॥ १३ ॥ जो देवी प्राणी मात्र में व्यापक है अर्थात् सब की उपकारकर्त्री है जिसका नाम विष्णुमाया भी है उन्हीं को प्रणाम हो प्रणाम हो ॥१६॥ प्राणी मात्र की उपकारिका होने से यह दुर्गा देवी चेतना नाम से कही जाती है ॥१७॥ जो देवी प्राणि मात्र में बुद्धि रूप से और निद्रा रूपसे स्थित है देवता उसको प्रणाम करते हैं ॥२० ।२१॥ जो देवी प्राणीमात्र में क्षुधा (भूख) के रूप में स्थित है उसे प्रणाम हो ॥२४॥ अलंकार पक्ष में बुद्धि, क्षुधा, निद्रा इत्यादि सब प्रकृति के धर्म जानने चाहियें ॥ सत्, रजस् तमस् तीनों गुणोंवाली प्रकृति है उस प्रकृति [मादा] का वर्णन है ॥ धूम्रा कृष्णा रौद्रा विष्णु माया बुद्धि निद्रा और क्षुधा इत्यादी सभी धर्म प्रकृति के हैं । ८१७-८२३

८१८ अति सौम्यातिरौद्रायै, नतास्तस्मै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै, देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥१३॥
८१९ या देवी सर्वभूतेषु, विष्णुमायेति शब्दिता ॥१६॥
८२० या देवी सर्वभूतेषु, चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः ॥१७॥
८२१ या देवी सर्वभूतेषु, बुद्धि रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः ॥२०॥
८२२ या देवी सर्व भूतेषु, निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै , नमस्तस्यै नमोनमः ॥२३॥
८२३ या देवी सर्वभूतेषु, क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२४॥

(युद्धशीला दुर्गादेवी कूर्मी)

८२४ या देवी सर्वभूतेषु, छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः ॥२९॥
८२५ या देवी सर्वभूतेषु, शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः ॥३२॥
८२६ या देवी सर्वभूतेषु, तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः ॥३४॥
८२७ या देवी सर्वभूतेषु, क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३७॥
८२८ या देवी सर्वभूतेषु, जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः ॥४१॥

८२९ या देवी सर्वभूतेषु, शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥४७॥

(शुद्धशील कुमी दुर्गादेवी)

८३० या देवी सर्वभूतेषु, श्रद्धा रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥५१॥

८३१ या देवी सर्व भूतेषु, कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥५३॥

८३२ या देवी सर्वभूतेषु, लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥५६॥

८३३ या देवी सर्वभूतेषु, वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥५९॥

८३४ या देवी सर्वभूतेषु, स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥६२॥

८३५ या देवी सर्वभूतेषु, दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥६५॥

---

८२४ जो देवी प्राणीमात्र में छाया रूप (आश्रयरूप) शक्ति रूप तृष्णारूप, क्षमारूप, जातिरूप, और शान्तिरूप से स्थित है, उस दुर्गा देवी को सब देवता प्रणाम करते हैं ॥२९।३२।३४।३७४१।४७ अलंकार पक्ष में देवी का अर्थ त्रिगुणात्मक प्रकृति है। १ छाया २ शक्ति तृष्णा, क्षमा, जन्म, और शान्ति ये सभी प्रकृति के धर्म हैं इन्हीं में संसारस्थ प्राणी अनेक रूप धारिणी प्रकृति के चक्र में फँसे हैं अतएव यह प्रकृति का वर्णन है ॥
सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण की साम्यावस्था का नाम "प्रकृति सांख्य शास्त्र में कहा है

(युद्धशीला कूर्मी दुर्गादेवी)

८३६ या देवी सर्वभूतेषु, तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥६८॥

८३७ या देवी सर्वभूतेषु, मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥७१॥

८३८ या देवी सर्वभूतेषु, भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥७४॥

८३९ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री, भूतानाञ्चा खिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै, व्याप्त्यै देव्यै नमोनमः ॥७७॥

८४० चितिरूपेण या कृत्स्न, मेतद् व्याप्य जगत् स्थिता ॥७८॥

जो देवी दुर्गा प्राणीमात्र में श्रद्धारूप, कान्तिरूप, लक्ष्मीरूप, वृत्तिरूप स्मृतिरूप और दया रूप से स्थित है उसको हम सब देव प्रणाम करते हैं ये सब धर्म प्रकृति के भी हैं । जैसे "प्रकाशशीलं सत्वम्" सतोगुण प्रकाशशील, "क्रियाशीलं रजः" रजोगुण क्रिया शील है । "स्थितिशीलन्तमः" तमोगुण स्थिति शील है ॥ श्रद्धा धर्म का शिर है श्रद्धा और कान्ति [शोभाप्रकाश] का सम्बन्ध सतोगुण के साथ है । लक्ष्मी [धनाद्यैश्वर्य] और वृत्ति [जीविकादि] का रजोगुण के साथ सम्बन्ध है। स्मृति और दया का सत्वगुण के साथ सम्बन्ध है । ८२४-३५

८३६ (अर्थ) जो देवी प्राणीमात्र में तुष्टिरूप, मातृरूप, और भ्रान्तिरूप से स्थित है उसे हम देवों का प्रणाम हो ॥६८।७१।७४॥ जो इन्द्रियों की अधिष्ठात्री, जो सम्पूर्ण अन्य जीवों में व्यापक है उस देवी को सब देवोंका प्रणाम हो ॥७७॥ चेतन रूप से जिसका यह जगत् में व्यापक है जो प्राणियों में निरन्तर स्थित है उस दुर्गा को देवों का प्रणाम हो ॥७८॥ ८३६-८४०

(युद्ध शीला कूर्मी दुर्गादेवी)

८४१ एवं स्तवाभियुक्तानां, देवानान्तत्र पार्वती
स्नातुमभ्याययौ तोये, जाह्नव्या नृपनन्दन ! ॥८४॥
८४२ यो मां जयति सङ्ग्रामे, यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके, स मे भर्ता भविष्यति ॥
(दुर्गासप्तशती । अ. ५ । श्लो १२०)

८४१ ऋषि बोले– हे नृपनन्दन । देवों की स्तुति के पश्चात् पार्वती कूर्मी देवी गङ्गा-स्नान करने चली गयी ॥८४॥
(व्याख्या) दुर्गा सप्तशती अध्याय (५ , श्लोक १३ में लिखा है कि शुम्भ और निशुम्भ हम दो भाइ हैं चाहे मेरे साथ और चाहे मेरे छोटे भाई के साथ हे अम्बिके तू विवाह करले इसपर अम्बिका (दुर्गा देवी का प्रत्युत्तर ध्यान से पढने योग्य है । देवीने कहा सुन, जो मुझ को युद्ध में जीतलेगा, और जो मेरे क्षात्रधर्माभिमान के दूर करने समर्थ होगा, एवम् जो मुझसे बल में अधिक होगा वह मेरा (पति) स्वामी होसकता है यह मेरा पूर्वकृत दृढ़ प्रतिज्ञा है, इसको मैं अब कदापि भङ्ग नहीं कर सकतीहूं अतः न तेरे साथ और न तेरे भाई के साथ विवाद करूंगी (व्याख्या) यह है स्वाभाविक क्षात्रधर्म और यह है वीराङ्गनाओं की पहिचान (व्याख्या) दुर्गा देवी के ऐतिहासिक सम्बन्ध में । योमांजयति०" प्रमाण है ॥ स्त्रीलिंग में कूर्मी शब्द की सिद्धि । जैसे । कृदिकारादक्तिनः " यह वार्तिक है ।
अर्थ यह कि क्तिन् प्रत्यय को छोड़कर कृत्सञ्ज्ञक इकारान्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिंग में । ङीष् प्रत्यय होकर हो ॥ कूर्मि शब्द इकारान्त वेद में आया है और कृत्सञ्ज्ञक भी है अतः स्त्रीलिंग में, ङीष प्रत्यय होकर 'कूर्मिङीष । लशक०) (षः प्रत्ययस्य) । दोनों सूत्रों से । ङ ओं ष् की इत्सञ्ज्ञा और दोनोंका ॥ तस्य लोपः ॥ सूत्र से लोपहोकर । कूर्मि-प्रातिपदिक सञ्ज्ञा होने पर सु विभक्ति हुई तब । कूर्मी सु ॥ यहां यचिभम्" और यस्येतिच ॥" दोनों सूत्रों का कार्य होकर कूर्मी सु कूर्मी सु उ-दूरी इससे उका इत्सञ्ज्ञा और तस्यलोपः ॥ सूत्र से उका लोप तथा हलङ्याब्भ्यो दीर्घात्सूत्र से सु का लोप होकर कूर्मी सिद्ध ॥ हुआ ॥ चतुर्थी के एक वचन में 'कूर्म्यै' होता है ॥ ८४१-४२

(शुद्धशीला कूर्मी दुर्गादेवी)

८४३ शैलेन्द्रो हिमवान् नाम, धातूनामाकरो महान् ॥
तस्य कन्या द्वयं राम ! रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥१५॥
८४४ या मेरुदुहिता राम! तयोर्माता सुमध्यमा ।
नाम्ना मनोरमा नाम, पत्नी हिमवतः प्रिया ॥१६॥
८४५ तस्यांङ्गेयमभव ज्ज्येष्ठा हिमवतः सुता ।
उमानाम द्वितीयाऽभूत, कन्या तस्यैव राघव ! ॥१७॥
८४६ या कन्या शैलदुहिता, क याऽभीद्रघुनन्दन !
उग्रं सा व्रतमास्थ्याय, तपस्तेपे तपोधना ॥२१॥
८४७ उग्रेण तपसा युक्तां, ददौ, शैलवरः सुताम् ।
रुद्रायाऽप्रतिरूपाय, उमां लोकनमस्कृता ॥२२॥
८४८ एते शैलराजस्य, सुते लोकनमस्कृते ।
गङ्गा च सरिता श्रेष्ठा, उमा देवी च राघव॥२३॥
वा. रा. ।सर्ग ३५ । श्लो. १५-१६-१७-२१-२२-२३॥

८४३ हे राम! सब पर्वतों में श्रेष्ठ धातुओं की खानि युक्त नगाधिराज हिमालय नाम-बहुत बडा पर्वत है उसके अन्तिम दो कन्यायें थीं ॥१५॥
व्याख्या– यह अलंकार रूपसे वर्णन है, वास्तव में हिमालय नामका कोई क्षत्रिय राजा था जिसके दो कन्याएंथीं ॥ हेराम! उन दोनों कन्याओंकी सुन्दर कटिभाग से युक्त मनोरमा नामी माता थी जो हिमालयकी पत्नी थी ॥१६॥
हिमालय की ज्यष्ठा कन्या गङ्गा और दूसरी छोटी कन्या उमाथी ॥१७॥
हे रघुनन्दन ! जो दूसरी हिमवान् की कन्या थी वह तपस्विनी बडे व्रत का अवलम्बन कर तप करने लगी ॥२१॥ पर्वतश्रेष्ठ हिमालयने सदृश गुण कर्म स्वभाववाले शिवजी को तपस्विनी लोक सत्कृत उमा को देदिया ॥२२॥ हे राघव ! लोक में पूजित नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा और उमा देवी हिमालय निवासी क्षत्रिय राजा की पुत्री थीं ॥२३॥ वा० रा० सर्ग ३ श्लोक ८ में लिखा है कि शिवजी से कोई सन्तान उमा देवी से नहीं थी८४३-४८

(युद्धशीला कूर्मी दुर्गादेवी की प्रतिज्ञा)

८४९ वैवस्वतेऽन्तरप्राप्तेऽष्टाविंशतितमे युगे ।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्या, वुत्पतस्येते महासुरौ ॥४१॥
दुर्गासप्त. अ. ९-४१

८५० नन्दगोपगृहे जाता, यशोदा गर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२॥

८४९ वैवस्वत मनु के २८ वें महायुग में दैत्यों में बड़े दैत्य शुम्भ और निशुम्भ उत्पन्न होंगे ॥१४॥ दुर्गा ने अपने देहान्त से पूर्व यह प्रतिज्ञा की थी कि वैवस्वत मन्वन्तर के २८ वें महायुग में येही शुम्भ निशुम्भ फिर उत्पन्न होंगे। उस समय मैं नन्द गोप के घर में यशोदा देवी के गर्भ से उत्पन्न हो. उन दोनों असुरों का नाश करूंगी ॥४२॥ ८५०

(व्याख्या) महादेव और पार्वती का व्रत अबभी भाद्र कजली तीजके नाम से भारत की देवियों में प्रचलित है उस दिन देवियां जल और अन्न आदि सबका परित्याग रखती हैं। अर्थात् न जल पीती और न अन्न खाती हैं। यह व्रत संशोधन योग्य है कि किन देवियों को करना उचित है और किन को उचित नहीं है- इसका विचार आयुर्वेदानुसार होना चाहिये ॥

॥ इति श्रीकूर्म्या दुर्गादेव्याः शुम्भनिशुम्भाभ्यां युद्धं समाप्तम् ॥

यह श्री कूर्मी (स्त्री) दुर्गा देवी का माहात्म्य
और शुम्भ निशुम्भ के साथ युद्ध तथा माहात्म्य समाप्त हुआ

(कूर्मशब्द का अर्थभेद से प्रयोग)

८५१ वह्निबीजं समारुतं च, कूर्मबीजं समन्वितम् ।
आदित्यप्रभवं बीजं, शक्तिबीजोद्भवं सदा ॥२०॥
स्क० पु० सह्याद्रिखण्डान्तर्गत धर्म खं० ।
अ० २० । श्लो. २०॥

८५२ कण्ठप्रदेशे भवतादिह नीलकण्ठी, भूदारशक्ति रनिशं कृकाटिकायाम् । कौर्म्यं सदेशमनिशं भुजदण्ड मन्द्री, पद्माच प्राणिकलकं नतिकारिणांनः ॥स्क० पु० । काशी खं० । उत्तरा० । अ० ७२ । श्लो० ५९॥

८५३ आधार शक्तिमङ्कुर, निभां कूर्मशिलास्थिताम् ।
यजेद् ब्रह्म शिलारूढं, शिवस्याऽनन्तमासनम् ॥
(अग्नि पु० । अ० ७४ । श्लो० ४४)

८५४ यस्यांशलेशलवलेश-शतांशलेशो, लेशोंजगञ्जनन कर्मगतिः प्रणाशम् । यस्याङ्गवामभुजभूषित कैटभारिः, दक्षाङ्गनेत्रजननः कण्ठाहरीयः ॥१॥

---

८५१ अग्नि, वायु, और आदित्य प्रभव बीज का कारण कूर्मशक्ति अर्थात् उपादान कारण प्रकृति है ॥ कूर्म शक्ति से ही ये सब उद्भूत (प्रकट) हैं ॥२०॥ गले में शिव की कण्ठी, कृकाटिकामें भूदार शक्ति, भुजाओं में कौर्मी अर्थात् बहु कर्मकर्त्री ऐन्द्री शक्ति, हाथों में पद्मा, ये सब शक्तियें शक्ति के नमन कर्ताओं मे होती हैं ॥५९॥ जैसे सूक्ष्म अङ्कुर का आधार बीज होता है वैसेही उपासक के बैठने का आधार आसन है उस आसन का नाम कूर्म शिला है अर्थात् गोलाकार शिला वाले आसन पर बैठ कर यज्ञ वेदी में ब्रह्मा यजन करें ॥ जैसे शिवजीका अनन्त नामक आसन शिला है, वैसे यह ब्रह्मा का आसन है ॥४४॥

(कूर्मशब्द का अर्थभेद से प्रयोग)

८५५ कामरूपा क्रियाशक्तिः कमलोत्पलमालिनी ।
कूटस्था करुणा कान्ता, कूर्मयाना कलावती ॥४४॥
(स्क. पु. । अ. २९ । श्लो. ४४)

८५६ भीमनक्रानुलिप्ताङ्गीं, कूर्मलक्षणभूषिताम् ।
निपानं श्वापदां पीडा, नृभिः पीनपयोधराम् ॥३४॥
(हरिवंश पु. । पर्व ८२ अ. ११ । श्लो. ३४)

८५७ कौर्मी शक्तिर्महालक्ष्मी, दक्षिणे पाशपाणिका ।
बन्धातिविघ्न सङ्घातं, क्षेत्रस्यास्य प्रतिक्षणम् ॥६१॥
(स्क० पु० । काशी खं ० । अ० ७० श्लो ६१)

जगत् की उपादान कारण शक्ति अर्थात्– प्रकृति है इस प्रकृति से ही भगवान् जगत् की रचना करते हैं, उस भगवच्छक्ति की उपासना से मनुष्यों के दुष्ट कर्म नाश होजाते हैं, जो भगवान् दक्ष नेत्र से (असम्भव) उत्पन्न हैं जिसके वाम (बायें) बाहु में कैटभारि (कृष्ण) विराजमान हैं वही सब के उपास्य (इष्टदेव) हैं ॥ यह आलङ्कारिक वर्णन है वास्तव में ईश्वर निराकार है ॥५९॥
८५१-८५४

८५५ आदि शक्ति ही क्रिया शक्ति है वही कामरूपा अर्थात कामनाओं की स्वरूपिणी है । और कमल की माला समान शोभित है (कूटस्था) विनाशरहित, सबकी सहायकर्त्री कमनीया और कूर्म सञ्ज्ञक ईश्वर के नियम में आरूढ़ है वह कूर्म कला का एक अंश है ॥४४॥

वह शक्ति भयकंर (नक्र) घड़ियाल जल-जन्तु के समान चित्र विचित्र, जिस के अङ्ग केशर चन्दनादि से अनुलिप्त हैं, जो कूर्म (कूर्म जलजन्तु के लक्षणों से भूषित है अर्थात् जैसे कूर्म अपने अङ्गों को सिकोड़ लेता और फैला भी देता है ऐसे ही यह शक्ति (प्रकृति) जब कार्य से कारणावस्था को प्राप्त होती है उस समय संकुचित अर्थात् सूक्ष्म परमाणुरूपा हो जाती है एवम् वही जब कारण से कार्य दशा में आती है तब वह नानारूपों में फैल जाती और

८५८ कल्याण्यै प्रणतामृद्धयै, सिद्धयै कूर्म्यै नमोनमः ।
८५९ नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै, शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥ दु०
सप्तश० । अ० ५ श्लो ११ कूर्मी वीणाभेदश्च कच्छपी
॥ अमर को० । नानार्थव० । श्लो० १३॥

(कूर्म-शब्द का अर्थभेद से प्रयोग)

८६० एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः ।
सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरस्तदा, ॥
कूर्म पु. । अ. ४५ ।
॥ 'पृथिव्यै कूर्म्यै' । इति ।
८६१ भूमेःपिण्डः शशाङ्कज्ञ-कविरवि-कुज ज्यार्किनक्षत्रकक्षाः ।
वृत्तै र्वृत्तो वृतः सन् मृदनिल सलिल व्योमतेजोमयोऽयम्॥
नान्याधारःस्वशक्त्या वियति नियतं तिष्ठती हास्य पृष्ठे ।
निष्ठं विश्वभर शश्वत् सदनुज मनुजादित्य दैत्यं समन्तात्
सि. शि. गो.

दीखने लगती है, वह शक्ति जंगलादि मे विचरने वाले जीवों की पीड़ाको दूर करने वाली है। और जब वह साक्षात् स्त्री के रूप में होती है तब वह गृहाश्रम में प्रवेश करती है ॥६७६॥ वह कौर्मी विष्णु भगवान् दाहिने भुजा में विराजमान महा लक्ष्मी है, वह पुरुष के क्षेत्र रूपी शरीर के विघ्न समूह को अपनी शक्ति से अपने में बान्धती अर्थात् वश रखती है ॥६९॥ कल्याण्यै० का अर्थ पूर्व आ चुका है ॥ ८५८-५९ ॥

८६० शिवाजी ऐसा कह कर देवी श्री को अपने साथ ले कूर्मराज के संस्थान को छोड़ कर अन्यत्र चले गये ॥ द्यावा पृथिव्यौ कूर्मः इस प्रमाण से कूर्मी स्त्रीलिंग पृथिवी के अर्थ में आया है "पृथिव्यै कूर्म्यै"

पृथिवी पर मनुष्यादि प्राणिवर्ग और नक्षत्रादि मण्डल 'भूमेः पिण्डः' इत्यादि प्रमाण है

---

* 'कूर्म संस्थानम्' का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है। के कूर्म अर्थात् गोलाकार इस भारत वर्ष को छोड़ कर देवी सहित महादेवजी अन्य देश को चलेगये

(कूर्म-शब्द के अर्थभेद से प्रयोग)

८६२ आदिकूर्मः ।खिलाधारस्तृणी कृतजगद्भरः ।
अमरीकृतदेवौघः पीयूषोत्पत्तिकारणम् ॥१॥

८६३ सर्वलोकगतोऽनन्तो, ह्यमूर्तित्वादजायत ।
योगाच्चैश्वर्यत्वाच्च, स कूर्मः त्रिपुरान्तकः ॥२॥
नारद पु० । अ० ७६ । श्लो ७५॥

८६४ गृहाण मानसीपूजां, यथार्थपरिभाविताम् ।
आधारशक्तिः कूर्मोऽथ, पूज्योऽनन्तो महीतले ॥
आग्नि पु० । अ० ३३ । श्लो० ३४

८६५ ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा, तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभैरवनादाय, भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ॥

८६६ अव्यक्ताय महानन्ताय, नमस्कारं प्रकुर्महे ॥४॥

८६७ कूर्म पृष्ठात समुत्थाय, आत्मयोगेन शम्भुना ।
स्थितस्तस्यै श्रीकण्ठः, कालत्रयविदो विदुः ॥५॥

८६२ आदि कूर्म शेष का आधार है अर्थात् शेष कूर्म पर स्थित, तृण समान जगद्धर्ता देवों को अमर करने वाला, और अमृतोत्पत्ति में सहायक था ॥१॥ वह आदि कूर्म स्वरूप से मूर्ति रहित होने से सब लोक गत और अनन्त है, वही सृष्टि के साथ प्रकट हुआ उत्तरार्द्ध में जीवात्मा पर का अर्थ है कि काश्यप कूर्म योगी और प्रजा के बीच में अधिक सामर्थ्य रखने से लौकिक ईश्वर अर्थात् राजा त्रिपुरान्तक शिव थे नारद पु० अ० ७६ । अग्नि पुराण में लिखा है कि कूर्म आधार शक्ति वाला है यहां कूर्म का अर्थ कूर्म सञ्ज्ञक ईश्वर वह जगत् का आधार है। अग्नि पु० का कर्ता कहता है कि हे कूर्म देव ! आप हमारी मानसिक पूजा जो कि यथार्थ भावना युक्त है, ग्रहण कीजिये मेरा जप, यज्ञ, आप की कृपा से सफल हो, आप आधारशक्ति पूज्य और अनन्त हैं ॥३॥ अग्नि पु०

(अथ कूर्मशब्दार्थसङ्ग्रहः)

८६८ विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं, पुराणैः परिगीयते ।
द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च, हरौ पालनशक्तिता
॥२८॥ दे० भा० पु० । अ० ८ श्लो २८

८६९ कूर्माख्यस्य क्रिया ज्ञेया, ब्रह्म-विष्णु-हरात्मिका ।
सत्वं रजस्तमः कूर्मः, कूर्मः प्राणो बलञ्च वै ॥

८७० प्राणः प्रजापतिः प्रोक्तो, ये देवानां निगोच्यते ॥१॥
जल जन्तुः समाख्यातः कूर्मः कमठ-सञ्ज्ञकः ।
तथाऽवतारभेदेषु, कूर्मः कृष्णो निगद्यते ॥२॥

। अ० ३२ । श्लो. ३४॥ श्लोक में जीवात्मा पर का अर्थ है कि जो देवों के महादेव ईश्वरों पालक, योगिराज त्रिशूलधारी, महागम्भीर नादयुक्त, भीमरूप दृष्टी अव्यय .. और महा बलवान् जिन का प्रताप संसार में सर्वत्र है उन महा देवो जी को हम श्रीकण्ठ, भूत भविष्य दादि तीनों कालों के ज्ञाता आत्मयोगी, सबके कल्याण कारी ऐसे महादेव (कूर्म पृष्ठात) अर्थात प्रकृति उपादान कारण से जगत को रचकर महादेव जी उसी कूर्म पृष्ठ पर स्थित रहे ॥

८६८ विद्वानों के अतिरिक्त पुराणों में भी कहा है कि ब्रह्मा में सर्जन शक्ति, और पृथिवी में धारणात्मिका शक्ति है इसी प्रकार शेष और कूर्म को भी शक्तिमान् जानना चाहिये ॥२८। २९॥ (व्याख्या) ब्रह्मा विष्णु शिव कूर्म शेष ये सब नाम ईश्वर के ही हैं ॥

८७०-७३ क्र० सं. के श्लोक कूर्म शब्दार्थ विषय में हैं । सरल होने से अर्थ नहीं लिखा गया। कूर्म शब्द अनेक अर्थों वाला है सभी अर्थ वेद ब्राह्मण पुराणों, स्मृति और सूत्रकारों के आधार पर हैं वे ही पाठकों की सुविधा के लिये श्लोक रूप में एकत्रित कर लिये गये हैं ॥ ८७०-७३

८७१ "देव्यै कूर्म्यै" इति प्रोक्तं, दुर्गासप्तशतीषु च
तथैव नारदेनोक्तं, पुराणे नारदीयेच ॥३॥

८७२ ब्रह्मा प्रजापतिः कूर्म आदित्य इन्द्रश्च, कूर्मौ
गार्त्समदः श्रुतौ ॥४॥

८७३ चण्डी चण्डेश्वरौ कूर्मी- कूर्मौ दुर्गाशिवौ तथा ।
भीमा कूर्मीति कल्याणी, रुद्राकूर्मी तथा मता ॥५॥

(गर्भ में जीव का नाम ब्रह्मा)

८७४ पूर्वोक्तविषये प्रमाणम् । "तस्मात् प्राणदेवा अथ यत् प्रजापतिः प्राणयन् तस्मात् प्रजापतिः प्राणः" ॥ शतप. कां. ७ । अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १

८७४ पूर्वो. विषय में प्रमाण कूर्मो वै प्राणः ॥ श० प. । अ० ५ । कां. ७ । प्र० ४॥ कूर्म का अर्थ प्राण और प्राण का अर्थ देव अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रिय और प्रजापति (जीवात्मा) है । गर्भ में शरीर रचना प्रजापति अर्थात् जीव के बिना नहीं होती जैसे सर्जन काल में ईश्वर का ब्रह्मा नाम होता है, वैसे ही शरीर स्थान अध्याय ४ सू० ५ का प्रमाण है । और श० प० कां. ७। अ० ५ । प्र० ४ । ब्रा० १ का यह अर्थ कि प्राण देव इन्द्रिय कहाते हैं, प्रजापति भी प्राणन करने से प्राण कहाता है । गर्भ में प्रथम चेतना धातु जीवात्मा) मन सहित गुणों के ग्रहण के लिये प्रवृत्त होता है । चरकाचार्य लिखते हैं कि वह जीवात्मा, हेतु, कारण, निमित्त, अक्षर, कर्ता, मन्ता, वेदता, बोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा विश्वरूप, प्रभव, अव्यय, नित्य, गुणी, ग्रहण, प्रधान, अव्य , जीव, ज्ञ, पुद्गल, चेतनावान् विभु, भूतात्मा, इन्द्रियात्मा और अन्तरात्मा आदि नामों से कथित है ॥ ८७४-८७५

८७५ जीवोऽस्य ब्रह्मा । तथ्यथा । तत्र पूर्व चेतना धातुः सत्व करणे गुणग्रहणाय प्रवर्तते । स हि हेतुः कारणं निमित्त अक्षरं कर्ता मन्ता वेदिता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्व कर्मा विश्वरूपः प्रभवोऽव्ययो नित्यो गुणी ग्रहणं प्रधानं अव्यक्तं जीवोज्ञः पुद्गल श्चेतनावान् विभुर्भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति ॥८॥ च. । शा. । अ. ४ । सू. १

(१) जीव हेतु (शरीर का कारण) "जीवोनित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः" अर्थात् जीवनित्य है इस जीव का जो हेतु शरीर है वह अनित्य है अथवा हेतु का पर्याय शब्द 'कारण' है, तब अर्थ यह होगा कि जीव शरीर रचना में मुख्य निमित्त कारण है. अक्षरम् अविनाशी है. कर्ता (गर्भ में प्रवेश पश्चात् ही शरीर रचना का आरम्भ होता है, मन्ता मनन करने वाला, वेदिता (शरीर की वेदनाओं का जानने वाला, बोद्धा सत् और असत् का ज्ञाता, द्रष्टा (देखने वाला) धाता (शरीर धारण करने वाला) ब्रह्मा (गर्भ में प्रथम आकाश तत्व पश्चात् वायु आदि चार तत्वों के ग्रहण से शरीर रचना होती है अतएव ब्रह्मा कहाता है, विश्वकर्मा (विविध विचित्र शरीरों का उत्पादक है) विश्वरूपः (इस सूक्ष्म-आत्मा का निरन्तर कोई अवयव नहीं किन्तु अखण्ड विश्व स्वरूप है, "प्रभवः" शक्तिमान् है 'अव्ययः' हानि लाभ रहित है: नित्यः) स्वरूप से नित्य और अनादि है, गुणी (इच्छादि गुणों वाला है) ग्रहण (इन्द्रियों द्वार रूपादि विषयों का ग्रहण करने वाला, प्रधान, शरीर का मुख्य स्वामी है, 'अव्यक्तम्' ([illegible] नहीं देखा जा सकता। 'जीवः, प्राण धारक है। 'ज्ञः, (जानना इसका स्वाभाविक गुण है) 'पुद्गलः पाप और पुण्य का करने वाला होने से पुद्गल कहाता है, 'चेतनावान्, (कर्ता है) 'विभु', देही सर्व गतोह्यात्मा स्वे २ संस्पर्शनेन्द्रिये" अर्थात् देही आत्मा अपने २ संस्पर्शन इन्द्रिय में सर्वगत होने से विभु है, 'भूतात्मा' सूक्ष्म शरीर सहित है

(अथ कूर्माष्टकस्तोत्रम्)

८७६ ब्रह्मा प्रजापतिः कूर्मः, कुशः कूर्मो महातपः ।
आदित्यो भास्करश्चैव, कूर्मो वैवस्वतो मनुः ॥१॥

८७७ ऋषिः कश्यपकूर्माख्यः कूर्मो गार्त्समदस्तथा ।
वसुवंशे महाकूर्मो, वासस्तस्याथ मागधी ॥२॥

८७८ परित्राणाय साधूनां, विनाशायाच्च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, कूर्मः कृष्णोऽ भवत्प्रभुः ॥३॥

८७९ सुरेन्द्रः कूर्म आख्यात, सुराणां तारको वै ।
दानवेन्द्रो बलिः कूर्मो, राक्षसः कूर्मि रावणः ॥४॥

८८० दुर्गा शक्तिमती भीमा, नन्न्या कूर्म्यपि विश्रुता ।
रावणस्याऽ थ भार्या, या, कूर्मा सापि तथा मता ॥५॥

८८१ सूर्यवंशोद्भवः कूर्मश्चन्द्रज श्चतथैव च ।
कद्रूजोनागकूर्माख्यो, वह्निजः सोपि कूर्मकः ॥६॥

८८२ रामपुत्रः कुशः कूर्म, स्तस्मात् कूर्मो महाबली ।
विक्रमार्कोन्नृपः कूर्मः सुमित्रस्यात्मज स्तथा ॥७॥

८८३ सुहोत्रश्चन्द्रजः कूर्मः कौरवाः कूर्मवंशजाः ।
कूर्माभिधः कुन्तीभोजः श्रीकृष्णः कूर्मयादवः ॥८॥

(इति कूर्माष्टकस्तोत्रं पद्यात्मकं सुगमतार्थम्)

---

८७६ प्रजापति (प्रजापालक ब्रह्मा) महातपस्वी कुश पत्रम् आदित्य भास्कर वैव स्वतमनु और कश्यप ऋषि ये सब इसी कूर्म कुल के भूपण हुवे हैं। तथैव गृत्समद के पुत्र मन्त्रद्रष्टा कूर्म ऋषि और मालिनी मथवा मागधी ग्रामवासी वसु के वंश में उत्पन्न कूर्म, ये अपने नामों से प्रसिद्ध हुवे। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण जी और देवराज इन्द्र कूर्म नाम से कथित हैं। देवराज इन्द्र असुर प्रकृति वाले मनुष्यों के तारने वाले हुवे।

(शतपथ में कहे कूर्म के (८) अर्थ प्र. ४)

८८४ कूर्ममुपदधाति ॥ श. कां. ७ अ. ५ ब्रा. १ (१)

८८५ स यत् कूर्मो नाम. ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १ (२)

८८६ यदसृजदकरोत् तस्मात् कूर्म्मः॥ श. कां. ८ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १ (३)

८८७ कूर्मो वैरसः ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १ (४)

८८८ कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. (५)

८८९ स यः सकूर्मोऽसौ स आदित्यः ॥ श. कां. ७ अ. ५ ॥ (६)

८९० वृषा वै कूर्मो योषा,प.न्ना ॥ श. । कां. ७ । अ. ५ । प्र. (७)

८९१ प्राणो वै कूर्मः ॥ श. । कां. ७ । अ. ५ । प्र. ४ (८)

८९२ द्यावापृथिव्यो कूर्मः ॥ (९)

८९३ शिरः कूर्मः ॥ (१०)

श० प० कां. ७ अ० ५ । प्र० ४ । ब्रा० १ १० ॥

८९४ आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री । यत्र ह्येवादित्यस्तद् द्यौः । यत्र द्यौस्तपादित्यः

॥ गोप० पूर्व ब्रा० भा० । प्र० १ ॥

---

८८४ विष्णु अर्थात् सर्व व्यापक ईश्वर (? स) (ब्रह्माण्ड) का स्थापक है ॥ दुसरा अर्थ यज्ञ कर्ता [यजमान] यज्ञ में कूर्म [ब्रह्मा] और आधान अग्नि का स्थापन करें ॥१॥

८८५ प्रजापतिने कूर्म अर्थात् क्रियात्मक रूप से प्रजाओंको उत्पन्न किया ॥२॥

८८६ जिस कारण से किया अर्थात् जिसमे प्रजाओंको उत्पन्न किया अतः वह कूर्म कहाया ॥३॥

(कूर्मरूप भारतवर्ष के ग्रहनक्षत्रादि का वर्णन)

८९५ भारतो यो महादेवि ! कूर्मरूपेण संस्थितः ।
नक्षत्रग्रहविन्यासं तस्य ते कथयाम्यहम् ॥१८॥

८९६ प्राङ्मुखो भगवान् देवो, कूर्मरूपी व्यवस्थितः ।
आक्रम्य भारतं वर्षं, नवभेदमिदं प्रिये ॥१९॥
स्क० पु० अ० ११ प्रभासखं. श्लो १९॥

(ईश्वर उवाच)

८९७ पृथिव्या मध्यगर्भस्थं, जम्बूद्वीपमिदं स्मृतम् ॥६॥
। स्क० पु० अ० ११ प्र० खं. श्लो. ६॥

८९८ कूर्मस्य दक्षिणे कुक्षौ, चर्क्षपादं तथापरम् ॥२३॥
स्क० पु० । अ० ११ । प्र० खं. । श्लो २३

८८८ यज्ञ प्रकरण में दुग्धादि रसों का नाम भी कूर्म है ॥४॥
८८९ सर्व द्रष्टा इश्वर और मरीचि पुत्र कश्यप है और कश्यप ही कूर्म है ॥५॥
८९० आदित्य अर्थात् सूर्य का नाम कूर्म है ॥६॥
८९१ क्षत्रिय युवा पति और क्षत्रिय युवती अपाढ़ा [पत्नी] .... कूर्म का अर्थ है —अर्थात् राजारानी ॥७॥
८९२ प्राण अर्थात् प्राणी और बलवान् का नाम कूर्म है।८॥
८९३ द्युलोक और पृथिवी लोक कूर्म कहाते हैं ॥९॥
८९४ इन्द्रियों की उत्पत्ति का स्थान शरीर में शिर है उसका नाम कूर्म है ॥१०॥ आदित्य [सूर्य] ही सविता कूर्म है और द्युलोक सावित्री [ठाट] के समान है ॥ सूर्य बीज स्थानीय और सावित्री क्षेत्र स्थानीय है। जहां सविता आदित्य है वहीं सावित्री द्युलोक स्थान है ॥ "सूर्यो द्युस्थानः" इति निरुक्ते ॥ ८९-२८९४
८९५ हे महादेवि-जो यह भारत वर्ष (हिन्दुस्थान) कूर्मरूप अर्थात् गोलाकार में स्थित है इसके नक्षत्र ग्रहादिको स्थापना को मैं तुम से कहताहूँ ॥१८॥

८९९ कूर्ममुपदधाति ॥ श० प० कां० ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० १
९०० [illegible] ॥ श० प. कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० १
९०१ इमे वै लोकाः ॥ श० प. कां ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० २
९०२ तमभ्यनक्ति ॥ श० प. कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० ४
९०३ दध्ना मधुना घृतेनो ॥ श० प. कां. ७ अ० ५ प्र० ४ ब्रा० ४

८९७ पूर्व दिशा में उदय हुआ भगवान सूर्य भारत वर्ष के कूर्म रूपी अर्थात् जो सम्पुट युक्त गोलाकृति में स्थित है, हे प्रिये ! भारत वर्ष नव ९ खण्डों में बटा हुआ है ॥ नव खण्ड कौन हैं इस की व्याख्या अन्यत्र इसी ग्रन्थ में है

८९८ पृथिवी का मध्यस्थित (बीच का भाग) जम्बूद्वीप कहाता है ॥६॥
नक्षत्र मण्डल का चौथाई भाग भारत वर्ष के दक्षिण ओर स्थित है ॥२३॥
८९५-८९६

८९९ शतपथ ब्राह्मण के ७ सातवें काण्ड का आरम्भ "कूर्ममुपदधाति" इस वचन से है। "कूर्मो वै रसः" श० प० कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १ कूर्म का अर्थ दुग्धादि रस है यह यज्ञ प्रकरण है अतः यज्ञमें यजमान दुग्धआदि रसोंका उपधान (स्थापन) कर उनका उपयोग करे । दूसरा अर्थ कूर्म का ब्रह्मा है बिना ब्रह्माके यज्ञ का निरीक्षण नहीं हो सकता अतएव उसकी स्थापना यजमान यज्ञमें करे । कूर्म का तीसरा अर्थ वैश्वानर अग्नि है, यज्ञकुण्ड में यजमान वैश्वानर अग्नि का स्थापन कर यज्ञारम्भ करे । कूर्म शब्द के आधान अग्नि के अर्थ ग्रहण में प्रमाण 'स्वर्ग लोके नेतुमसङ्कूर्म उपधीयते॥'सुवर्गाय वा एष लोकायोपधीयते यत् कूर्मश्चतस्त्र आशा प्रनरन्त्वप्रयः ॥' कृष्ण यजुर्वेदीयतैत्तिरीय संहिता काण्ड ५ प्रपाठक ७॥ स्वर्ग अर्थात् दिव्य सुखवाले लोकों में यजमान को पहुंचाने के लिये कूर्म [आधान अग्नि] का यज्ञ कुण्ड में स्थापन किया जाता है। ये गार्हपत्य आवहनीय और दक्षिणाग्नि तीनों अग्नियें पूर्वादि चारों दिशाओं को हुत द्रव्य पहुंचावें । यह यज्ञ ही स्वर्ग है अर्थात् दिव्य सुख देनेवाला है। इस यज्ञ का प्रभाव द्युलोक पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष लोक पर्यन्त होता है। यज्ञ प्रकरण में 'कूर्ममुपदधाति'का यह अर्थ हुवा कि यजमान कूर्म अर्थात् यज्ञ वेदि में आधान अग्नि [वैश्वानर अग्नि] को दधि मधु मिश्रित घृत से यजमान सींचे अर्थात् मधुपर्क की तीन आहुतियें देवे और ब्रह्मादि का भी

॥ भागवतोक्तकूर्मावतारः ॥

(पूर्वपक्ष)

१०४ सत्ययुगे समुद्रमन्थनकाले मन्दराचलधारणार्थं
कच्छपरूपे भगवदवतारे । यथा ।

१०५ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो, दुरन्तवीर्योऽवितथाभि
सन्धिः ।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्, प्रविश्य तोयं गिरि
मुज्जहार ॥१॥

सत्कार करके ऋत्विग्वरण के पश्चात् यज्ञारम्भ करे। "स एषः" का अर्थ वह यह कूर्म है और कूर्म का अर्थ "इम एव लोकाः" शतपथकार स्वयम् लिखते हैं कि ये पृथिव्यादि लोक ही कूर्म कहाते हैं इन लोकों का उपधान कर्ता परमेश्वर है।

सायणाचार्य्य आदि ने कूर्म का अर्थ जलजन्तु = कच्छप करके यज्ञ में........ उसका उपधान (स्थापन) लिखा है जो शतपथ से सर्वथा विरुद्ध है। परमात्मा रूप रहित निराकार है उसका कोई प्राकृतिक रूप नहीं 'कठोपनिषद् में कहा है कि "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्: अर्थात् परमात्मा शब्द का विषय नहीं अतः श्रोत्रेन्द्रिय से नहीं जाना जासकता, एवम् नेत्रेन्द्रिय का विषय नहीं क्यों कि वह 'अरूपम्' रूप रहित है अतएव नेत्रेन्द्रिय से उसको नहीं जान सकते किन्तु वह ज्ञानचक्षु और तप रूप चक्षु से ही जाना जा सकता है यजुर्वेद अ ४० मन्त्र (८) में उपदेश है कि वह "अकायम्" जन्म रहित है, वह शरीरधारण नहीं करता 'अकायम्' पद से अवतारवाद का निषेध है अतः कूर्म का अर्थ यहां कच्छप नहीं हो सकता क्यों कि इसी शतपथ के सातवें काण्ड में कूर्म का अर्थ युवा क्षत्रिय क्षत्रिय पति और युवती क्षत्रिया पत्नी शतपथ कारने कूर्मो वै वृषा यो. पाऽषाढ़ा" लिखा है यही यथ ग्राह्य और प्रामाणिक है, सायण आदि ने अर्थ

१०६ सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेल्लितं, परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः । बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो, मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेय इति ॥२॥

शब्दार्थचिन्तामणिः । आवर्ग-ककर्गात्मकः प्रथमो भागः

(विक्रमीय सं. १९२१ आगरा मुद्रित पृ० ६५३)

(कूर्म-चक्रम्)

१०७ मध्ये सारस्वता मत्स्याः शूरसेनाः स माथुराः । पञ्चाल-साल्व-माण्डव्य-कुरुक्षेत्र-गजाह्वयाः । मरुनेमिपाविन्ध्या द्रिपाण्डच्च घोषाः स यामुनाः । काश्ययोध्या प्रयागश्च गया-वैदेहकादयः ।

का अनर्थ करके सर्वसाधारण को भ्रान्तिगर्त में डालदिया है अतः उनका अर्थ त्याज्य है ॥

१०४ सत्ययुग में समुद्रमन्थन के समय मन्दराचल पर्वत के प्रबन्धार्थ भगवान् विष्णु ने कच्छप सदृश रूप धारण कियाथा ॥ जैसे । विघ्नेश विधि को देखकर जिसके बल का पारा वार नहीं और जिसका अभिसन्धान····कभी भी····व्यर्थ

१०५ नहीं जाता ऐसा ईश्वर अर्थात् विष्णु कच्छपसदृश अद्भुत शरीर धारण कर प्रवेश करके·······पर्वत को छिन्न भिन्न कर डाला ॥१॥

१०६ देव और दैत्यराजों के भुजबल से हिलते और चलायमान पर्वत को आदिकूर्म अर्थात् विष्णुने शरीर में [कण्डूयन] खुजली सदृश अति सुगमता के साथ धारण कर [सम्हाल] देवों को सहायता दी थी ॥२॥ कूर्म शब्द का अर्थ यहां आदित्य है । आदित्य [सूर्य] के संयोग से पूर्वादि चारों दिशाओं की उत्पत्ति है । "आदित्य संयोगाद् भूत पूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥ वैशे० । अ० २ आ. २ सू. १ ॥ जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ, है, होगा उसको पूर्व दिशा कहते हैं और जहां अस्त हो उसको पश्चिम कहते हैं १०६

(तत्र पूर्वस्था देशाः)

१०८ मागध शोणौ च, वारेन्द्री-गौड़-रौढ़काः । वर्द्धमान-तमो
लिप्त प्राग्ज्योतिषोदयाद्रयः ॥ तत्राग्निकोणस्था देशाः ।
आग्नेय्याम्-अङ्गवङ्गोपवङ्गत्रैपुरकोसलाः ॥ तत्र दक्षिण
स्थदेशाः । दक्षिणेऽवन्ति-माहेन्द्र मलया ऋष्यमूककाः ।
चित्रकूटमहारण्य-काञ्चीसिंहल-कोङ्कणाः । कावेरी-
ताम्रपर्णी च लङ्कात्रिकूटकादयः ॥

(कूर्म-चक्रम्)

तत्र नैर्ऋत्यकोणस्थदेशाः । नैर्ऋते-द्रविडाऽऽनर्त-महा-
राष्ट्राश्च रैवताः । यवनः पह्लवः सिन्धुः पारसीकादयो
मताः ॥

१०७-८ १ सारस्वत २ मत्स्य ३ शूरसेन [माथुर सहित] ४ पञ्चाल ५ साल्व देश ६ माण्डव्य ७ कुरुक्षेत्र हस्तिनापुर ८ मरु ९ नैमिष १० विन्ध्याचल ११ पाण्डव्य घोष [यमुना के तटस्थ सहित] १२ काशी १३ अयोध्या, १४ प्रयाग १५ गया १६ मिथिला ये सब मध्य देश कहाते हैं ॥ इनमें पूर्वादि दिशाओं में जो देश हैं उनको कहते हैं । १- मागध २ शोण नदी के किनारे वाले देश, ३- वारेन्द्री ४ गौड़देश और ५ रौढ़क ये सब पूर्व दिशा में हैं। १-अङ्ग २ वङ्ग ३- उपवङ्ग ४ त्रैपुर ५ कोसल ६ कलिङ्ग ७ उड्रान्ध ८ किष्किन्धा ९ विदर्भ (विदर) और शबर आदि पूर्व दिशा के कोण में हैं

---

* नागपुर आदि शहरों में अब भी कोई कूर्मी अपने को गौड़ कूर्मी कहते हैं, गौड़ कहने का प्रयोजन यही है कि जो कूर्मी क्षत्रिय पूर्व दिशा में बसते थे जब वे वहां से दूसरे स्थानों में आकर बसे तब अपना परिचय देने के लिये कूर्मी के साथ गौड़ शब्द लगाने लगे (ले०)

(यज्ञ में कूर्म का मधुपर्क से सत्कार)

११३ मधुवाता ऋतायते० ॥ य. । अ. १३ । मं. २७॥

११४ कूर्मं दधिमधुघृतैरनक्ति मधुवाता. इति ॥

(कात्यायनश्रौत सू. १७ । ४ । २७)

११५ यत् कूर्मो नाम० ॥ श. कां. ७ । अ. ५ । प्र. । ब्रा. ५

११६ स यः सः कूर्मोऽसौ, आदित्यः॥ श. कां. ७ अ. ५।ब्रा. ६

(शतपथोक्तयज्ञविषय)

११७ प्राणो वै कूर्मः । प्राणो वै कूर्मो वागपाढा । प्राणो वै वाचो वृषा प्राणो

११८ मिथुनम् । वृषा वै कूर्मो योषाऽपाढा ॥
श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. ७ ।

११३ आत्मनः ऋतं यज्ञमिच्छतीति, ऋतायते । इति सायणः । अपने लिये जो यज्ञ करने की इच्छा करता है वह ऋतायते कहाता है । वसन्त ऋतु में वर्षा पश्चात् राजा युद्धार्थ यात्रा यज्ञ करके करें ॥

११४ मधुवाता, इस मन्त्र से कूर्म को दही शहद और घी मिलाकर खाने को देवे कात्यायन ने कूर्म का अर्थ नहीं लिखा तब भी यह प्रकरण है उससे यजमान ब्रह्मा का............ मधुपर्क से सत्कार करें । कूर्ममुपदधाति' ॥ श० कां० ७ अ० ५ के प्रारम्भ में यह वचन शतपथ कार ने लिखकर जहां ही कूर्म का अर्थ पृथिव्यादि लोकों की स्थापना किया है । कूर्म शब्द के अर्थ को श० कां. ७ ५ अप. ४ ब्रा० १ । २ । ३ । ४ में समाप्त करके उसी का यौगिकार्थ ब्रा० ५ में

११५ 'सयत् कूर्मो नाम में महर्षि ने किया है । पुनः यदि कूर्म शब्द ब्राह्मण (५) में लिखना पृथिव्यादि परक कूर्म शब्द के अर्थ की निवृत्ति के लिये है । ब्राह्मण (७)

१०९ तत्र पश्चिमस्था देशाः । पश्चिमे हैहयास्ताद्रिम्लेच्छवास
शकादयः ॥

११० तत्र वायुकोणस्थदेशाः । वायव्ये गुर्जराटश्च नाट
जालन्धरादयः ॥

१११ तत्रोत्तरस्थदेशाऽउत्तरे चीन–नेपाल-हूण–कैकेय-मन्दराः।
गान्धाराहिमवत क्रौञ्चगन्धमादन-मालवाः ॥
कैलासमद्रकाश्मीरम्लेच्छदेशाः खसादयः ॥

११२ तत्रेशान-कोणस्थदेशाः । ऐशाने स्वर्णभौमश्च गङ्गा
द्वारश्च टङ्कणः। वाह्लीक ब्रह्मपुरक-किराता दरदादयः ॥

(इतिज्योतिस्तत्वम्)

नैर्ऋत्य अर्थात् दक्षिण दिशा के कोने के देश–जैसे १ द्रविण २ आनर्त ३ महाराष्ट्र रैवत ५ यवन (यूनान) ६ पह्लव ७ सिन्धु ८ पारसीक इत्यादि । पश्चिम दिशा के देश जैसे । १– हैहय देश २ पहाड़ी म्लेच्छवास और ४ शक इत्यादि पश्चिम देश हैं ॥

११०-१२ वायव्य कोण वाले देश- १ गुजराट २ नाट ३ जालन्धर इत्यादि ॥ उत्तरीय देश जैसे १- चीन २ नेपाल ३ हूण ४ कैकेय ५ और मन्दर पर्वतीय ६- गान्धार ७ पर्वतराज हिमवान् ८ क्रौञ्च पर्व० ९ गन्धमादन पर्व० १० मालव ११ कैलास १२ मद्र १३ काश्मीर और १४ म्लेच्छ देश १५ खस इत्यादि ॥ उत्तरदिशा के कोणस्थदेश जैसे १ स्वर्ण भौम २ गङ्गाद्वार ३ टङ्कण ४ वाह्लीक ५ ब्रह्मपुरक ६ किरात और दरद इत्यादि उत्तरीय कोणस्थ देश कहाते हैं ॥

(शब्दार्थचिन्तामणिः । भाग १ । पृ. ६५६)

(इति-कूर्मचक्रम्)

११९ आपोषि[illegible] । अपां गम्भन्त्सी० ॥ य. । अ. १३ मं. ३० ॥

१२० द्वितीयो मंत्रः शीतमुद्रान् ॥ य. अ. १३ । मं. ३१ ॥

१२१ तृतीयो मन्त्रो महीद्याः पृथिवीन्न० ॥ अ. १३ । मं. ३२ ॥

(कूर्म से कूर्मक्षत्रिय, और यज्ञ दोनो अर्थ)

१२२ अथैनमेजयति ॥ श. कां. ७ अ. ५ प्र. ४ ब्रा. १ ॥

१२३ शीतः मुद्रान्. ॥ य. । अ. १३ । मं. ३१ ॥

१२४ एष कूर्मो भूत्वाऽनुस ः ससर्प॥ श. कां.७ अ.५ प्र.४ ब्रा.

१२५ पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः
य० । अ० १३ । मं. ३१॥

में कूर्म का अर्थ ईश्वर और जीवात्मा परक है, अर्थात् सृष्टिकर्ता परमेश्वर का नाम है कूर्म कश्यप का भी नाम है। कश्यप नाम ईश्वर का और कश्यप देह-धारी ऋषि का भी नाम है श० कां. ७ के ६ ठे ब्रा० में कूर्म का अर्थ आदित्य (सूर्य) है। प्रकरणानुसार ये सब अर्थ ग्राह्य हैं।

११७ श० ब्रा० काण्ड (७) में कूर्म का अर्थ प्राण और प्राण का अर्थ बल अथवा प्राणी है। कूर्म का अन्य अर्थ प्राण और अषाढ़ा वाणी है। प्राण का वाणी के साथ सम्बन्ध है॥ प्राणो वै वाचो०। प्राण वाणी हैं वाच स्त्रीलिंङ्ग है, अतः वाणी स्त्री और वृषा, पति है। दोनों से पत्नी पति की सूचना है कि यज्ञ में पति पत्नी दोनों बैठें, शतपथ काण्ड ७। ब्रा० ८। ब्रा. ९। ब्रा० १० में 'अपां-गम्भन्.' त्रीन्त्समु०' अर्थ यह कि 'एतत्' 'अपांगम्भिष्ठम् 'यत्र' 'एतत्' तपति अर्थात् जहां सूर्य तपता है वहां जलों का गम्भीर स्थान है। मन्त्र (५) में आये हुवे 'त्वा' पद का यह अर्थ, हे कूर्म यजमान (अन्वीक्षक) तू इन प्रजाओं का अन्वीक्षण कर। अर्थात् देख कि प्रजायें आरोग्य हैं वा नहीं ! ये प्रजा ही इष्ट-का समान सुख साधिका हैं इन जीवित प्रजाओं के लिये यह तेरा यज्ञ है। अतः देख ये सुखी हैं वा नहीं। प्रजाओं के साथ इस अहिंसात्मक आचरण से

९२६ 'पुरीषवाहनः' सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥
य. अ. १३ मं. ३१

'शोभनकृतस्याग्नेर्लोके स्थाने स्थितोऽसि 'सुकृतस्य' इत्य-
स्यार्थ- उवटः । 'यत्र' शब्दार्थ महीधरः । 'किञ्च यत्र
यस्मिन् स्थाने' इति ॥ 'पूर्वे' पुरातनाः कूर्माः, 'यत्र पूर्वे
कूर्मा अ येष्वग्निसूपहिताः सन्तः परेताः ॥' सायण
स्त्वित्थमाह । हे कूर्म! त्वं 'त्रीन्' सुखहेतुभूतत्वात
लोकान् (समसृपत) संसृप्तोऽसि 'सुकृतस्य' सुष्ठु सम्पादित

तुझपर भगवान् दिव्य वर्षा करेगा, वर्षा से तेरा और प्रजा का कल्याण होगा। यह आठवें ब्राह्मण के ३० वें मन्त्र का भावार्थ है। (सारांश) राजा वसन्त ऋतु में यज्ञ करके युद्धार्थ यात्रा करे॥

९२५ (ब्रा० ९) प्रजाओं का आरोग्यता देखने के पश्चात् (एवम्) इस........ कूर्म अर्थात् क्रियाशील क्षत्रिय यजमान को (एजयत) ब्रह्मा यज्ञ के नियमों पर चलावे मन्त्र में आये हुए समुद्र शब्द का अर्थ द्युलोक पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक है इन्हीं तीनों लोकों का नाम समुद्र है, इन्हीं से मनुष्यों को सुख विशेष की प्राप्ति होता है इसीसे इनका नाम स्वर्ग है ॥

उन कूर्म सञ्ज्ञक पृथिव्यादि लोकों में यह कूर्म प्रजापति ईश्वर व्यापक है। अथवा (एषः) यज्ञः यह यज्ञ (कूर्मो भूत्वा) क्रियात्मक होकर (अनुसंससर्प) सर्वत्र व्यापक होता है अर्थात् यज्ञ की सुगन्धि पृथिव्यादि लोकों में वायु द्वारा फैल जाती है; कूर्म का अर्थ क्रियात्मक यज्ञ है। ईश्वर पक्ष में यजमान कूर्म सञ्ज्ञक प्रजापति की व्यापकता को सृष्टि रचना रूप में देखकर उसका और उसकी महिमा जगद्रचना का अनुभव करे। य० अ० १३ मन्त्र ३१ वें के पुरीष वसानः।" इत्यादि उत्तरार्द्ध का अर्थ शतपथकार यह लिखते हैं कि 'तत्र-

स्यागनः 'लोके' स्थाने स्थित्वा 'तत्रगच्छ' 'एतेन कर्मणा 'एतेन' उपधानलक्षणेन कर्मणा' इति सायणः । कोऽर्थः। कच्छपस्थापनकर्मणा अयमर्थो नोचितः । उपधान प्रकरणाऽभावात् । एतेन—एतेन कर्मणेति शतपथे तस्या-यमर्थः । एतेनाग्न्याऽऽहुति कर्मणा पूर्वे कूर्माः सद्गतिं प्राप्तवन्तः, तथैव त्वमपि हे कूर्म यजमान! 'एतेन यज्ञानुष्ठानकर्मणा सद्गतिं प्राप्नुहि" ॥

गच्छ ॥ यत्रैनेन कर्मणोयुरित्येनत्" अर्थात् हे कूर्म यजमान- उस स्थान में जा, अथवा उस मार्ग से चल जा इस यज्ञानुष्ठान के आचरण से (पूर्वे) पूर्वे विद्वांस,) पहिले के विद्वान् लोग अथवा तेरे पहिले के (कूर्म) क्रियाशील याज्ञिक लोग (परेता,) प्रकृष्टतया गतःवन्तः) अच्छे प्रकार गये हैं अर्थात् मुक्ति पद को प्राप्त हुवे हैं वहां तूभी जा अर्थात् उन्हीं 'येनास्य पितरो याता, येन याता पिता महाः । तेन यायात् सतां मार्ग" तेनगच्छन्न रिज्यते ॥ अर्थात् जिस मार्ग से इसके पिता पितामह चले हों उस मार्ग से तूभी चल परन्तु वह मार्ग सज्जनों का हो यदि दुष्ट मार्ग हो तो न चले य० यजुर्वेद अ० १३ । मन्त्र ३१ का शतपथा नुसारा भावार्थ है ॥९०२-५॥

९२६ यज्ञ में कूर्म अर्थात् कच्छप का स्थापन मूल शतपथ में नहीं है, सायण महीधर और उवट ने कूर्म को अग्नि में भस्म कर उसको स्वर्ग पहुंचाना जो इस मन्त्र का अर्थ शतपथ विरुद्ध किया है वह अयुक्त है क्यों कि वेद में पशुवध की आज्ञा नहीं है इस प्रकरण में कूर्म का अर्थ क्रियाशील क्षत्रिय यजमान शब्द मूल शतपथ में है ध्रुवासि ध्रुवायं यजमानोऽस्मिन्नायतने, प्रजया पशुभिर्भूयात् ॥ श० कां० ७ जैसे सायण ने मन्त्र में आये हुवे 'पूर्व' का अर्थ अपने भाष्य में "पूर्वं सुपहिताः कूर्माः" लिखा है अर्थात् जैसे पूर्व स्थापित किये कूर्म अग्नि द्वारा सीधे स्वर्ग को चले गये वैसे तूभी चला जा ॥ यह अर्थ वेदविरुद्ध है किन्तु सत्यार्थ यह कि अग्न्याहुति कर्म अर्थात् यज्ञानुष्ठान से जैसे तेरे पूर्वज सद्गति को प्राप्त हुवे वैसे तूभी इस यज्ञ से सद्गति को प्राप्त हो ॥

(कूर्मः क्षत्रियो यज्ञो वा)

१२७ मही न्न द्यौः पृथिवी च न. इति॥ य. अ. १३। मं. ३२॥
इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। इतीमं यज्ञमवताम्॥
श. प.। कां. ७। अ ५ मं. ४
ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि, विश्व-
जनस्य छाया (य.। अ. ५। मं. २८)

१२७ इस मन्त्र का विनियोग शतपथकारने यज्ञविषय में स्पष्ट ही किया है, जैसे 'इतीमं यज्ञ मवताम्'। इत्यादि से यहां यज्ञ प्रकरण सिद्ध है। शतपथ कारने शतपथ कां० ७। अ० ५। प्र० ४। ब्रा० १० में कूर्म शब्द का अर्थ "द्यावा-पृथिव्यौह कूर्मः" किया है।
और इससे पूर्व श० प० कां० ७। अ० ५ प्र० ४ ब्रा० १ में "कूर्मसुपदधाति॥" आरम्भ में लिखकर कूर्म शब्द के आदित्यादि अर्थ लिखे हैं। यहां शतपथ में कूर्म शब्द का अर्थ द्यावा पृथिवी अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक है।
य०। अ० ५। मन्त्र २८ में आज्ञा है कि घी आदि के होम से तुम दोनों की पुरुषो द्युलोक और पृथिवी लोक पूर्ण करो। "घृतेन द्यावा पृथिव्यौ युवां-पूर्येथाम्॥ पूरिते भवताम। इति महीधरभाष्यम्। अर्थात् हूयमान घी से द्युलोक और पृथिवी लोक पूर्ण हो "ध्रुवासि०" मन्त्र में उपदेश है कि इससे यज्ञ करता हुआ यजमान सन्तान और गौ आदि पशुवाला हो एतदर्थ यज्ञ करना चाहिये
(व्याख्या) ध्रुवासि० यज्ञानुष्ठान से यह यजमान चिरकाल तक स्थिर हो। यज्ञानुष्ठान से सन्तान और पशुओं वाला हो यज्ञाद्भवति पर्जन्य गीता। यज्ञ से बादल बनने, यज्ञ सन्तान और यज्ञ से पशुओं की वृद्धि होती। यज्ञ से रोग शान्त होते हैं। यज्ञ जब २ चाहें वर्षा होती है, यज्ञ से वायु और मेघ मण्डलस्थ जल की शुद्धि होती है

१२८ यद्वृगति ग०नमर्था ।। का । १७ । ५ । २ ।। क्रीन्त्समुद्र- नि्मिक्वा हस्तस्थेन कूर्मं क० यथा ।।। इति महीधरभाष्यम्।। 'यत्र परेताः सृताः प्राप्नुवन् तत्र गच्छेत्येतदुक्तम्भ वतीति सायणभाष्यम् (श. प. । कां. ७ । श्र. १)

१२८ 'क्रीन्त्समुद्रान ०' इस ऋचा से हाथ में लिये हुवे कूर्म (कछुप) को हिलावे ॥ यह महीधर भाष्य का अर्थ है। 'यत्र परेता.' इस मन्त्रार्थ में सायणने कूर्म का अर्थ कर्म वंश परक किया है परन्तु कूर्म से कछुप अर्थ का ही ग्रहण माना है। और परेता.' का अर्थ मृताः ॥ लिखा है परन्तु शतपथ में 'परेताः' के लिये 'इयुः' क्रिया लिखा है। इयुः' इण् गतौ' धातु, लिङ् प्र. पु. बहुवचन की क्रिया है। सायण भाष्य का भाव है कूर्म (कछुवे) जहां तेरे पूर्व के कच्छप वंशीय सब कछुवे मरकर गये हैं वहीं मरकर तूभी चला जा इत्यादि है। यह अर्थ शतपथविरुद्ध है क्यों कि शतपथ काण्ड ७। अ. ५ प्र.४ में कूर्म का अर्थ यज्ञ में क्षत्रिय युवाग्नि यजमान (राजा) और क्षत्रिया युवती पत्नी लिखा है। वहां 'कूर्मोवैवृषा योषाऽषाढा' है। क्षत्रिय क्षत्रिया यद्यपि इस वाक्यार्थ में लिखे नहीं तथापि वेदो 'अषाढ़ा' शब्द प्रमाण है कि क्षत्रियार्थ ही सङ्गत और न्याय्य है। तीनों मन्त्रों से यज्ञ में कूर्म का स्थापन करना सायणादिने लिखा है परन्तु शतपथ ऐसा नहीं मानता, किन्तु युवापति और युवती पत्नी आधान अग्नि का यज्ञ कुण्ड में स्थापन करें और ब्रह्मा की नियुक्ति पूर्व करके यज्ञ का सब काम हो वह ब्रह्मा कर्म अर्थात् वेदज्ञ क्रियाशील हो। मनुष्य समुदाय में जो युद्धादि में चतुर हुवे और यज्ञादि किये उन्होंने क्षत्रिय शब्द के साथ कूर्म विशेषण के प्रयोग का व्यवहार किया और व्यवहार ही नहीं किन्तु कूर्म नाम ही अपना रक्खा और ऋषिपद को प्राप्त किया था यह कूर्म क्षत्रियवंश भारत में अद्यावधि वर्तमान है ॥ १०८॥

(व्याख्या) कूर्म अर्थात् सपत्नीक यजमान क्षत्रिय यज्ञानुष्ठान से सद्गति को पाता है ॥ परन्तु केवल कर्म काण्ड से ही परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती जब तक कि यथार्थ ज्ञान विज्ञान न हो सांख्य शास्त्र में कपिलमुनिने कहा है कि 'ज्ञानान्मुक्तिः'

(वसन्त में (राजा रानी) युद्ध यात्रा से पूर्व यज्ञ करें) पूर्वोक्त (स्यो.संहारः) और चाहे तो जल जन्तु कच्छप को शोभार्थ रखें।

'कूर्मो वै वृषा योपाऽषाढ़ा' ॥ श० प० कां० ७। अ० ५ प्र० ४॥ कूर्म और अषाढ़ा का अर्थ राजा रानी अथवा प्रवा पति और युवती पत्नी दोनों यजमान का आसन ग्रहण कर ब्रह्मा की आज्ञानुसार यज्ञानुष्ठान करें।

कच्छप (कूर्म) जल जन्तु का रखना राजाओं के लिये है कि वे चाहें तो शोभार्थं रखलें परन्तु उसको मारें नहीं। प्रमाण (कूर्म) कछुवा इति प्रसिद्ध जल जन्तु विशेषे कच्छपे। पञ्च गुप्ते। कमठे। अस्य लक्षणम्। यथा।

१२९ स्फटिकरजतवर्णो, नीलराजीविचित्रः
कलशसदृशमूर्तिश्च.रुवंशश्च कूर्मः ॥
अरुणसमवपुर्वा, सर्षपाकारचित्रः
सकलनृपमहत्वं, मन्दिरस्थः करोति ॥१॥

१३० अञ्जनभृङ्गश्यामतनुर्वा, बिन्दु विचित्रो व्यङ्गशरीरः
सर्पशिरो यः स्थूलगलोऽपि, सोऽपि नृपाणां राष्ट्रविवृद्ध्यै ॥२॥

१३१ वैदूर्यत्विट् स्थूलकण्ठस्त्रिकोणो, गूढच्छिद्रश्चारुवंशश्च शस्तः।
क्रीडावाप्यां तोयपूर्णे मणौ वा, कार्यः कूर्मो मङ्गलार्थं नरेन्द्रैः ३॥

कूर्म के शुभाशुभ लक्षण— कछुवे का रंग सफेद, स्फटिक पत्थर के समान अथवा (रजत) चांदी के तुल्य हो, शरीर में लकीरें विचित्र हों, उसकी मूर्ति कलश सदृश हो, और (वंश) पृष्ठास्थि सुन्दर हो, शिर सांप के शिर के-

(पूर्वोक्त—श्लोकसंहारः)

५३१ जैसा और गला मोटा हो ऐसा कच्छप राजाओंके....राष्ट्र की वृद्धि करने वाला होता है। औरभी-वैदूर्य मणि के उसके देह की कान्ति (चमक) हो, तीन कोनोंवाला हो, गला स्थूल हो, पीठ की रीढ़ अच्छी हो, ऐसा कच्छ राजओंको रखने और पालने योग्य है राजालोग चाहें तो उसको जलपूर्ण वापी में अथवा जलवाले कूप में क्रीडार्थ डालें, ऐसा कछप राजाओंके लिये माङ्गलिक होता है।

मन्त्र (३०) में 'मा' 'त्वा' दो पद हैं 'मा' का अर्थ मत और 'त्वा' अर्थ तुझको अर्थात् तुझ यजमान कूर्म को। वेदोपदेश है कि यह वसन्त है जहाँ असह्य धूप हो और उस से याज्ञिकों को कष्ट हो ऐसे स्थान में देवयजन 'यज्ञशाला न बनावे, परन्तु सायणादि इस मन्त्र का अर्थ करते हैं कि हे कूर्म! तू गहिरे जल में बैठ जिससे तुझको धूप आदि न सतावे इस अर्थ को बुद्धिमान् विद्वान् विचारें कि कहाँतक न्याय सङ्गत है कूर्म का अर्थ शतपथ के ७ सातवें काण्ड अ० ५ प्र० ४ में 'कूर्मो वै वृषा योषाऽषाढ़ा ॥" दिया है। सायण 'वृषा' का अर्थ लिखते हैं कि 'वृष शब्देन सेचन समर्थत्वात् पुमानुच्यते ॥" 'योषा' का अर्थ शतपथ में 'अषाढ़ा' लिखा है। वीर्य सेचन में समर्थ, इसका अर्थ यही कि जो शरीर से बलवान् हो, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों के धर्मोंका पालन करते हों, जो 'प्रजाजनरक्षक हों।

(उपसंहारः)

ऐसे मनुष्य समुदाय को शतपथकार कूर्म क्षत्रिय कहते हैं और कूर्म का अर्थ शतपथकारने यज्ञप्रकरण में कच्छप नहीं किया है किन्तु यजमान आदि अर्थ लिखे हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों में राजधर्म का उपदेश है कि हे कूर्म (यजमान) तू प्रजाओंको आरोग्य और सुखी देख, प्रजारक्षण क्षत्रिय का मुख्य धर्म है। जैसा कि मनु अ. १ श्लोक ८९ में लिखा है कि "प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेवच। विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ म. अ. १।८९ ॥

शतपथ में वृषा शब्द के साथ ही योषा शब्द आया है,"जैसे कूर्मो वै वृषा योषाऽषाढ़ा।" सायण अपने भाष्य में लिखते हैं कि "अषाढ़ा शब्दस्य-स्त्रीलिङ्गत्वात् अषाढ़ा योषा खलु"॥ अर्थात् अषाढ़ा शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से अषाढ़ा का अर्थ योषा (स्त्री है) यह अषाढ़ा शब्द वेदोक्त है

९३२ जैसे अषाढ़ासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः।
सहस्रवीर्यासि सामाजिन्व॥ य०। अ० १३। मं. २६॥
अषाढ़ा शब्द का अर्थ शतपथ कां० ३२। ३३। अ० ४ प्र० ३ में यह है कि तथैवैनं यजमानएता मुपाधाय द्विषन्तं भ्रातृव्यमस्मात् सर्वस्मात् सहते यजमान अपनी अषाढ़ा पत्नी को यज्ञ में स्थापित करके द्वेष करते हुवे को दूर करे शतपथ काण्ड ७। ब्रा० ३३ और ३४ में "वाग्वाषाढ़ा"॥ अषाढ़ा का अर्थ वाणी है- यदि कोई यज्ञ में विघ्न करे तो प्रथम उसको वाणी द्वारा समझायें।

(तत्र पूर्वोक्तस्योपसंहारः)

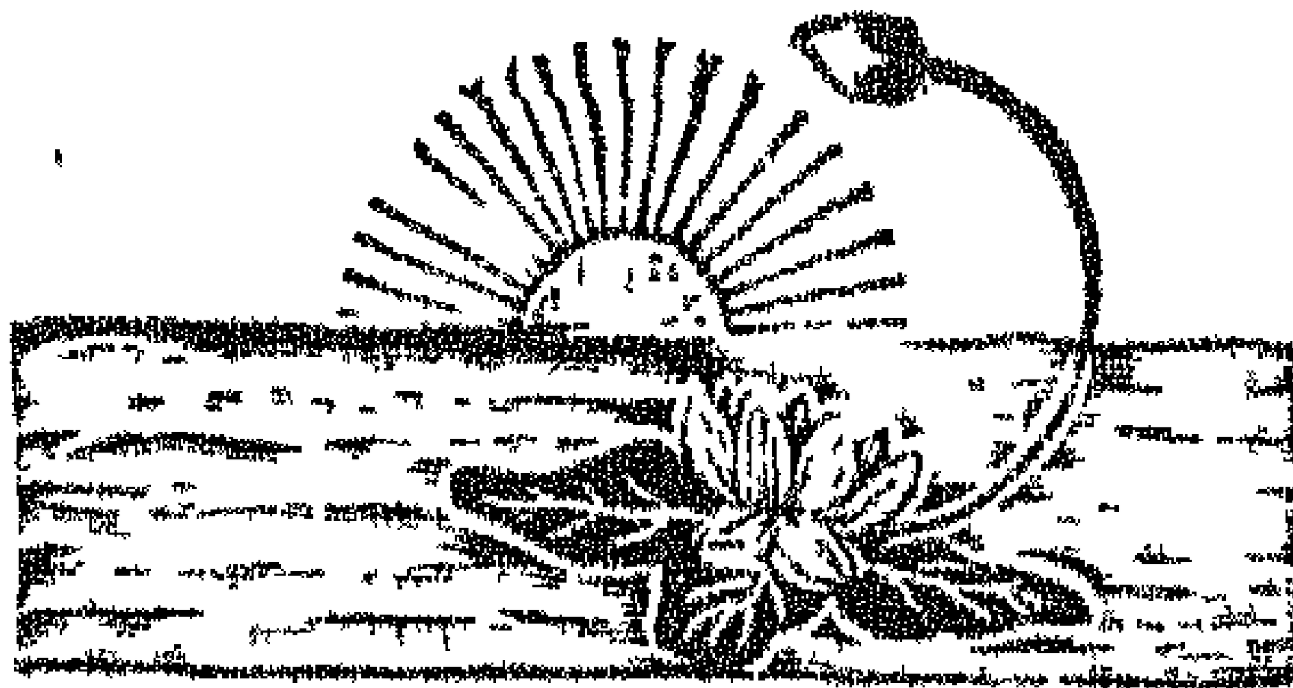
९३३ कदाचित् न समझे तो धिक्कारे-धिक्कार ने से भी न समझे तो अर्थ दण्ड का उपयोग करे और अर्थ दण्ड से भी नमाने तब अन्त में वध दण्ड दे यह राज धर्म है। "सैषा सर्वासामिष्टकानां महिषी यदषाढ़ा" अर्थात् अषाढ़ा सब इष्ट कार्यों की महिष है। महिषी राजा की उस स्त्री का नाम है जिसका राज्याभिषेक हुआ हो "कृताभिषेका महिषी"॥ अमर को सिंहादिवर्ग ६। कां० २। श्लो. ७७॥ अभिषेक की राजा की पत्नी का नाम महिषी है। "कूर्मो वै-वृषा योषाऽषाढ़ा"॥ श०। कां. ७। यहां शतपथकार ने योषा के साथ ही 'कूर्मो वै वृषा' लिखा है और वृषा का अर्थ वीर्य सेचन समर्थ पुरुष है,। ब्राह्मणादि चारों वर्णों के अनुक्रम से वीर्यसेचनसमर्थ पुरुष यजमान क्षत्रिय ही लेना शतपथकार को अभीष्ट है। कूर्मो वै वृषा "योषाषाढ़ा" इस प्रमाण से वर्तमान कूर्म वंश का क्षत्रिय होना सिद्ध है॥ इस वंश को प्राचीन काल के अनुसार अब भी आयुधजीवी होना उचित है॥

"पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥"
इस मन्त्र वेदमन्त्र में 'गच्छ' क्रिया कर्ता 'त्वम्' है जिस का अर्थ है 'तू कूर्म'

औ 'एत' का अर्थ 'यहां' है और 'गच्छ' का अर्थ 'जा'। 'यत्र' जहां 'सुकृतस्य लोके' पुण्य लोक में 'पूर्वे' पहिले के विद्वान् लोग 'परेताः' प्रकृष्टता से गये हैं। वहां तू कूर्म यजमान यज्ञादि पवित्र कर्म करके चला जा अर्थात् यज्ञादि शुभ कर्मों से मनुष्य को उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है॥ इस सत्यार्थ को छोड़कर सायण, महीधर, और उव्वट ने कूर्म का कछुवा अर्थ करके उसको अग्नि में स्थित करके स्वर्ग जाना लिखा ऐसा अर्थ वेद विरुद्ध होने से संत्याज्य है॥

शतपथ का ७ वां काण्ड यज्ञ विषयक है अतः उसको चारों वर्ण करें इस इस विषय में शतपथ का अग्रिम प्रमाण है॥

(इत्युपसंहारः)



(प्रजापति अर्थात् यज्ञ और ईश्वर दोनों व्यापक, तथा)
(कूर्म गृत्समद का पुत्र, ऋग्वेद में उसकी स्तुति)

१७६ तानेष कूर्मो भूत्वाऽनुसऽसर्पा।श. प.। कां. ७। अ. ५।

१७७ कूर्म्मो गार्त्समदो वा आदित्यः॥ ऋग्वेद । मण्डल (२) सूक्त २७ ।

१७८ ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या, श्रुतिर्यस्य महात्मनः । २८ । २९ के मन्त्रद्रष्टा (महाभा. । अनुशा. प. । अ. ३०)

१७९ एवमेन कूर्म्मः सुवर्गं लोकमञ्जसा नयति ॥ कृ. । अष्ट. ५ । प्र. २ । अ. ८ मं. ४ । ५ । ६ ॥

ईश्वर ने ब्रह्माण्डों स्थापन किया है। "पवित्रन्ते०" इस ऋग्वेद के मन्त्र में 'ब्रह्मणस्पते" का अर्थ 'ब्रह्माण्डों का पति' ऐसा सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि दयानन्द ने लिखा है।

९७५ (तस्य कूर्म स्य = ब्रह्माण्डस्य, ब्रह्माण्डान्तर्गतस्यभूगोलस्य वा, (यत्) (अधरं) (कपालम्) सम्पुटद्वयस्याऽऽधोभागः (सः) कूर्मः (अयंभूगोलः)॥ कूर्म अर्थात् ब्रह्माण्ड अथवा ब्रह्माण्डान्तर्गत भूगोल का जो नीचे सम्पुट दो का अधोभाग है वह यह कूर्म कहाता है ॥४३॥

९७६ 'एषः' कोऽर्थः । प्रजापतिरीश्वरः । अथवा । 'एषः' प्रजापतिरर्थाद् यज्ञः । "प्रजापति वै यज्ञ" इति गोपथब्राह्मणे । (कूर्मः) क्रियात्मको भूत्वा अनुस ससर्प व्याप्तो भवति = पुरुषव्यत्ययः । कूर्म का अर्थ प्रजापति और प्रजापति का अर्थ ईश्वर और यज्ञ है। यह यज्ञ क्रियात्मक रूप से पृथिव्यादि सब लोकों में व्याप्त होने से कूर्म कहाता है। ईश्वरपक्ष में यजमान प्रजापति अर्थात् ईश्वर की व्यापकता को रचनात्मक सृष्टि में उसका और उसकी महिमा का अनुभव करे ॥

(महाराणी कद्रूके ७ सात पुत्र कूर्मादि)

१८० ८, ९, कश्यपो मारीचः। सा. वे. । प्रथम दश. । खं. २ ॥

१८१ कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. । कां. ७ अ. ५ प्र. ४।

१८२ मरीचेः कश्यपः पुत्रः ॥ मत्स्यपु. ।

१८३ मनोर्नाम मनुश्चैव, यदेतत्त पठ्यते किल ।
प्रयोजनवशाद्विष्णु, रसावत्र तु मूर्तिमान् ॥
वराह पु० अ० ३१ श्लो. १

१८४ यथैवोद्धृतवान् वेदान्, मत्स्यरूपेण केशवः ।
तद्वच्च कूर्मरूपी स्याद्, द्वितीयां पश्य वैष्णवीं ॥
व. पु. अ. ४१ श्लो. ४४

१८५ शेषोऽनन्तो वासुकिश्च, कर्कोटक धनञ्जयः ।
कूर्मश्च कुलिकश्चैव, काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥ महाभा०

---

१७७ ऋग्वेदमण्डल (२) सूक्त (२७) (२८) (२९) के मन्त्र द्रष्टागृत्समद के पुत्र कूर्म्म ऋषि हैं और २७। २८, २९ सूक्तों के अतिरिक्त ऋग्वेद दूसरे मण्डल समस्त के मन्त्र द्रष्टा ऋषि

१७८ गृत्समद हैं। महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ३० तीस में कहा है कि "जिस महात्मा गृत्समद की श्रुतिऋग्वेद में वर्तमान है। वह श्रुति यही ऋग्वेद का दूसरा मण्डल है

१७९ 'कूर्मः' का अर्थ यज्ञ है। क्रियात्मक यज्ञ ही स्वर्ग (सुखविशेष) का साधन है। अर्थात् इस यजमान को यह कूर्म (यज्ञ) ही स्वर्ग का प्रापक अर्थात् दिव्य सुख को देने वाला है ॥५७॥

१८० मरीच का पुत्र कश्यप मन्त्र द्रष्टा ऋषि हुवा है ॥

१८१ कश्यप ही कूर्म है ऐसा श० काण्ड ७ अध्याय ५ प्रपाठक ४ में है

ब्रह्मा के दो पुत्र अथर्वा और कश्यप (पुराण मतसे)
(महाराज्ञी कद्रू का वंश)

१८६ पार्थिवे भारते वंशे, पूर्वमेव विजानता ।
पृथिव्यां संभ्रमामिमं, श्रूयतां यन्मया कृतम् ॥१४॥

१८७ समुद्रेऽहं पुरा पूर्वे, वेलामासाद्य पश्चिमाम् ॥
आसं सार्द्धं तनूजेन, कश्यपेन महात्मना ॥
॥ हरिवंश पु. । अ. ५३ । श्लो. १५ ॥

१८८ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव ॥ मुण्डक । ख १ ॥मं. १॥

१८९ कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ योगदर्शने ॥ विभूतिपादस्तृतीयः । सू. ३० ॥

१९० कपिलश्चाम्बरीषश्च, धूतपादश्च कच्छपः ।
प्रह्लादपद्माचित्रश्च, गन्धर्वोऽथ-मनास्विकः ॥ वायुपु. ॥

---

१८१ मरीचि का पुत्र कश्यप है ऐसा मत्स्य पु० में लिखा है ॥

१८२ मनु का अर्थ मनुत्व (मनुत्न) है, यही मनु काम पड़ने पर मूर्तिमान् विष्णु कहाते हैं ॥

१८३ जैसे मत्स्यसदृश रूप वाले होकर भगवान् कृष्ण ने वेदों का पुनरुद्धार किया था, (तद्वत्) उन्हीं के समान मनु विष्णु नेभी कूर्म रूप धारण कर पृथिवी का उद्धार किया था ॥५२॥

१८४ शेष, अनन्त, वासुकि, कर्कोटक, धनञ्जय कूर्म और कुलिक ये सब सार्पराज्ञी कद्रू के अपत्य होने से काद्रवेय कहाते हैं ।

१८५ ब्रह्मा जी कहते हैं कि भरत कुलोत्पन्न राज वंश को पूर्व से ही जानते हुवे मैं ने इस पृथिवी पर

१८६ भ्रमण किया, सुनिये, अपने पुत्र महात्मा कश्यप सहित पूर्वीय समुद्र के पश्चिमीयतट पर भ्रमण समय में रहा था ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा यही अथर्वा कश्यप था, कश्यप इन्द्र हो कूर्म थे ॥

१९१ जज्ञे हि कश्यपो ह्यादौ, तस्मादत्रि स्मृत पुरा (टिप्पणी)

स्क. पु. । अ. ३० । श्लो. ८ ॥

१९२ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ॥

साल्व सौभपतिश्चैव, महाकूर्मश्च पार्थिवः ।

क्रथ कौशिकमुख्याश्च, नृपाः प्रवरवंशजाः ॥

(हरिवंश पु. । पर्व (२) अ. ५३)

१८८ देवों में सबसे पहिला देव ब्रह्मा हुआ ॥१॥

१८९ कूर्म्म नाड़ी शरीरस्थनाभि के अधोभाग में कूर्माकार स्थित है उसमें संयम करने से मन स्थिर होता है ॥

१९० कपिल, अम्बरीप, धृतपाद, कच्छप, ... नाद, पद्मचित्र, और मनस्विक ये सब कद्रू से उत्पन्न होने से काद्रवेय कहाते हैं ॥५८॥

१९१ आदि (सृष्ट्यारम्भ) में कश्यप की उत्पत्ति हुई, कश्यप का पुत्र अत्रि हुवा

१९२ उद्गार भोजन के पश्चात् डकार आने के वायु का नाम नाग वायु और नेत्रोन्मीलन के वायु का नाम कूर्म्म वायु है ॥

राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी, श्री रुक्मिणी के स्वयम्बर में साल्व, सौभपति, राजा महाकूर्म, क्रथ, और कौशिक ये मुख्य २ राजे आये थे जो कि श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए थे ॥

(व्याख्या) यहांमहा कूर्म को श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न होना लिखा है अर्थात् "नृपाः प्रवरवंशजाः" ये कूर्मादि नृप (राजे) प्रवर (श्रेष्ठ) वंश में उत्पन्न हुए थे।

(टिप्पणी) वाल्मी की० रा० । अयोध्या कां. सर्ग ११० में लिखा है कि मरीच का पुत्र कश्यप है और यहां कश्यप को ही आदि में उत्पन्न हुवा लिखा है मत्स्य पु० में भी मरीचि का पुत्र कश्यप लिखा है। कहीं ब्रह्मा का लिखा है

(वेद में कौरम शब्द)

९९३ इदंजना उपश्रुत नराशं . स्तविष्यते, षष्टिं सहस्रानवतिंच कौरम! आरुशमेषु दद्महे ॥ अथर्व. । कां. २० । सू. १२७ । मं. १ ॥

९९४ कूर्मो वीणाभेदश्च कच्छपी ॥ अमरको. कां. नानार्थव. कां ३ श्लोक० १३

९९५ कल्याण्यै प्रणतामृद्ध्यै, सिध्यै कूर्म्यै नमो नम॥ दुर्गास०। अ० ५ । श्लो ११ ।

९९६ रौद्रैय नमो नित्यायै, गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चन्द्ररूपिण्यै, सुखायै सततंनमः ॥
मार्कण्डेय पु० । अ० ८२ । श्लो० ९॥

---

९९३ इस मन्त्र में कौरम शब्द का अर्थ राजा है। पृथिव्यां रमण शीलो राजा कौरमः" ॥ पृथिवी में रमणशील राजा कौरम कहाता है॥ कौरम का अपभ्रंश कुरम शब्द है। कौरम नाम योगरूढि है। 'कु' शब्द उकारान्त है इसका सप्तमी के एक वचन में 'कौ' होता है, 'कु' का अर्थ पृथिवी है 'रम शब्द' रमु-क्रीड़ायाम् धातु से अच् प्रत्ययपकर ने पर बना है। इस ब्राह्म कल्प में क्षत्रियों में कौरम क्षत्रिय हुए जो अब भी लोक में विख्यात हैं ॥

९९४ कूर्म नाम वीणा भेद और कच्छपी (कुछुही) का भी कूर्म नाम है ॥१३॥

९९५ दुर्गा ब्रह्मचारिणी-हिमालय निवासी राजा हिमवान् की ज्येष्ठा पुत्री थी। दुर्गा सप्तशती अ. ५. श्लो. ११ में कूर्म्यै ऐसा विशेषण दुर्गा के लिये लिखा है यह वही दुर्गा देवी ब्रह्मचारिणी हुई है जिसके स्मारक में भारत में अब भी नवरात्र मनाये जाते हैं ॥

९९६ मार्कण्डेय पु० अ० ८२। श्लो ९ 'रौद्रयै' रुद्ररूप धारिणी पापियों को रुलाने वाली. ऐसी कूर्मी और रौद्री दुर्गा देवी थी ॥

(हिमवान् की दो कन्या और नन्द गोपकी
एक कन्या दुर्गा देवी)

९९७ शैलेन्द्रो हिमवान् नाम, धातूनाम करो महान् ।
तस्यकन्याद्वयं राम ! रूपेणाऽप्रतिमं भुवि ॥१६॥

९९८ तस्यां गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा, हिमवतः सुता ।
उमानाम द्वितीयाऽभूत, कन्या तस्यैव राघव ! ॥१७॥
वा० रा० । सर्ग ३५ श्लो १६ । १७ ॥

९९९ नन्दगोपगृहे जाता, यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचलनिवासिनी ॥
(दुर्गासप्तशती । अ० ५ । श्लो० ४२)

(वेद में 'तुविकूर्मिन्' और तुविकूर्मि शब्द)

१००० पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ॥१२॥
ऋ. । मण्डल ८ सू. ५५ । अष्टक ६ मं. १२॥

---

९९६ "सरस्वत्यास्तु कच्छपी" इस वैजयन्ती कोष के प्रमाण से सरस्वती की वीणा स्त्रीलिङ्ग है यह १ कमठी आदिका नाम है

९९७ संसार के समस्त पर्वतों का राजा हिमवान् पर्वत है, हिमालय के समीपवर्ती निवास करने वाले राजा का नाम हिमवान् था।

९९८ हिमवान् के ज्येष्ठ कन्या का नाम गङ्गा था और कनिष्ठा का उमा देवी था

९९९ नन्द गोप के घर में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई विन्ध्याचल निवासिनी मैं दुर्गा शुम्भ और निशुम्भ दोनों को नाश करूंगी

१००० इस मन्त्र में 'तुवि कूर्मिन्' इन्द्र का विशेषण है ।.१२॥

१००१ तुविकूर्मिन् ! बहुकर्मन् । इन्द्र ! ।। इति सायणभाष्यम्

१००२ आ वारयं यथोतये सुम्नाय वर्द्धयामसि । तुविकूर्मिमृषी सहतुविकूर्मिमिन्द्र शविष्ठ सत्पते।। ऋ.। अष्टक ६।अ.। मं.१

१००३ तम्पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्करीयस्यनूः गीः ।। तुविग्रामं तुविकूर्मिम् ।।

अथर्व.। कां. २०। सू. ३६। मं. ५ ।।

(राजा का कूर्म से प्रश्न)

१००४ अप्राक्षीद्भूपतिः कूर्मं, तदायुः कारणन्तदा ।
इदमायुः कथं जातं, कूर्म दीर्घतमं तव।।३२।।

१००५ शृणु भूप ! कथां दिव्यां, श्रवणात् पापनाशिनीम् ।
कथां सुमधुरामिमां शिवमाहात्म्यसंयुताम् ।
स्क० पु०। कौशिक खण्ड १० श्लो ३८। ४० ।।

१००१ तुवि कूर्मिन् ! इन्द्र ! इति सायणभाष्यम् ।।

१००२ तुविकूर्मीम् ।। इन्द्र का विशेषण है। 'कोदृशंत्वां-तुवि कूर्मीम् । बहुकर्माणम्' सङ्ग्रामादि बहुत प्रकार का कर्मों का कर्ता

१००३ तुविकूर्मीम्' 'बहु कर्माणम्' इति सायणभाष्यम् । तुवि का अर्थ बहु कर्माणम् का अर्थ कर्म करने वाला। अर्थात् कर्मवीर नाम कूर्मी है तुविग्रामं तुविकूर्मं' ।। अथर्व०। कां. २०। सू. ३६। मं ५

(व्याख्या) यहां तुविकूर्मीन, तुवि कूर्मीम् ।। का वैदिक कालीन अर्थही दिखाना अभीष्ट है अन्य कुछ नहीं ।। लेखक ल. श.

१००४ (इन्द्रद्युमति राजाने कूर्म से पूछाकि तुम्हारी दीर्घायु होने का कारण क्या है। हे कूर्म ! इतनी बड़ी आयु (उमर) आप को कैसे प्राप्तहुई यह कहिये।३२।।

१००५ कूर्म ने कहा कि हे राजन् । पाप नाशिनी इस दिव्य कथा को तुम सुनो यह कथा मधुर होने के अतिरि शिवजी के माहात्म्य सहित है ।।४०।।

(कूर्मपुराण में कूर्म रूपधारी कृष्ण, तुलादान तुलादान पद्धति और गृत्समद के पुत्र कूर्मऋषि)

(ब्रह्मोवाच)

१००६ शृणु वत्स! मरीचे ! त्वं, पुराण कूर्म संज्ञिकम् ॥
लक्ष्मीकल्पानु चरितं, यत्र कूर्मवपुर्हरिः ॥१॥

१००७ नानाकथाप्रसङ्गेन, नृणां सद्गतिदायकम् ॥
तत्र पूर्व विभागे तु, पुराणोपक्रमः पुरा ॥४॥

१००८ लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः कूर्मर्षिगण सङ्कथा १ । ना० पुराणान्तर्गतकूर्मपुराणानुक्रमणी १० प्र० १० आदित्यानाम् इमागिर० इत्यादिकस्य सप्तदशर्चस्यादित्यसूक्तस्य अ० १०६

१००९ गृत्समदपुत्रः कूर्म ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । आदित्या देवता । तत् प्रीतये जपे विनियोगः ॥ तुलादानपद्धति मुद्रित १८९६ पृ० १४४ में

१००६ हे वत्स ! मरीचे ! तू कूर्म नामक पुराण को सुन, जिस कूर्म पुराण में भगवान् कृष्णजी का स्वरूप मानव कूर्म शरीर के रूप में वर्णित है ।

१००७ अनेक प्रकार की कथाओं के प्रसङ्ग से मनुष्यों का यह कूर्म पुराण

१००८ सद्गति देने वाला है, इस कूर्म पुराण के पूर्व भागमें पुराणों का उपक्रम कहा है और लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्न का संवाद और कूर्म ऋषिगणकी कथा यह सब पूर्व विभाग में है ॥

१००९ आदित्यानाम् । इमागिर इत्यादि आदित्य सूक्त के १७ ऋचाओं का आदित्य देवता है तत्प्रीत्यर्थ जप में इन मन्त्रों का विनियोग है ॥

(प्रजापति अर्थात् यज्ञ और ईश्वर दोनों व्यापक, तथा)

(कूर्म गृत्समद का पुत्र, ऋग्वेद में उसकी श्रुति)

१७६ तानेष कूर्मोभूत्वाऽनुस ऽ ससर्प॥श. प.। कां. ७। अ. ५।

१७७ कूर्म्मो गार्त्समदो वा आदित्यः॥ ऋग्वेद । मण्डल (२) सूक्त २७।

१७८ ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या, श्रुतिर्यस्य महात्मनः । २८ । २९ के मन्त्रद्रष्टा (महाभा. । अनुशा. प. । अ. ३०)

१७९ एवमेन कूर्म्मः सुवर्गं लोकमञ्जसा नयति ॥ कृ. । अष्ट. ५ । प्र. २ । अ. ८ मं. ४ । ५ । ६ ॥

ईश्वर ने ब्रह्माण्डों स्थापन किया है। "पवित्रन्ते०" इस ऋग्वेद के मन्त्र में 'ब्रह्मणस्पते" का अर्थ 'ब्रह्माण्डों का पति' ऐसा सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि दयानन्द ने लिखा है।

१७५ (तस्य कूर्म्मस्य = ब्रह्माण्डस्य, ब्रह्माण्डान्तर्गतस्यभूगोलस्य वा, (यत्) (अवरं) (कपालम्) सम्पुटद्वयस्याऽऽधोभागः (सः) कूर्मः (अर्थभूगोलः)॥ कूर्म अर्थात् ब्रह्माण्ड अथवा ब्रह्माण्डान्तर्गत भूगोल का जो नीचे सम्पुट दो का अधोभाग है वह यह कूर्म कहाता है॥४३॥

१७६ 'एषः' कोऽर्थः। प्रजापतिरीश्वरः। अथवा। 'एषः' प्रजापतिरर्थाद् यज्ञः॥ "प्रजापति वै यज्ञ" इति गोपथब्राह्मणे। (कूर्मः) क्रियात्मको भूत्वा अनुस " सरूप व्याप्तो भवति = पुरुषव्यत्ययः। कूर्म का अर्थ प्रजापति और प्रजापति का अर्थ ईश्वर और यज्ञ है। यह यज्ञ क्रियात्मक रूप से पृथिव्यादि सब लोकों में व्याप्त होने से कूर्म कहाता है। ईश्वरपक्ष में यजमान प्रजापति अर्थात् ईश्वर की व्यापकता को रचनात्मक सृष्टि में उसका और उसकी महिमा का अनुभव करे॥

(महाराणी कद्रूके ७ सात पुत्र कूर्मादि)

१८० ८, ९, कश्यपो मारीचः । सामवे. । प्रथमा दश. । खं. ३ ॥

१८१ कश्यपो वै कूर्मः ॥ श. । कां. ७ अ. ५ प्र. ४।

१८२ मरीचेः कश्यपः पुत्रः ॥ मत्स्यपु. ।

१८३ मनोर्नाम मनुवच्च, यदेतत् पठ्यते किल ।
प्रयोजनवशाद्विष्णु, रसावेव तु मूर्तिमान् ॥
वराह पु० अ० ३१ श्लो. १

१८४ यथै वोद्धृतवान् वेदान्, मत्स्यरूपेण केशवः ।
तद्वच्च कूर्मरूपी स्याद्, द्वितीयां पश्य वैष्णवीं ॥
व. पु. अ. ४१ श्लो. ४४

१८५ शेषोऽनन्तो वासुकिश्च, कर्कोटक धनञ्जयः ।
कूर्मश्च कुलिकश्चैव, काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥ महाभा०

---

१७७ ऋग्वेदमण्डल (२) सूक्त (२७) (२८) (२९) के मन्त्र द्रष्टागृत्समद के पुत्र कूर्म ऋषि हैं और २७ । २८, २९ सूक्तों के अतिरिक्त ऋग्वेद दूसरे मण्डल समस्त के मन्त्र द्रष्टा ऋषि

१७८ गृत्समद हैं । महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ३० तीस में कहा है कि "जिस-महात्मा गृत्समद की श्रुतिऋग्वेद में वर्तमान है । वह श्रुति यही ऋग्वेद का दूसरा मण्डल है

१७९ 'कूर्मः' का अर्थ यज्ञ है । क्रियात्मक यज्ञ ही स्वर्ग (सुखविशेष) का साधन है । अर्थात् इस यजमान को यह कूर्म (यज्ञ) ही स्वर्ग का प्रापक अर्थात् दिव्य सुख को देने वाला है ॥८७॥

१८० मरीच का पुत्र कश्यप मन्त्र द्रष्टा ऋषि हुवा है ॥

१८१ कश्यप ही कूर्म है ऐसा श० काण्ड ७ अध्याय ५ प्रपाठक ४ में है

ब्रह्मा के दो पुत्र अथर्वा और कश्यप (पुराण मतसे)
(महाराज्ञी कद्रू का वंश)

१८६ पार्थिवे भारते वंशे, पूर्वमेव विजानता ।
पृथिव्यां संभ्रमामिमं, श्रूयतां यन्मया कृतम् ॥१४॥

१८७ समुद्रेऽहं पुरा पूर्वे, वेलामासाद्य पश्चिमाम् ॥
आसं सार्द्धं तनूजेन, कश्यपेन महात्मना ॥
॥ हरिवंश पु. । अ. ५३ । श्लो. १५ ॥

१८८ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव॥ मुण्डक। खं १ ॥मं. १॥

१८९ कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ योगदर्शने ॥ विभूतिपादस्तृतीयः । सू. ३० ॥

१९० कपिलश्चाम्बरीषश्च, धृतपादश्च कच्छपः ।
प्रह्लादपद्मचित्रश्च, गन्धर्वोऽथ-मनस्विकः ॥ वायुपु. ॥

---

१८१ मरीचि का पुत्र कश्यप है ऐसा मत्स्य पु० में लिखा है ॥

१८२ मनु का अर्थ मनुत्व (मनुपन) है, यही मनु काम पड़ने पर मूर्तिमान् विष्णु कहाते हैं ॥

१८३ जैसे मत्स्यसदृश रूप वाले होकर भगवान् कृष्ण ने वेदों का पुनरुद्धार किया था, (तद्वत्) उन्ही के समान मनु विष्णु नेभी कूर्म रूप धारण कर पृथिवी का उद्धार किया था ॥९२॥

१८४ शेष, अनन्त, वासुकि, कर्कोटक, धनञ्जय कूर्म और कुलिक ये सब सार्पराज्ञी कद्रू के अपत्य होने से कद्रावेय कहाते हैं ।

१८५ ब्रह्मा जी कहते है कि भरत कुलोत्पन्न राज वंश को पूर्व से ही जानते हुवे मैं ने इस पृथिवी पर

१८६ भ्रमण किया, सुनिये, अपने पुत्र महात्मा कश्यप सहित पूर्वीय समुद्र के पश्चिमीयतट पर भ्रमण समय में रहा था ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र अथवा यही अथर्वा कश्यप था, कश्यप इन्द्र ही कूर्म थे ॥

१९१ जज्ञे हि कश्यपो ह्यादौ, तस्मादग्निरभूत् पुरा (टिप्पणी)

स्क. पु. । अ. ३० । श्लो. ८ ॥

१९२ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ॥

साल्व सौभपतिश्चैव, महाकूर्मश्च पार्थिवः ।

क्रथ कौशिकमुख्याश्च, नृपाः प्रवरवंशजाः ॥

(हरिवंश पु. । पर्व (२) अ. ५३)

१८८ देवों में सबसे पहिला देव ब्रह्मा हुआ ॥१॥

१८९ कूर्म्म नाड़ी शरीरस्थनाभि के अधोभाग में कूर्माकार स्थित है उसमें संयम करने से मन स्थिर होता है ॥

१९० कपिल, अम्बरीष, धृतपाद, कच्छप, ऋद्धनाद, पद्मचित्र, और मनस्विक ये सब कद्रू से उत्पन्न होने से काद्रवेय कहाते हैं ॥५८॥

१९१ आदि (सृष्ट्यारम्भ) में कश्यप की उत्पत्ति हुई, कश्यप का पुत्र अग्नि हुवा

१९२ उद्गार भोजन के पश्चात् डकार आने के वायु का नाम नाग वायु और नेत्रोन्मीलन के वायु का नाम कूर्म्म वायु है ॥

राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी, थी रुक्मिणी के स्वयम्बर में साल्व, सौभपति, राजा महाकूर्म, क्रथ, और कौशिक ये मुख्य २ राजे आये थे जो कि श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए थे ॥

(व्याख्या) यहांमहा कूर्म को श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न होना लिखा है अर्थात् "नृपाः प्रवरवंशजाः" ये कूर्मादि नृप (राजे) प्रवर (श्रेष्ठ) वंश में उत्पन्न हुए थे ।

(टिप्पणी) वाल्मी की० रा० । अयोध्या कां. सर्ग ११० में लिखा है कि मरीच का पुत्र कश्यप है और यहां कश्यप को ही आदि में उत्पन्न हुवा लिखा है मत्स्य पु० में भी मरीचि का पुत्र कश्यप लिखा है । कहां ब्रह्मा का लिखा है

(वेद में कौरम शब्द)

९९३ इदंजना उपश्रुत नराशं . स्तविष्यते, षष्टिं सहस्त्रानवतिंच कौरम! आरुशमेषु दद्महे ॥ अथर्व. । कां. २० । सू. १२७ । मं. १ ॥

९९४ कूर्मो वीणाभेदश्च कच्छपी ॥ अमरको. कां. नानार्थव. कां ३ श्लोक० १३

९९५ कल्याण्यै प्रणतामृद्धैय, सिद्ध्यै कूर्म्यै नमो नम॥ दुर्गास०। अ० ५ । श्लो ११ ।

९९६ रौद्रैय नमो नित्यायै, गौर्य्यैधात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चन्द्ररूपिण्यै, सुखायै सततंनमः ॥
मार्कण्डेय पु० । अ० ८२ । श्लो० ९॥

---

९९३ इस मन्त्र में कौरम शब्द का अर्थ राजा है। पृथिव्यां रमण शीलो राजा कौरमः" ॥ पृथिवी में रमणशील राजा कौरम कहाता है॥ कौरम का अपभ्रंश कुरम शब्द है। कौरम नाम योगरूढि है। 'कु' शब्द उकारान्त है इसका सप्तमी के एक वचन में 'कौ' होता है, 'कु' का अर्थ पृथिवी है 'रम शब्द' रमु-क्रीड़ायाम् धातु से अच् प्रत्ययकर ने पर बना है। इस आद्य कल्प में क्षत्रियों में कौरम क्षत्रिय हुए जो अब भी लोक में विख्यात हैं ॥

९९४ कूर्म नाम वीणा भेद और कच्छपी (कुछुही) का भी कूर्म नाम है ॥१३॥

९९५ दुर्गा ब्रह्मचारिणी-हिमालय निवासी राजा हिमवान् की ज्येष्ठा पुत्री थी। दुर्गा सप्तशती अ. ५. श्लो. ११ में कूर्म्यै ऐसा विशेषण दुर्गा के लिये लिखा है यह वही दुर्गादेवी ब्रह्मचारिणी हुई है जिसके स्मारक में भारत में अब भी नवरात्र मनाये जाते हैं ॥

९९६ मार्कण्डेय पु० अ० ८२ । श्लो ९ 'रौद्रयै' रुद्ररूप धारिणी पापियों को रुलाने वाली. ऐसी कूर्मी और रौद्री दुर्गा देवी थी ॥

(हिमवान् की दो कन्या और नन्द गोपकी एक कन्या दुर्गा देवी)

९९७ शैलेन्द्रो हिमवान् नाम, धातूनाम करो महान् ।
तस्यकन्याद्वयां राम ! रूपेणाऽ प्रतिमं भुवि ॥१६॥

९९८ तस्यां गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा, हिमवतः सुता ।
उमानाम द्वितीयाऽ भूत्, कन्या तस्यैव राघव ! ॥१७॥
वा० रा० । सर्ग ३५ श्लो १६ । १७ ॥

९९९ नन्दगोपगृहे जाता, यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचलनिवासिनी ॥
(दुर्गासप्तशती । अ० ५ । श्लो० ४२)

(वेद में 'तुविकूर्मिन्' और तुविकूर्मि शब्द)

१००० पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुवि कूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः॥१२॥
ऋ. । मण्डल ८ सू. ५५ । अष्टक ६ मं. १२॥

---

९९६ "सरस्वत्यास्तु कच्छपी।" इस वैजयन्ती कोष के प्रमाण से सरस्वती की वीणा स्त्रीलिङ्ग है यह १ कमठी आदि का नाम है

९९७ संसार के समस्त पर्वतों का राजा हिमवान् पर्वत है, हिमालय के समीपवर्ती निवास करने वाले राजा का नाम हिमवान् था।

९९८ हिमवान् की ज्येष्ठ कन्या का नाम गङ्गा था और कनिष्ठा का उमा देवी था

९९९ नन्द गोप के घर में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई विन्ध्याचल निवासिनी मैं दुर्गा शुम्भ और निशुम्भ दोनों को नाश करूंगी

१००० इस मन्त्र में 'तुवि कूर्मिन्' इन्द्र का विशेषण है।१२॥

१००१ तुविकूर्मिन् ! बहुकर्मन् । इन्द्र ! ।। इति सायणभाष्यम्

१००२ आ वारयं यथोतये सुम्नाय वर्द्धयामसि । तुविकूर्मिऋती सहतुविकूर्मिमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ।। ऋ. । अष्टक ६ । अ. । मं. १

१००३ तम्पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्करीयस्यनूः गीः ।। तुविग्रामं तुविकूर्मिम् ।।

अथर्व. । कां. २० । सू. ३६ । मं. ५ ।।

(राजा का कूर्म से प्रश्न)

१००४ अप्राक्षीद् भूपतिः कूर्मं, तदायुः कारणन्तदा ।
इदमायुः कथं जातं, कूर्म दीर्घतमं तव ।। ३२ ।।

१००५ शृणु भूप ! कथां दिव्यां, श्रवणात् पापनाशिनीम् ।
कथां सुमधुरामिमां शिवमाहात्म्यसंयुताम् ।
स्क० पु० । कौशिक खण्ड १० श्लो ३८ । ४० ।।

१००१ तुवि कूर्मिन ! इन्द्र ! इति सायणभाष्यम् ।।

१००२ तुविकूर्मीम् ।। इन्द्र का विशेषण है। 'कीदृशंत्वां-तुवि कूर्मीम् । बहुकर्माणम् ?' सङ्ग्रामादि बहुत प्रकार का कर्मों का कर्ता

१००३ तुविकूर्मीम् ? 'बहु कर्माणम् ?' इति सायणभाष्यम् । तुविका अर्थ बहु कर्माणम् का अर्थ कर्म करने वाला अर्थात् कर्मवीर नाम कूर्मा है तुविग्रामं तुविकूर्म ? ।। अथर्व० । कां. २० । सू. ३६ । मं ५

(व्याख्या) यहां तुविकूर्मीन, तुवि कूर्मीम् ।। का वैदिक कालीन अर्थही दिखाना अभीष्ट है अन्य कुछ नहीं ।। लेखक ल. श.

१००४ (इन्द्रद्युमति राजाने कूर्म से पूछाकि तुम्हारी दीर्घायु होने का कारण क्या है । हे कूर्म ! इतनी बड़ी आयु (उमर) आप को कैसे प्राप्तहुई यह कहिये । ३२ ।।

१००५ कूर्म ने कहा कि हे राजन् । पाप नाशिनी इस दिव्य कथा को तुम सुनो यह कथा मधुर होने के अतिरि शिवजी के माहात्म्य सहित है ।। ४० ।।

(कूर्मपुराण में कूर्म रूपधारी कृष्ण, तुलादान तुलादान पद्धति और गृत्समद के पुत्र कूर्मऋषि)

(ब्रह्मोवाच)

१००६ शृणु वत्स! मरीचे ! त्वं, पुराण कूर्म संज्ञिकम् ॥
लक्ष्मीकल्पानु चरितं, यत्र कूर्मवपुर्हरिः ॥३॥

१००७ नानाकथाप्रसङ्गेन, नृणां सद्गतिदायकम् ॥
तत्र पूर्वं विभागे तु, पुराणोपक्रमः पुरा ॥४॥

१००८ लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः कूर्मर्षि गण सङ्कथा १ । ना० पुराणान्तर्गतकूर्मपुराणानुक्रमणी १० पृ० १० आदित्यानम् इमागिर० इत्यादिकस्य सप्तदशर्चस्यादित्यसूक्तस्य अ० १०६

१००९ गृत्समदपुत्रः कूर्म ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । आदित्या देवता । तत् प्रीतये जपे विनियोगः ॥ तुलादानपद्धति मुद्रित १८९६ पृ० १४४ में

१००६ हे वत्स ! मरीचे ! तू कूर्म नामक पुराण को सुन, जिस कूर्म पुराण में भगवान् कृष्णजी का स्वरूप मानव कूर्म शरीर के रूप में वर्णित है ।

१००७ अनेक प्रकार की कथाओं के प्रसङ्ग से मनुष्यों का यह कूर्म पुराण

१००८ सद्गति देने वाला है, इस कूर्म पुराण के पूर्व भागमें पुराणों का उपक्रम कहा है और लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्न का संवाद और कूर्म ऋषिगणजी कथा यह सब पूर्व विभाग में है ॥

१००९ आदित्यानाम् । इमागिर इत्यादि आदित्य सूक्त के १७ ऋचाओं का आदित्य देवता है तत्प्रीत्यर्थ जप में इन मन्त्रों का विनियोग है ॥

(भारत और भारत से भिन्न देशों में रहने वाले कूर्म क्षत्रियों का अग्राम्यों—कूर्मियों के साथ खानपानादि व्यवहार)

१०१० श्वभ्र कूर्मः ॥ गो. ब्रा. पू. भा. । प्रपा. २ ब्रा. १४॥

१०११ श्वभ्रन्तु पातालम् ॥ अमरकोषे ।

१०१२ भारते कथितः कूर्मः ॥ गरुड पु. ॥

१०१३ एष कूर्मो मयाख्यातो भारते भगवानिह ॥ " स्क. पु. । सह्याद्रिखं. । अ. ११ श्लो २८ ॥

१०१४ एकरुद्रस्तथा कूर्मः ॥ लिङ्गपु. । उपरिभाग, अ. २७ । श्लो. १०५ ॥

१०१५ अग्रम्यैर्वर्तयन्तिस्म, रसैश्चैव स्वयंकृतैः ॥ कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो, बाह्यान्तरनिवासिनः ॥१६॥ वायुपु. । अ. ६१ । श्लो. १६

१०१० गोलाकार गर्त (गढ़े) का नाम श्वभ्र है जिसमें प्रायः जलजन्तु कूर्म रहा करता है

१०११ श्वभ्र का दूसरा अर्थ अमरकोष के टीकाकारने पाताल लिखा है जिसको आजकल अमेरिका कहते हैं । पाताल का राजा बलि था, पाताल को नागलोक भी कहते हैं ।

१०१२ गरुड़ पुराण में लिखा है कि भारतवर्षीय कूर्म को मैंने कहा । कूर्म का अर्थ सूर्य्य अथवा कूर्म राजा दोनों सङ्गत हैं

१०१३ यहां भारतवर्ष में रहने वाले भगवान् कूर्म को मैंने कहा । कूर्म सूर्य अथवा कूर्म राजा है

१०१४ शिवजी के १७ नामों में एक नाम कूर्म भी है ॥

१०१५ देश विदेश में रहने वाले समृद्धिशाली कुटुम्बी गृहस्थ (अमाभ्य) जो सदाचारादि से विचलित हो जावे अथवा देश विदेश में बहुत काल की पृथकता (जुदाई से-भाव नहीं रहे) उनके साथ देश के श्रीमान् कुटुम्बी अपने हाथ से पकाये बनाये हुवे मधुरादि षड्विध रस विद्ध भोजन और विवाहादि का वर्ताव करें ॥ श्लोक का यह साधारण अर्थ है ब्राह्मणादि वर्णों में कोई भी श्रीमान् कुटुम्बी हो 'मूलवो 'कुटुम्बिन ॥ पद से उसका ग्रहण हो सकता है कि वह अपने अथवा अपने धर्म से बिछुड़े हुवों को प्रायश्चित्त कराके अपने में मिलावे, उनके साथ लड़का लड़की विवाह और खान पानादि सब प्रकार का व्यवहार वैसा ही करे जैसे कि अपने दूसरे सम्बन्धियों से करता हो। वायुपुराण कहता है कि ऐसा वर्ताव पहिले था अतः अब भी होना चाहिये ॥

मूल में आये हुवे 'कुटुम्बिनः" पदका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि कुटुम्बी अर्थात् कुनबी कृषक कूर्म जो क्षत्रिय हैं परन्तु आपत्काल के कारण खेती की जीविका कर रहे हों और पश्चात् जन्म भूमि छोड़ देश विदेश में रहते हुवे अधिक काल होगा या हो, उनको अपने समुदाय से पृथक् न करके उनके साथ विवाह और खान पानादि करें। यहां हमने कुटुम्बी का अपभ्रंश कुनबी है ऐसा जान यह अर्थ किया है पाठक स्वयं भी विचारें। जो अर्थ ऊपर है उसके अन्तर्गत यह भी अर्थ आ जाता है। मूल श्लोक में ' अमाभ्यैः " पद है जैसे वेद में 'तुविग्राभम्' पद आया है। इसमें "हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य भत्वम् ॥" इस वार्तिक से ग्रह " धातु के हकोभ होकर तुविग्राभम् " हुआ है वैसे ही अमाभ्यैः " यहां भी अम ह्यैः' था, छन्दोवत् मानकर ह कोभ् हुवा है॥

प्राचीन काल में अपने देश और विदेश में रहने वाले ऐश्वर्य्य सम्पन्न कुटुम्बी (कुनबी) क्षत्रिय अथवा कूर्म क्षत्रिय विदेशीय कुटुम्बियों के साथ खान पान विवाह इत्यादि का व्यवहार रखते थे।

(व्याख्या) एक भाई आजीविका आदि के कारण अपनी जन्म भूमि छोड़कर विदेश में रहने लगा ऐसी दशा में उसको जाति से पृथक् कर देना चाहिये अथवा जाति में रखना चाहिये यह एक प्रश्न है।

दूसरा प्रश्न यह है कि भारत से विभिन्न देशों में जो कुटुम्बी चले गये हैं वे जाति से पृथक् कर दिये जांय अथवा उनके साथ भी खान पान और विवाहादि का सम्बन्ध रखना चाहिये।

(गृत्समद के विषय में सायणाचार्य लिखित एक आख्यायिका)

१०१६ पुरुवंशे सुधर्मणः पुत्रः क्षत्रवृद्धः, क्षत्रवृद्धस्य पुत्रः शुनहोत्रः, शुनहोत्रस्यः पुत्राः । तत्रैकः काशः, द्वितीयो लेशस्तृतीयो गृत्समदः शुनककूर्माविति गृत्समदस्य द्वौपुत्रौ जातौ । गृत्समदविषये सायणाचार्येणैकाऽऽख्यायिका लिखिता, सा चेयम् । इतिग्रन्थ लेखकः ।

दोनों प्रश्नों के उत्तर में वायुपुराण कहता है कि सदाचारी देशी और विदेशी कुटुम्बियों के साथ खान पान विवाह इत्यादि का सम्बन्ध प्राचीन, काल में था वैसे ही अब भी होना चाहिये सदाचार के साथ अन्य द्वीपों में रहने से प्रायश्चित्त उन सदाचारियों के लिये अनावश्यक है कदाचित् अज्ञान से सदाचार का त्याग हो गया तो प्रायश्चित्त करके उस २ वर्ण में लेना चाहिये ।

उपर्युक्त व्याख्या श्लोक के " आभ्यन्तर निवासी " इस पद के आधार पर है "कुटुम्ब" शब्द का अर्थ उदार आचरणों पर है जैसे कहा भी है कि

" उदारचरितानान्तु, वसुधैव कुटुम्बकम् "

अर्थात् उदार आचरण रखने वाले धार्मिकों के लिये समस्त पृथिवी ही कुटुम्ब है ॥ महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि महाभाष्य में लिखते हैं कि 'एकैकस्य शब्दस्य बहवोपभ्रंशाः ॥ " अर्थात् लोक में एक २ शब्द के बहुत अपभ्रंश (बिगड़े हुवे) शब्द हैं जैसे 'गावी गोणी गोपोतलिका इत्येवमादयोप वभ्रंशाः" 'एक गो शब्द के गावी, गोपोतलिक: इत्यादि अपभ्रंश हैं इसी प्रकार कुटुम्बी का अपभ्रंश कुनबी अधिक सम्भव है

१०१६ पुरुरवा के वंश में सुधर्मा का पुत्र क्षत्रवृद्ध क्षत्रवृद्ध का पुत्र शुनहोत्र शुनहोत्र के तीन पुत्र १ काश २ लेश ३ गृत्समद गृत्समद के दो पुत्र कूर्म और शुनक । गृत्समद के विषय में सायणाचार्य ने एक आख्यायिका लिखी है कि ऋग्वेद (२) दूसरे मण्डल के

१०१७ 'मण्डलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः । स च पूर्वमाङ्गिरस कुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञे कालेऽसुरैर्गृहीतः। इन्द्रेण मोचितः । पश्चात् तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनपुत्रो गृत्समदनामाऽभूत । तथा चानुक्रमणिका । 'य आङ्गिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयमण्डलमपश्यत् । ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी ॥१३॥ (क. सा. १३ खं.)

(तुलादान पद्धति और चन्द्रवंशीय कूर्म ऋषि)

१०१८ तुलादान पद्धतौ । १८९६ मुद्रिते चतुश्चत्वारिंशाधिके १४४ शततमे पृष्ठे।'आदित्यानाम्' इमागिर इत्यादिकस्य सप्तदशर्चस्यादित्यसूक्तस्य गृत्समदपुत्रः कूर्म्म ऋषिः । अयङ्कूर्मर्षिश्चन्द्रवंशी योऽस्ति। अस्य पोषकप्रमाणं महर्षिदयानन्द स्वर्गवेदस्य द्वितीय मण्डले मन्त्रद्रष्ट्ववालेख॥ तत्रायं लेखः ।'य अङ्गिरस

१०१७, 'मन्त्र द्रष्टा ऋषि गृत्समद हैं' गृत्समद आङ्गिरस कुल में शुनहोत्र के पुत्र थे, एक समय गृत्समद यज्ञ कर रहे थे कि उनको असुरोंने पकड़लिया । इन्द्रने असुरों से गृत्समद को छुड़ाया और आज्ञादी कि गृत्समद अब तुम आङ्गिरस कुलका त्याग भृगकुल में रहो क्योंकि तुम अपने आपको असुरों से न बचा सके इस विषय में अनुक्रमणिका का प्रमाण है कि 'जो आङ्गिरस शुनहोत्र का पुत्र होकर भृगुकुल में शौनक हुआ वही शौनक (गृत्समद) ऋग्वेद द्वितीय मण्डल का मन्त्र द्रष्टा ऋषि था ॥ ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी ॥ (१३) (१०१७-१०१८) (क. सा. १३ खं.)

शौनहोत्र इत्यादिकम् । तत्रषोडशर्चामेवर्षिः । भेदस्त्वेतावानेव । तत्र पृथक् पृथगपि मत्वा गृत्समदः षोडश मन्त्राणं मन्त्रद्रष्टर्षिः तुलादान पद्धतौ तु कूर्म्मर्षिः षोडश मन्त्राणां मन्त्रद्रष्टाऽऽसीदिति । नास्तिषोडश सङ्ख्या भेदइति ग्रन्थलेखकस्य निर्णयः ॥

कूर्म्मः (कच्छपो) विश्वामित्रस्य पुत्रः अत्र प्रमाणम् ।

१०१९ मधुच्छन्दो जयश्चैव, मुद्गलश्चेति विश्रुतः ।
कच्छपो हरितश्चैव, विश्वामित्रस्य वै सुताः ॥
हरिवंश पु. । अमावसु वंश कीर्तन
२७ सप्तविंशत्यध्यायः ॥ श्लो० ४ ॥

१०१८ तुलादान पद्धति १८९६ में मुद्रित पृष्ठाङ्क १४४ में लिखा है कि आदित्यानां इमागिर इत्यादि सत्रह ऋचा आदित्य सू. के मन्त्र द्रष्टा ऋषि गृत्समद के पुत्र कूर्म ऋषि हैं । यह कूर्म ऋषि चन्द्र वंशी है । इस की पुष्टि महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदभाष्य के द्वितीय मण्डल के मन्त्र द्रष्टा ऋषि से होती है जैसे । 'य आङ्गिरस शौनहोत्र इत्यादि । वहां गृत्समद ।१६ ऋचाओं के ही ऋषि हैं । भेद केवल इतना है वहां पृथक २ ऋषि पांच ५ मान के गृत्समद १६ ऋचाओं के ऋषि हैं और तुलादाने पद्धति में कूर्म ऋषि ही १६ ऋचाओं के ऋषि लिखे हैं परन्तु १६ के लेख प्रमाण में कोई भेद नहीं है ॥

१०१९ अर्थः- १- मधुच्छन्द २ जय ३ मुद्गल ४ कच्छप (कूर्म) (५) और हरीत ये पांच पुत्र विश्वामित्र के थे ॥

मनुजी अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं कि "तपोबीजप्रभावैस्तु, ते गच्छन्ति युगे युगे । उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ इस पर टीकाकारों ने लिखा है कि विश्वामित्र पहिले क्षत्रिय थे तपश्चर्या से ब्राह्मण हुए, और बीज के प्रभाव से ऋष्यशृङ्ग आदि ब्राह्मण हुवे थे (बीर्य) की शुद्धि सम्भव है । यह आवश्यक है कि माता पिता का रजस् और वीर्य शुद्ध हो, मनुजी ने स्वाध्याय रहित ब्राह्मणादिवर्णों को नामधारी ब्राह्मण केवल, जन्म से लिखा

(अंशावतरण पर प्रश्न, संवाद, राजा ययाति की
गाथा, तत्वादि की रचना)

१०२० कथमंशावतरणं, कुर्मः सर्वपितामहाः ।
अन्तरिक्षगता ये च, पृथिव्यां पार्थिवाश्च ये ॥
हरिवंश पु० प्रथमप० अ० ५३ श्लो. ९

१०२१ लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः कूर्मर्षिगणसंकथा
चारकथा, जगदुत्पत्तिकीर्तनम् ॥५॥ ना. पु.
१०६ श्लो. ५

१०२२ अत्र गाथा महाराज्ञा,पुरा गीता ययातिना,यो
हरन् कामान्, कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥१३॥ वा
उत्तर खं. । अ. ३१ श्लो १३

१०२३ विनिर्मितो विराज्येन, तत्वानि प्रकृतिर्जगत् ।
शेषधरणीच, ब्रह्मस्तम्बएवच ॥१८॥ ब्रह्मवै. पु
२१ । श्लो. १८ ॥

है जैसे:- 'यथा काष्ठमयो स्ती, यथा चर्म मयो मृगः। यश्च विप्रोऽ
स्त्रयस्ते नाम विभ्रति ॥ म० । अ० श्लो ॥ विश्वामित्र ऋषि थे
द्रष्टा थे विश्वामित्र के पिता का नाम गाधि था, गाधि क्षत्रिय
कांगड़ी के स्वर्गीय प्रोफेसर बाल कृष्ण जी एम. ए. अपने रचित
के इतिहास भाग प्रथम में लिखते हैं कि 'कन्नौज पत्तन (शहर) का
गाधीपुर महोदय व कुसुम पुर कल्यान था। (भा० व० भा० पृ २
सिद्ध है कि कन्नौज शहर को विश्वामित्र के पूर्वजों ने ही बसाय
पड़ता है। हारीत संहिता नामक वैद्यक शास्त्र में एक ग्रन्थ के
विश्वामित्र के पुत्र हारीत थे इसीलिये उसका नाम हारीत संहिता
१०२०-१०२४ हे पिता महो ! जो राजा परलोकान्तरित हैं और और जो इ
पर विद्यमान हैं उनके वंशका विस्तार कैसे करें क्यों कि यह सृष्टि

(मनुष्य देहधारी कूर्म का जन्म अनेक जन्मों में
कठिनता से मिलता है ब्रह्म पुराण)

१०२४ ततो दुःखमनुप्राप्य, बहुवर्ष गुणान्विते ॥
स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥८६॥
ब्रह्म पु. । अ. १०८ । श्लो. ८६

१०२५ त्वमाधारस्त्वमनन्तस्त्वं, कूर्मस्त्वं धराम्बुजम् ।
धर्मज्ञा नाम्प्रदस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः ॥ गरु०
अ. २३१ । श्लो. २३

१०२६ सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे, बिभर्त्ति सिद्धार्थसमं च
विश्वम् । कूर्मेच शेषे मशको गजे यथा, कूर्मश्च कृष्णस्य
कलाकलांशः ७ ब्रह्म वै. पु. । प्रथम खं.।अ.३०।श्लो ७

१०२७ ब्रह्मेशशेष विघ्नेशाः कूर्मो धर्मोहमेवच ।
वयरुच कार्तिकेयश्च, श्रीकृष्ण शा वयं नव ॥
ब्र. वै. अ. ९ । श्लो १०

अनादि है, इस सृष्टि में सुकृत पुण्यात्माओं का गमनागमन होताही रहता है ॥९॥ नारद पुराण में लक्ष्मी और इन्द्रद्युम्न का संवाद, कूर्म ऋषिगण की कथा और चारों आश्रम के आचार विचारों की कथा तथा जगदुत्पत्ति का वर्णन है ॥५॥ जैसे कूर्म्म (कछुआ) कभी अपने अङ्गों को फैलाता और कभी सिकोड़ता है उसी प्रकार अपने कामों को पूर्ण करता हुआ मनुष्य कभी कार्यों से निवृत्त होता और कभी नहीं भी होता ॥१३॥

इस विषय में महाराज ययाति की कही हुई गाथा भी है जो ग्रन्थ के विस्तार भय से नहीं लिखी गयी ॥गयी ॥९३॥ ब्रह्माने प्रकृति के, परमाणुरूप तत्वों से जगत् कोरचा है, प्रकृति ही जगत् का उपादान कारण है । उसी को कारण से कार्य रूप में परिणत किया है ॥ यह पृथिवी उत्पत्ति से प्रलय पर्य्यन्त सर्व द्रष्टा कूर्म सञ्ज्ञक ईश्वर तथा प्रलय में शेष रहने वाले शेष ईश्वर के नियम पर रहती है ॥१८॥

यदुकुल के तिलक भगवान् कृष्णजी

१०२८ यदुकुलतिलकाब्धिधारा शौरेः कुधरोद्धा रनिधानदत्त
धन्विन् । कलि कल्मष हराङ्घ्रि पद्मपाद गुणदात्मपद कूर्म
कश्यपोत्थ ॥ नारद पु. । उत्तर खं. । अ. २९ ॥

१०२९ स्थापितश्च त्वया कूर्मे, गजेन्द्रे मशकोयथा । परमाणु
परमसूक्ष्मं, विश्वेषु नास्ति कुत्रचित् ॥
(ब्रह्म वै. पु. । उ. । खं. १ । अ. १०० श्लो २५)

१०३० अनन्तोहि भगवन्नहमेव कलांशकः । विश्वैकस्थे
क्षुद्रकूर्मे मशकोहं गजे यथा॥ ब्र. वै. खं. ४। अ.१२९
असङ्ख्य शेषाःकूर्माश्च, ब्रह्माविष्णु शिवात्मकाः । असख्य
नि च विश्वानि तेषामीशः स्वयंभवान् ब्र. खं ४ अ.१२९
श्लो २४

१०२५ हे कृष्णजी आपही इस जगत के अधार हैं । आप अनन्त और कूर्म है आप
पृथिवी के कमल हैं । आपही धर्मज्ञान के दाता हैं, आपही यज्ञ

१०२६ समूह की शक्ति हो ॥ २३ ॥ हजार शिरों का बल जिसके शिरमें है ऐसे
आप शिरपर पीली राईके समान लाघव से इस विश्व को धारण किये हुवे हो॥

१०२७ कूर्म है पृथिवी आप पर और आप शेषपर हैं,- जैसे हाथी के शरीर में
मशा तो हस्ती के लिये वह न बैठने के समान है। प्र न कूर्म किसपर है (उत्तर)
किसी पर नहीं वह कृष्ण की एक कला का अंश है। और कृष्णजी ईश्वर के
प्रति हैं अतः यह विश्व ईश्वर की शक्ति पर आकाश में स्थित है॥७॥
ब्रह्मा, महेश, शेष, विनायक, कूर्म, धर्म, मैं, और हम सब, तथा कार्तिकेय ये
सब हम श्री कृष्णजी के अंश हैं ॥ १० ॥

१०२८ इस काश्यपी सृष्टि में हे भगवन् । कृष्ण जी आप यदुकुल के समुद्र समान
तिलक हो, यदुकुल में आप शूरवीर हैं । पृथिवी के धारण और स्थिर रखने
में समर्थ हैं सूर्य वंशधारी, दत्तधन्वी, आप के कमल चरण कलि युग के
पापों का नाश करने वाले भगवन् आप आत्मज्ञान के उपदेष्टा हैं और कूर्म
कश्यप वंश के उद्धारक हैं ।

१०३१ शाल्वसौभपतिश्चैव, महाकूर्मश्च पार्थिवः ॥
कुलीनोत्कमुख्याश्च, नृपाः प्रवरवंशजाः ॥७॥
॥ हरिवंश पु. पर्व २। अ. ५३। श्लो. ॥७॥

१०३२ श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं, सर्वे ते नृपसत्तमाः।
कुर्म इत्यब्रुवन् दृष्ट्वा, जरासन्धं महाबलम् ॥३२॥

(राजा का कूर्म से प्रश्न, ब्रह्मा का मरीचि को कूर्म पु.
सुनाना कूर्मर्षिगण की कथा)

१०३३ अप्राक्षीद् भूपतिः कूर्मं, तदायुः कारणन्तदा।
इदमायु, कथं जातं, कूर्म दीर्घतमं तव ॥३८॥

१०२९ हे कृष्ण जी इस पृथिवी को कूर्म सञ्ज्ञक ईश्वर के नियम पर आपने स्थापित किया है, जैसे इन्द्र के हाथी ऐरावत में स्थित मशक ऐरावत के लिये तृण समान है अर्थात् कुछ नहीं वैसे ही आप के लिये पृथिवी आदि का स्थापन कुछ नहीं है, परम सूक्ष्म परमाणु के इतना भी इस विश्व में आपकी व्यापकता बिना कोई स्थान कहीं नहीं है अर्थात् आप का बाहुबल सर्वत्र काम कर रहा है ॥२५॥

१०३० हे भगवन् ! आपका यश अनन्त (बहुव्यापी) है, यह विश्व जो एक है उसमें स्थित क्षुद्र कूर्म में मैं ऐसा हूँ जैसे हाथी के शरीर में बैठा हुवा क्षुद्र मशक ॥१७
ब्रह्मा, विष्णु, और महेश के रूप में अगणित शेष और असंख्य कूर्म इन सबको ईश (स्वामी) कृष्ण जी आप स्वयम् (खुद) हैं ॥२४॥
और असंख्य लोक हैं उनके भी आप ही स्वामी हैं ॥

१०३१ भीष्मक ने अपनी पुत्री रुक्मिणी के स्वयंम्वर में श्रेष्ठ वंशोत्पन्न, मुख्य २ राजे शाल्व, सौभपति, और पृथिवी के स्वामी महाकूर्म को आमन्त्रित किया था ॥७॥

१०३२ सब राजाओं ने राजा सौभपति के वाक्य को सुन और महाबलवान् जरासन्ध को देखकर प्रतिज्ञा की कि हम लोग सब प्रकार आप को साथ देने को कटिबद्ध हैं आप यथोचित करें ॥३२॥

१०३४ शृणु भूप कथां दिव्यां, श्रवण नृ पापनाशिनीम्॥
कथां सुमधुरामिमां, शिवमाहात्म्य युताम् ।
स्क. पु. । कौशिक खं. १० । श्लो. ३८।४०॥

१०३५ ब्रह्मोवाच- शृणुवत्स ! मरीचे ! त्वं. पुराणं कूर्मसञ्ज्ञकम्
लक्ष्मीकल्पा नुचरितं, यत्र कूर्मवपुर्हरि ॥१॥

१०३६ नानाकथाप्रसङ्गेन, नृणां सद्गतिदायकः ।
तत्र पूर्वविभागे तु, पुराणोपक्रमः पुरा ॥४॥
लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः कूर्मर्षिगणसङ्कथा ॥

(दशावतारों के नाम)

१ २ ३ ४ ५
१०३७ अत्रि भृगुं वसिष्ठश्च, ब्रह्मा कश्यप एवच ।
६ ६ ८ ९ १०
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च, नारसिंहोऽथवामनः॥६॥
मत्स्य पु. । अ. २८५ । श्लो ६ ॥

१०३८ कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं, वामनञ्च जगत्पतेः ।
क्षीरोदमथनंतद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥२५॥
(भागव. । स्कं. १२ । श्लो. २५)

१०३९ यदुक्तं देवदेवेन, विष्णुना कूर्मरूपिणा ।
पृष्ठेन मुनिभिः सर्वं, शक्रेणामृतमन्मथने ॥
॥ कूर्म पु. । उत्तरविभा० । अ. ११ ॥

१०३३ से १०३६ पर्यन्त के श्लोकों का अर्थ इससे पूर्व लिखा जा चुका अतएव यहां नहीं लिखा गया ॥ १०३३-१०३६

१०४० श्रुत्वा नारायणो वाक्य-मृषीणां कूर्मरूपधृक् ।
प्राह गम्भीरया वाचा, भूतानां प्रभवोऽव्ययः ॥४२॥
कूर्म पु. । अ. ४ । श्लो ४२ ॥

(श्रीकृष्णजी के (९) नव अंश)

१०४१ मानुषे कूर्मब्रह्माण्डो, विष्णुना परिकीर्तितः ।
कश्यपे प्रथमप्रोक्तो, द्वितीये वैनतेयेषु च ॥
नरनारायणौकूर्म, इन्द्रद्युम्नो विभीषणः ।
हनुमान् वालिसुग्रीवौ, पौलस्त्यः कूर्मिरावणः ॥

(गङ्गाधरकाव्ये)

१०४२ भूमिधारी महाकूर्मो-वराहः पृथिवीपतिः ।
वैकुण्ठः पीतवासस्च, चक्रपाणिर्गदाधरः ॥

१०३७ अत्रिभृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा और कश्यप ये सब मन्त्र द्रष्टा ऋषि हुवे और मत्स्य कूर्म, वराह, नारसिंह वामन ये सब अवतार कहाते हैं ॥३॥

कूर्म, धन्वन्तरि, मत्स्य वामन ये समुद्र मथन समय देवताओं के अमृत निकालने में सहायक थे ॥२५॥

देवों के देव कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु ने अमृत निकालने के समय इन्द्र के पूछने पर मुनियों सामने सब कुछ कहा ॥

प्राणियों के उत्पादक, अव्यय कूर्म रूपधारी नारायण ऋषियों के वाक्य को सुन अपनी गम्भीर वाणी से बोले ॥७२५॥ १०३६-१०४०

१०४१ भगवान् विष्णुका कथन है कि इस मनुष्य देह में कूर्म अर्थात् शिर ब्रह्माण्ड है, अण्ड का अर्थ गोल है गोलाकार सृष्टि ब्रह्माण्ड कहाती है यह ब्रह्माण्ड प्रथम कश्यप के शरिर में पुनः विनतापुत्र गरुड़ के शरीर में जानना चाहिये अर्थात् कश्यप की उत्पत्ति प्रथम हुवी । गङ्गाधर काव्य में कूर्मि शब्द का अधिक महत्व-

॥ पद्मपु. क्रिया खं. अ. १७ श्लो. १०७ ॥

१०४३ महेश-शेष-विघ्नेशाः कूर्मो धर्मोऽहमेव च ।

(कूर्मरूपधारी विष्णु, कूर्मसृष्टिकर्ता, कूर्मोहो कश्यप)

१०४४ क्षीराब्धेर्मथ्यमानस्य, पर्वतोऽहैरसातलम् ।

गतः स तत्क्षणादेव, कूर्मो भूत्वा रमापतिः ॥१॥

१०४५ सुराणामुदधिं विमथ्नतां, दधार पृष्ठेन गिरिं समन्दरम्॥

परमदनादरैर्धार्यं, हरस्य कूर्मो वहदण्ड योढा ॥२॥

१०४२ जैसे-- नर नारायण, कूर्म इन्द्रद्युम्न, विभीषण, और पुलस्त्य का पौत्र (नाती) कूर्मरावण, ये कूर्म हैं ॥ (व्याख्या) यहां रावणादि के साथ कूर्मशब्द विशेषणरूप

१०४२ से आया है ॥१०२१॥ भूमिको धारण करने वाला महाकूर्म है अर्थात कुर्म सञ्ज्ञक ईश्वर की शक्ति को धारण करता हुआ यह भूगोल आकाश में स्थित है ॥ पुराणमत है कि महाकूर्म (कच्छप) पर भूमि है और पृथिवीपति वराह है एवम् वैकुण्ठ वासी भगवान् विष्णुजी हैं और गदाधारी तथा चक्र है हाथ में जिनके ऐसे भगवान् कृष्णजी थे ॥ ॥१०२२॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, गणेश, कूर्म, धर्म, मैं, दूसरे सब, और कार्तिकेय ये सब श्रीकृष्णजीके अंश हैं ॥१०४३॥

१०४४ समुद्र मन्थन जब समय मन्दराचल पर्वत रसातल को जाने लगा तत्क्षणही भगवान् विष्णुने कूर्मसदृशरूप धारण कर उसको रसातल जानेसे रोका था॥१॥

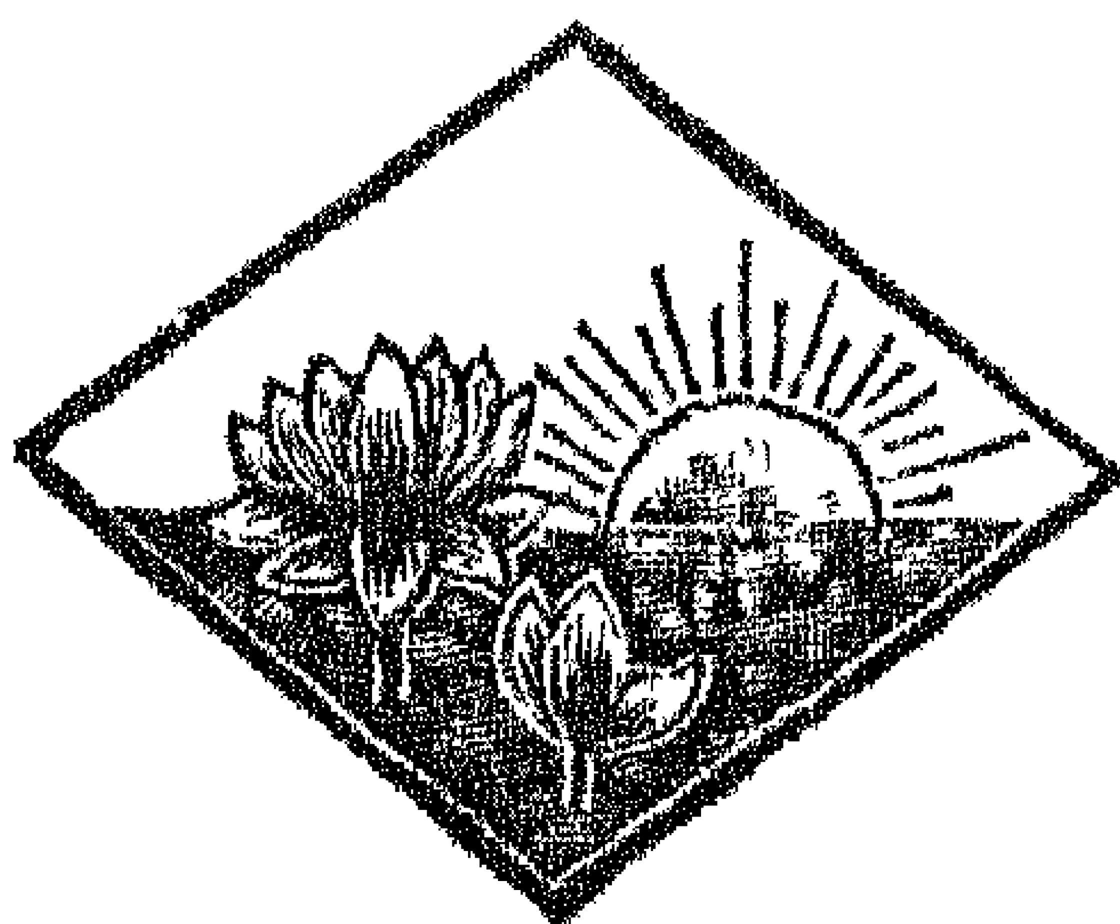
१०४५ इस प्रकार देवता और दैत्य दोनोंने समुद्र का मन्थन करते हुवे अपनी पीठपर मन्दर को धारण किया था महादेव के वरदान से विष्णु के अतिरिक्त अन्यव को ई पर्वत को नहीं धारण कर सकता था किन्तु विष्णु भगवान् ही उस पर्वत थामनेमें समर्थ थे ॥

१०४६ रुद्रप्रसादात् विष्णोरन्न, जिष्णोस्तैवर्तुसम्भवः ।
मन्थानधारणार्थायं, हरेः कूर्मत्वमेवन्न ॥ लिङ्गपु. ।
अ. २ । श्लो. ४१

१०४७ स कूर्म सृष्टोजगतः प्रजापतिः, सृष्ट्वा सदा पाति सकूर्म संज्ञकः । ऋषीन् सदा सर्जति सैव कश्यपः कूर्मस्त्वदीयो भवतीह काश्यपी ॥ लघुना. उपपु. उ. । अ. ११ ॥

१०४६ लिङ्ग पुराण कहता है कि महादेव के प्रसाद से विजयशील विष्णुही मन्थान (मथान) रूप पर्वत को धारण कर सकते थे दूसरा नही, इस काम में विष्णुको कूर्म समान बनना पड़ा था ॥

१०४७ वह प्रजापालक कूर्म ईश्वर जगत को रचके सदैव उसका रक्षक होता है वह कश्यप कूर्म ऋषि महर्षियों का जन्मदाता है जो काश्यपी प्रजा कहाजाता है वह कश्यप कूर्म है ॥ (व्याख्या) लघुनारद उप पु. का यह लेख शतपथ काण्ड ७ सात अध्याय ५ के आधार पर है वहां कूर्म को ईश्वर के अर्थ में कश्यप का पर्याय वाचक कहा गया है॥



(सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वंशवृक्ष)

राजपूत इतिहास पृष्ठ ३५ में निम्न लिखित वंश वृक्ष लिखा हुआ पाठकों की सुविधा के लिये यहां उद्धृत किया गया है।

(१०२८)……………… (ब्रह्मा)

स्वयम्भू स्वारोचिष	औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत,
१— उत्तानपाद (१)	१— नियव्रत
२— ध्रुव	२— अग्नि ध्रुव
३— वत्सग्र	३— नाभि
४— पुष्प पर्ण	४— ऋषभ देव
५— वयुना	५— भारत
६— सरवताजस	६— ब्रह्म सेन

१— जिन से ब्रह्मावर्त के राजा हुए।
२— राजा अन्तर्वेद का
३— जिनसे भरत खण्ड के राजा हुए

(सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वंशानुक्रम)

(सूर्यवंश)	(चन्द्र वंश)
१— मरीचि	१— अत्रि
२— कश्यप कूर्म (*)	२— समुद्र
३— विवस्वान् (सूर्य)	३— चन्द्र या सोम (†)
३— वैवस्वत मनु (सूर्य)	४— बृहस्पति
	५— बुध (८)

(†) जिन से चन्द्रवंश चला
(८) मनु की कन्या इला इनको ब्याही थी

(*) "कश्यपो वै कूर्मः" ॥ शतपथ, काण्ड ७ अ. ५ प्र ४ ॥ के प्रमाण से कश्यप और कूर्म साधारण अर्थ में एकार्थक हैं ॥

(सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वंशवृक्ष)

चक्षुषा	उनको उर्वशी ने पुरुरवासुना
उल्मुका	जैनाल्पुन्नि
अङ्गा	गुरुमंशावी
वेना धर्म राजा	पतिला
पृथु	भुवा
विजीतस्वा या अन्तध्यान	उद्मोशा
हर्षवर्धन	परक्लागा
बर्हिशाना या प्राचीना बर्हि	विमु (प्रथु)
प्रचेता और ९ भाई	प्रभू सेन
दक्ष प्रजापति	नकट
	गया

(सूर्यवंश का वंशवृक्ष)

इक्ष्वाकु	नृग	नेदिष्ठ	धृष्ट	करूष	नरिष्यन्त	पृषध्र	नाभाग	हवि (कविः)
(१)	(२)	(३)	४	५	६	७	८	९
		नाभाग						

नरिष्यन्त
|
चित्र सेन
|
ऋत्त
|
भीढ्वान्
|
पूर्ण इन्द्र
|
वीति होत्र
|
सत्यश्रवा
|
देवदत्त
|
अग्नि वेश्य (५)

(१) इनके विकुक्षि व निमि आदि १०० पुत्र हुवे

(२) नृग की चौथी पीढ़ी में कानीन ने अग्निहोत्र किया और इस वंश के धर्मगुरु हुवे

(३) नेदिष्ठ - नाभाग, क्षत्रिय वर्तमान में लिखा है कि एक वैश्य की कन्या से विवाह किया इससे उनके वंशज 'वैस' कहाये, इनकी पुत्री के तीन पुत्र हुवे, ।

नीनों—कुशस्थली, द्वारका, आनर्त देश में बसाई। इन्हीं के वंशमें प्रमति और उनके बेटे सुमति हुवे. इनके वंशज मद्यालय को प्राप्त हुवे।

(५) (करूष) इसके वंश वालों ने काश्यप के उत्तर सूर्यवंश की शाखा स्थापित की

(६) (नरिष्यन्त) इनके वंशज शक थे।

(७) पृषध्रने विदेश में राज्य स्थापित किया।

(८) नाभाग व्यापार में लग गये।

(९) कवि तपस्वी हो गये और वनवास किया।

(चन्द्रवंश का वंश वृक्ष)

इला (१)

(१०२९)

पुरूरवा

आयु — अमावसु (विजय) (२)

सत्यायु — श्रुतायु — रथ — जय

(१) इला कन्या थी और वह चन्द्रवंशी बुध को व्याही ॥१॥

(२) अमावसु के वंश में एक कुश हुआ जिसके नाम इनके वंश में कौशिक आदि ६ पुत्र हुए। क्षत्रियों के नाम से विख्यात हैं

नहुष — क्षत्र वृद्ध

ययाति — सुहोत्र

यदु — तुर्वसु — पुरू — द्रुह्यु — अनु

("क्षत्रिय वर्तमान" से उद्धृत सूर्य और चन्द्रवंश)

"क्षत्रिय वर्तमान" पहिला अध्याय पृ. ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ ॥

श्रीनारायण
|
ब्रह्मा

(सूर्यवंश) (चन्द्रवंश)

(मरीचि) (अत्रि)
|
कश्यप कूर्म 'कश्यपो वै कूर्मः" श. प. कां. ७ । अ. ५. ब्र. ४
|
विवस्वान्
|
वैवस्वत मनु
|
१ इक्ष्वाकु २ नृग ३ शर्याति ४ धृष्ट ५ करूष ६ नरिष्यन्त ७ पृषध्र ८ नाभाग ९ (कीट)

१० इल विकुक्षि आदि १०० पुत्र
|
परञ्जय वा (काकुत्स्थ)
|
अनुपृथु
|
विश्वगन्धि — इसकी वंशावली से सूर्यवंश प्रख्यात हुआ है
|
आर्द्र
|
युवनाश्व
|
श्रावस्त
|
बृहदश्व
|
धुन्धुमार
|
दृढाश्व

(क्षत्रिय वर्तमान से उद्धृत)

(सूर्य वंश)

हर्यश्व
|
निकुम्भ
|
बर्हणाश्व
|
सेनजित्
|
युवनाश्व
|
मान्धाता
|
पुरुकुत्स
|
अनरण्य
|
त्रिधन्वा
|
त्रय्यारुण
|

मरुक
|
वृक
|
बाहुक (असित)
|
सगर
|
केश
|
असमञ्जस
|
अंशुमान्
|
दिलीप
|
भगीरथ
|
श्रुत सेन–
(निमिवंशदेखो)

(सूर्य वंश)

सत्यव्रत
|
त्रिशङ्कु
|
हरिश्चन्द्र
|
रोहित रोहित-
नगर बसाया
|
हरित
|
चम्प– चम्पापुर
के बसाने वाले
|
विजय

नाभाग
|
अम्बरीष
|
सिन्धुद्वीप
|
अयुतायु
|
ऋतुपर्ण
|
नल
|
सर्वकाम
|
अरुदेव
|
सुनक्षत्र

(क्षत्रिय वर्तमान से उद्धृत)

(सूर्यवंश)

पुष्कर
|
अन्तरिक्ष
|
सुतपा
|
अमित्रजित्
|
बृहद्राज
|
बृहत्केतु

सुदास
|
अश्मक
|
मूलक
|
सत्यव्रत (दशरथ)
|
ऐड़ विड़
|
विश्वसह

(सूर्यवंश)

खट्वाङ्ग
|
दीर्घबाहु
|
दिलीप
|
रघु
|
अज
|
दशरथ

रामचन्द्र		लक्ष्मण		भरत		शत्रुघ्न
लव	कुश	अङ्गद	चित्रकेतु	तक्षक	पुष्कल	सुबाहु
	अतिथि					
	निषध					

महावानस	सन्धि	विधृति	वत्स वृद्ध
पुण्डरीक	अमर्षण	हिरण्य नाम	प्रतिव्योम
मेघ धन	अवस्वान्	पुष्य	भानु
दल	विश्वसाह्व	सुदर्शन	सहदेव
शल	प्रसेन जित्	अग्नि वर्ण	बृहदश्व
वज्रनाभ	तक्षक	शीघ्र	भानुमान्
खोजंस (शङ्खण)	बृहद्बल	मरु	प्रतिकाश्व
युषिता	उरु क्रिय	प्रसुत	सुप्रतीक

(सुमित्र के पश्चात मेवाड़ के राजाओं का वंश)

		सुतपा	सागल
मरुदेव	रणंजय	अमित्र जित्	असमञ्जित्
सुनक्षत्र	सञ्जय	बृहद्राज	रामक
पुष्कर	साक्य	बृहत्केतु	सुरथ
अन्तरिक्ष	शुद्धोद	कीर्तिजय	सुमित्र

इस के (अर्थात् सुमित्र के) बाद मेवाड के राजाओं का वंश आरम्भ हुआ

महारथी
|
अतिरथी
|
अचलसेन
|
कनकसेन
|
मया मधुनसेन
|

पद्मादित्य
|
शिवादित्य
|
हरादित्य
|
सुयादित्य
|
सोमादित्य
|

सुदन्त
|
अजयसेन
|
सेनपाल
|
खेमराज

पाण्डु शाखा समाप्त
(शेष नागवंश)
विसव

शिलादित्य
|
दूनशाल
|
सुरीन
|
शीय
|
अहगं माल
वेदजित

(इति सूर्य्यचन्द्रवंशयो वंशानुक्रमविषयः)

इति श्रीकूर्मशब्दार्थसङ्ग्रहे
तत्प्रमाणभागः समाप्तः



(वर्णव्यवस्था)

१०४८ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् । दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

(य. । अ. २२ । मं. २२)

१०४९ तपोबीजप्रभावैस्तु, ते गच्छन्ति युगे युगे ।
उत्कर्षञ्चापकर्षञ्च, मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ इतिमनुः॥

१०४८ यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में उपदेश है कि हे ब्रह्मन् ! राष्ट्र में वेदज्ञ और तपस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों, ऐसे ही क्षत्रिय उत्पन्न हों जो शूरवीर बाण विद्या में निपुण और लक्ष्य अर्थात् निशाना मारना अच्छा जानता हो, और महारथी हो......जो एकाकी सहस्र को जीतने में समर्थ हो वह महारथी कहाता है । "यन्मध्यं तद्वैश्यः ॥ जो मध्यम गुण वाला हो वह वैश्य कहाता है । रूपकालङ्कार से मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय हैं जङ्घा वैश्य है और पैर शूद्र स्थानी हैं । यह व्यष्टि रूपसे कथन है एवं समष्टि रूपसे संसार में मनुष्यों के गुण कर्म स्वभावानुसार वेदों में चार विभाग कहे हैं । इसी का नाम वर्णव्यवस्था है और यह ईश्वर का अनादि प्रबन्ध है ॥

१०५९ "तप और बीज के प्रभाव से मनुष्य युग युग में "इह जन्मतः" इसी जन्म में उत्कर्ष और अपकर्ष को प्राप्त होता आया है ॥

(व्याख्या) ऋष्यशृङ्ग और विश्वामित्र का उदाहरण देते हुए मनु के टीकाकारोंने इस श्लोक का यह अर्थ किया है कि विश्वामित्र तो तप से उत्कर्षता को प्राप्त हुवे और ऋष्यशृङ्ग बीज के प्रभाव से अपकर्षता को प्राप्त हुवे थे परन्तु मनुका अभिप्राय बीज और तप दोनो के ठीक होनेपर है अर्थात् बीज भी सड़ा घुला दुष्ट न हो किन्तु शुद्ध हो और तपआचरण भी शुद्ध हो अपकर्षता न होकर उत्कर्षताही रहती है । मनुष्य का बीज (वीर्य) निर्दोषहो और वह

सदाचार्यादि अर्थात् तपादि भी हो तो वह उत्कर्षता (श्रेष्ठत्व) ही रहेगी। मनुजी कहते हैं कि प्रत्येक युग में इसी वर्तमान जन्म में कोई मनुष्य उत्कर्षता को प्राप्त होता और कोई अपकर्षता (नीचता) को। इसे अर्थ से मनुका अभिप्राय जन्म और गुण कर्म स्वभाव से वर्ण मानने का है ब्राह्मण के घर में जन्म हुआ परन्तु उसमें ब्राह्मणत्व की योग्यता नहीं है तो वह नामधारी ब्राह्मण होगा पूर्ण ब्राह्मण नहीं इसकी पुष्टि में मनु का यह प्रमाण है कि-

यथा काष्ठमयो हस्ती, यथा चर्ममयोमृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥

अर्थात् जैसे काठ का हाथी और चमड़े का मृग होता है वैसे ही बिना पढ़ाहुआ ब्राह्मणादि होता है॥ इससे सिद्ध है कि केवल बीज से मनुजी नामधारी ब्राह्मण मानते हैं स्पष्ट मनुजी लिखते हैं कि "त्रयस्ते नाम बिभ्रति" ते, त्रयः नाम, बिभ्रति॥ अर्थात् वे तीनों ब्राह्मणादिवर्ण नामधारी कहाते हैं क्यों कि वे वेद विद्या से रहित हैं।"

इस श्लोक से मनुजी का यह भी आशय निकलता है कि बीज निर्दोष शुद्ध हो और तप अर्थात् सदाचार भी शुद्ध हो दोनों के शुद्ध होने से उत्कर्षता होती है—ब्राह्मणादि वर्ण भी बीज और तप दोनों से होते हैं। सत्यार्थप्रकाश का दशम समुल्लास बीज को उत्कर्ष करने की शिक्षा देता है कि मनुष्य का आहार विहार निर्दोष शुद्ध पवित्र होना चाहिये जिससे रजस् और बीज (वीर्य शुद्ध) हो, मनुजीने अपनी स्मृति में नामधारी ब्राह्मणादि वर्णों के लिये एक कोड़ा रक्खा है कि-

स्वाध्यायेन जपैर्होमै, स्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

कोड़ा है कि स्वाध्यायादि तपसे ब्राह्मण का शरीर बनाया जाता है केवल बीज से नहीं॥ परन्तु यह ब्राह्मण और यह क्षत्रिय है इस का उपचार से ही होगा॥

(वर्णव्यवस्था)

१०५० चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः ॥ गीता । अ.

(ब्राह्मणस्य स्वरूपं लक्षणञ्च)

१०५१ अध्यापनमध्ययनं, यजनं याजनन्तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव, ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ म. अ. १० ।७॥

॥ क्षत्रियस्य स्वरूपं लक्षणञ्च ॥

१०५२ प्रजानां रक्षणं दान-मिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च, क्षत्रियस्य समासतः ॥ म. अ. १ श्लो. ८९

(वैश्यस्य स्वरूपं लक्षणञ्च)

१०५३ पशूनां रक्षणं दान, मिज्याध्ययनमेव च ।
वाणिक्पथं कुसीदञ्च, वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ म. अ. १ श्लो ९०

(शूद्रस्य स्वरूपं लक्षणञ्च)

१०५४ एकमेवहि शूद्रस्य, प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां, शुश्रूषामनसूयया ॥ म. अ. १ । श्लो. ९१ ।

१०५० भगवान् कृष्णजी गीता में कहते है कि मैंने ब्राह्मणादि चारोंवर्ण गुण और कर्म के विभाग से रचे हैं ॥

१०५१ पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना दान लेना देना, (प्रतिग्रहः प्रत्यवरः) परन्तु मनुजी का वचन है कि लेना निकृष्ट है किन्तु पढ़ाके जीविका करनी उत्तम है ये छः ब्राह्मणों के लक्षण और स्वरूप हैं ॥१॥

१०५२ प्रजा की रक्षा, दान देना, नित्य नैमित्तिक और बड़े यज्ञों का करना स्वाध्याय स्त्री सेवनादि में अधिक न फसना, ये संक्षेप से क्षत्रिय के लक्षण हैं ॥

१०५३ पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, स्वाध्याय करना, सब देशों की

(वर्णव्यवस्था)

१०५५ नेहेतार्थान् प्रसङ्गेन, न विरुद्धेन कर्मणा
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः॥ म. । अ. ५
। श्लो १५ ॥

१०५६ दुराचारोहि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं, व्याधितोऽल्पायुरेव च॥ म. अ. ४
। श्लो १५७ ।
पृषध्रस्तु—गुरुगोवधाच्छूद्रत्वमगमत ॥ विष्णु पु.
४ । १ । १४ ॥

१०५७ पृषध्रो हिंसयित्वा तु, गुरोर्गां जनमेजय !
शापाच्छूद्रत्वमापन्नः ॥ श्लो. ३५

१०५८ करूषात् कारूषा महाबला बभूवुः॥वि. पु. ।४।१।१५

भाषा जानकर व्यवहार करना, से अधिक सूद न लेना, खेती करना यह वैश्य वर्ण का स्वरूप और लक्षण है ।

१०५४ जिन को पढ़ने पढ़ाने से भी विद्या न आवे वह शूद्र कहाता है- परमात्माने शूद्रवर्ण (जो कि द्विजों का सेवक होने से तदन्तर्गत है) के लिये एक ही कर्म का उपदेश किया है कि प्रेम के साथ तीनों वर्णों की सेवा करनी म. ॥४॥

१०५५ गृहस्थ कभी किसी दुष्ट प्रसङ्ग से धन सञ्चय न करे और न पदार्थों के रहते हुवे चाहे जितना भी कष्ट पड़े परन्तु अधर्म से भी धनोपार्जन न करे ॥१५॥

१०५६ लोक में दुराचारी पुरुष निन्दापाता है सदैव दुःखभागी और रोगों में से अल्पायु होता है

१०५७ पूर्व ब्राह्मणादि वर्णों का लक्षण और स्वरूप कहागया है- वर्ण तप और बीज के प्रभाव पर है- गुरुकी गौके वध से पृषध्र शूद्र हो गया यह विष्णु पुराण और हरिवंश पु. भी यही कहता है। पृषध्र क्षत्रिय था नीच कर्म से पतितहुआ ।

१०५८ करूष से महाबली क्षत्रिय कारूष उत्पन्न हुआ ॥

(वर्णव्यवस्था)

१०५९ करूपान्मानवादासन्, कारूपाः क्षत्रजातयः ।
उत्तरापथगोप्तारो, ब्रह्मण्या-धर्मवत्सलाः ॥ भारत
।९।२।१५

१०६० नाभागो नेदिष्टपुत्रस्तु, वैश्यतामगमत ॥ वि. पु.
४।४।१६ ॥

१०६१ मरुत्तस्य यथा यज्ञ, स्तथा कस्याऽभवत् भुवि ।
सर्वंहिरण्मयं यस्य, यज्ञस्त्वातिशोभनम् ॥१८॥

(वर्ण व्यवस्था)

१०६२ तस्यावीक्षित्सुतो यस्य, मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तोऽयाजयद् यं वै, महायोग्यंगिरः सुतः ॥२६॥

१०५९ मनु पुत्र करुष से कारुष नाम के क्षत्रिय उत्पन्न हुए जो उत्तरीय देशों के रक्षक धार्मिक और ब्रह्मण्य हुवे ॥९।२।१५॥ भागवते

१०६० नेदिष्ट पुत्र नाभाग क्षत्रिय से वैश्य हुआ। यद्यपि नाभाग वैश्य वृत्ति करने लगे परन्तु इनके सन्तान पुनः राजा भी हुवे हैं अर्थात् वैश्य से पुनः क्षत्रिय हुवे इनका वंश इस प्रकार विष्णु पुराण में कहा है। नाभाग, भलन्द, वत्सप्रि, प्रांशुख वित्त, चक्षुषविंश, विविंश, खनीनेत्र, अतिभूति, करंधम, अविक्षि, मरुत्त, ये उत्तरोत्तर और पूर्व २ पिता जानना ।

१०६१ मरुत्त के विषय में विष्णु पुराण कहता है । यस्यैमावद्यापिश्लोकौ गीयेते ॥ आज भी मरुत चक्रवर्ती राजा के सम्बध में ये दो श्लोक गाये जाते हैं । मरुत का जैसा यज्ञहुआ पृथिवी पर वैसा यज्ञ किसका हुआ जिसके यज्ञ में एक ही वस्तु हिरण्यमय थी सोमरस से इन्द्र अत्यानन्दित हुवे और और दक्षिणाओं में ब्राह्मणदेव सदस्य और मरुद्गण उस यज्ञ में अन्न परोसने वाले थे। इत्यादि। मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुवे। इनके एक पुत्र नरिष्यन्त हुवा । इस वैश्यवंश में अनेक ऋषि भी हुवे हैं । श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध द्वितीयाध्याय में भी इसी प्रकार का वर्णन है यथा—

१०६३ मरुत्तस्य यथायज्ञो, न तथान्यस्य कश्चन ।
सर्वं हिरण्मयन्त्वासीद्-यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥
"नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ, वैश्यौ ब्राह्मणतां जातौ ॥
(हरिवंश पु. । अ. ११)

१०६४ धृष्टस्यापि धार्ष्टकं क्षत्रं समभवत् ॥ विष्णु पु.।४।२।२॥

१०६५ ततोऽग्निवेश्यो भगवा-नग्निः स्वयमभूत् सुतः ।
ततो ब्रह्मकुलं जातमग्नि वेश्यायनं नृप ! ॥२२॥

(क्षात्रोपेत ब्राह्मणप्रकरण)

६ रथीतर

१०६६ एते क्षत्रप्रसूता वै, पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः।
रथीतरस्य प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥२॥

१०६७ रथीतरस्याऽप्रजस्य, भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ।
अङ्गिरा जनयामास, ब्रह्मवर्चास्विनः सुतान् ॥३॥
(२३ । ९ । ९६)

१०६२ जिस का मरुत्त चक्रवर्ती हुआ उसका पुत्र अवीक्षित था, जिस महायोग्य को संवर्त पुत्रने यज्ञ कराया था ॥२६॥२७॥ का अर्थ पूर्व आ चुका है ॥२७॥ हरिवंश अध्याय ११वें में कहा है कि नाभागारिष्ट के दो पुत्र

१०६३ क्षत्रिय से ब्राह्मण होगये ॥ विष्णु पुराण कहता है कि धृष्ट से धार्ष्ट क्षत्रिय हुए क्षत्रिय से ब्राह्मण हुवे ॥२॥

१०६४ अग्निवेश्य के विषय में भागवत कहता है कि देवदत्त के पुत्र

१०६५ अग्निवेश्य हुवे, कानीन जातु कर्ण-ऋषि नाम से भी प्रसिद्ध है इन के वंश में अग्नि वेश्य वंश वाला ब्राह्मणवंश उत्पन्न हुआ इत्यादि ॥

विष्णु पु. चतुर्थ अंश अध्याय (२) में लिखा है कि नभग नाभाग अम्बरीष विरूप, पृषदश्व और रथीतर उत्तरोत्तर पुत्र हुवे, ये सब यद्यपि क्षत्रिय थे परन्तु रथीतर गोत्र के ब्राह्मण होगये ॥२॥ इस विषय में भागवत कहता है कि

(हारीत)

१०६८ अम्बरीषस्य मान्धातुस्तनयस्य पुत्रोऽभूत ।
तस्माद्धरितो यतोऽङ्गिरसो हारीताः ॥ वि.पु.।४।३।५०॥

१०६९ हारीतो युवनाश्वस्य, हारीता यत आत्मजाः ।

१०७० एते ह्याङ्गिरः पक्षे, क्षात्रोपेता द्विजातयः॥ विष्णु. पु.
हरितो युवनाश्वस्य, हारीता भूरयः स्मृताः॥ वायु.पु.॥

(आरम्भ में अयोनिज शरीरों के विषय में प्रमाण)

१०७१ तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च ॥
वै. अ. ४ आ. २ सू. ६

१०७२ अनियतादिग्देशपूर्वकत्वात ॥ वै.अ. ४ आ. २ सू. ७

१०७३ धर्मविशेषाच्च ॥ वै. अ ४ आ. २ सू. ८ ॥

१०७४ समाख्याभावाच्च ॥ वै. अ. ४ आ. २ सू. ९ ॥

उस रथीतर के सन्तानहीन होनेपर पुत्रोत्पत्ति के लिये प्रार्थित अङ्गिराने रथीतर की स्त्री में अनेक वर्चस्वी पुत्र उत्पन्न किये, वे आङ्गिरस गोत्र वाले ब्राह्मण हुवे। इत्यादि कथा देखिये ॥

१०६८-१०७० हारीत– मान्धाता का पुत्र अम्बरीष, उसका पुत्र युवनाश्व, इसके वंश में हरित, हरित से जो वंश चले वे अङ्गिरस और हारीत गोत्रवाले ब्राह्मण हुवे ॥
हारीत का बनाया ग्रन्थ वैद्यक में 'हारीत संहिता' के नाम से प्रसिद्ध है
लिंग पु. कहता है कि युवनाश्व का पुत्र हरित-हारीत पुत्र हुवे।
वे अंङ्गिरा के पक्ष में हुए। अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मण बने ॥
वयु पु० कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन करता है। यथा-युवनाश्व का पुत्र हरित हुआ इसके गोत्र में अनेक हारीत कहाने लगे, वे अंगिरा से हुए और पीछे क्षत्रिय से ब्राह्मण बने ॥

१०७५ सञ्ज्ञाया आदित्वात ॥ वै. अ. ४ आ. २ सू. १०
१०७६ सन्त्ययोनिजाः ॥ वै. अ. ४ आ. २ सू. ११॥

(राजा वीतहव्य की उत्पत्ति)

१०७७ मनोर्महात्मनस्तात ! प्रजा धर्मेण शासतः ।
बभूव पुत्रो धर्मात्मा, शर्यातिरिति विश्रुतः ॥५६॥
१०७८ तस्यान्वये द्वौ राजन्, राजानौ सम्बभूवतुः ।
हैहयस्तालजङ्घश्च, वत्सस्यजयतांवद ॥५॥
१०७९ हैहयस्य नु राजेन्द्र! दशसु स्त्रीषु भारत ॥७॥
शतम्बभूव पुत्राणां, शूद्राणामनिवर्तिनाम् ॥८॥
१०८० तुल्यप्रभावानां बलिनां युद्धशालिनाम् ।
१०८१ धनुर्वेदे च वेदेच, सर्वत्रैव कृतश्रमाः ॥९॥
महाभा० अनुशा० प० अ० ३० श्लो ७।८।९॥

१०७१ योनिज और अयोनिज भेद से शरीर दो प्रकार के होते हैं ॥६॥
१०७२ पूर्वादि दिशा, स्थान, और समय, के नियत न होने से अयोनिज शरीर है ।
१०७३ धर्म विशेष से भी अयोनिज शरीर उत्पन्न होते हैं
१०७४ अग्नि, वायु, रवि, भृगु, वसिष्ठ, गोतम, भरद्वाज, अङ्गिरा, जमदग्नि,
कितने ही ऋषियों के नाम सदासे प्रसिद्ध हैं ॥
१०७५ परमात्मा के सङ्कल्प से प्रकृति से मनुष्य पशु पक्ष्यादि सब प्राणि देह
परमात्मा के सङ्कल्प से होजाते हैं ॥४॥
१०७६ उक्त हेतुओं से अयोनिज शरीर हैं ॥५॥ * टि०
१०७७ भीष्मजी युधिष्ठिर से बोले हे तात ! प्रजाका धर्म से शासन करते हुवे महात्मा
मनु के धर्मात्मा शर्यातिनामक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ था
१०७८ वत्सराजशर्याति के वंशमें हैहय और तालजङ्घ ये दो राजा हुवे ॥
१०७९ हे भरत ! राजा हैहय की दश १० स्त्रियों में से महायुद्ध शाली
१०८० सौ पुत्र उत्पन्न हुवे थे जो कि धनुवद और वेद में परिश्रम किये
१०८१ सब में बड़ा पुत्र वीत हव्यथा ॥९॥

* अमैथुनी सृष्टि के अनन्तर मैथुनी सृष्टि का आरम्भ होता है इस कूर्म के स्मरणार्थ तद्विषयक कुछ प्रमाण लिखे गये हैं एतद्विषयक विस्तृत लेख पूर्व आ चुका है

(राजा वीतहव्य के विषय में युधिष्ठिर भीष्म का प्रश्नोत्तर)

(युधिष्ठिर उवाच)

१०८२ श्रुतन्ते महदाख्यान, मेतत् कुरु कुलोद्भव ।
सुदुष्प्रापं यद् ब्रवीषि, ब्राह्मण्यं वदतांवर ॥१॥
१०८३ विश्वामित्रेण च पुरा, ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत ।
श्रूयते वदते तच्च, दुष्प्रापमिति सत्तम ॥२॥
१०८४ वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः
स केन कर्मणा प्राप्तो, ब्राह्मण्यं राजसत्तम ! ॥३॥

(भीष्म उवाच)

१०८५ शृणु राजन् ! यथाराजा, वीतहव्यो महायशाः ।
राजार्षिर्दुर्लभं प्राप्तो, ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम्

वीतहव्यस्योपाख्यानम्

१०८६ जीतहव्यस्य नृपते, ब्राह्मण्यं श्रूयते किल ।
तद्वदेति पुनः पृष्टो, राजा प्राह पितामहः ॥१४३८॥

१०८२ भीष्मजी से युधिष्ठिर पूछते हैं कि आपका कथन है कि ब्राह्मणत्वदुष्प्राप है
१०८३ परन्तु विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुवे यह भी सुना है कि वीतहव्य भी ब्राह्मण हुए । हे पितामह !
१०८४ वीतहव्य की कथा सुनाइये किस तपस्या से ब्राह्मण हुवे ।

(भीष्म उवाच)

१०८५-८६ भीष्मजी कहते हैं कि सुनो जिस प्रकार वीतहव्य ब्राह्मण हुवे ॥४३८

(सूर्यवंशीय वीतहव्य के पुत्रों का चन्द्रवंशीय काशिराज हर्यश्वपर आक्रमण और मारा जाना)

१०८७ वीतहव्यसुतैः पूर्वं; हैययैर्बलवत्तरैः ॥
हर्यश्वो नाम संगरे, काशिराजो निपातितः ॥
१०८८ बलेन तस्य पुत्रोऽपि, पुनस्तैरेव संगरे ।
सुदेवः काशिनगरे, लब्धलक्ष्ये""निपातितः १४४०॥
१०८९ तत्सुतोपि दिवोदास, स्तैरेव युधिनिर्जितः ।
भरद्वाज! प्रसादात्स लेभे पुत्रं प्रतर्दनम् ॥१४४१॥
१०९० स वीतहव्यतनयान्, सर्वानभ्येत्य संगरे ।
जघान परमास्त्रज्ञो, भरद्वाजवरोर्जितः ॥१४४२॥
१०९१ हतेषु तेषु सर्वेषु, वीतहव्यः सुतेष्वथ ।
प्राद्रवं नगरं हित्वा, भृगोराश्रमप्युत ॥४४॥
१०९२ वीतहव्यो हतसुतः प्रनष्टबलवाहनः । प्रतर्दनेनानुसृतः
प्रययौ शरणं भृगुः १४४३॥

१०८७ भीष्मजी उत्तर देते हैं हे राजन् युधिष्ठिर ! प्रथम आक्रमण में बलवान् हैहय वंशीय वीतहव्य के पुत्रों ने काशिराज हर्यश्व को युद्ध में मार भगाया ॥२॥ द्वितीय आक्रमण में हर्यश्व के पुत्र सुदेव को भी भगादिया ॥३॥ एवम् तृतीय आक्रमण में सुदेव के पुत्र दिवोदास को भी युद्ध में जब विजयकर लिया ॥४॥ तब वह अपने कुल भरद्वाज के समीप जाकर युद्ध विषयक सब वृत्तान्त निवेदन किया जिसपर मुनि के प्रसाद से दिवोदासजी के प्रतर्दन नामका पुत्र उत्पन्न

(वीतहव्य का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना)

१०९३ भृगोराश्रममासाद्य, वीतहव्यनथो द्यातः ॥
प्रतर्दनो मुनिम्प्रासः, मुञ्चेनमिति दुर्मदः ॥११४४॥
१०९४ तच्छ्रुत्वा क्षत्रियो नेह, कश्चित सर्वे द्विजातयः ।
इत्युवाच भृगुर्वीत-स्ततोऽसत्यादकम्पयत ॥११४५॥
१०९५ क्षत्राभिधानात् प्रभ्रष्टं, शत्रुं ज्ञात्वा प्रतर्दने ।
याते भृगुर्वीतहव्यं, सत्यवाक् ब्राह्मणं व्यधात् ॥१४४६॥

हुआ ॥८॥ परमात्मज्ञ भरद्वाज से वर पाया हुआ वह प्रतर्दन वीतहव्य के सब पुत्रों को युद्ध में मार भगाया ॥७॥ प्रनष्ट है सेना और वाहन जिसके ऐसे हत-पुत्रों वाला वीतहव्य प्रतर्दन के पीछा करने पर भृगु शरण को जा पहुंचा ।४४॥ १०८७-१०९२

१०९३ वीतहव्य के मारने में उद्यत प्रतर्दन ने भृगुजी के पास जाकर कहा कि हे मुने! वीतहव्य को छोड़ो ॥४४॥ भृगु के असत्यवचन से वीतहव्य कांप उठे यह जो लिखा है वह विचारणीय है कि भृगुजीने सत्य कहा था वा असत्य जब वीत हव्यने शस्त्र(हथियार) रख दिया और छिपरहे तो क्षत्रियत्व कहां रहा भृगुजी की व्यवस्था शास्त्रोक्त गुण कर्म स्वभावानुसार थी अतः भृगुजी ने जो कुछ प्रतर्दन से कहा था उसका एक भी अक्षर असत्य न था ॥

प्रतर्दनने अपने शत्रु वीतहव्य को क्षात्रधर्म से गिराहुआ जान भृगुजी से आज्ञा ले, अपने स्थान को चले आये । प्रतर्दन के चले जाने पश्चात् सत्यवादी भृगुजीने वीतहव्य को ब्राह्मण वर्ण का अधिकार दिया तबसे वीतहव्य क्षत्रिय से ब्राह्मण बने ॥ १४४६ ॥ महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर जो भीष्मने दिया वह इसका प्रमाण है कि वर्ण का निर्णय आचरण पर ही हुआ करता था वीतहव्य क्षत्रिय थे परन्तु कर्तव्यच्युत होजाने से भृगुजीने उनको क्षत्रिय से ब्राह्मण बनायाथा ॥ १०९३-१०९५

(भरद्वाज के दृष्ट सूक्तों में वीतहव्य आङ्गिरस दृष्टसूक्त)

१०९६ अमितर्षौ भरद्वाजे, वीतहव्योऽभ्यगाद् ऋषिः।
आद्यानुवाका वसान, इममूषु वो अतिथिम् ॥२४॥
ऋग्वेदानुक्रमणी। आर्षानुक्रमणी
अ. ३ अष्टक ५

सोमाहुति ऋषिः

१०९७ मध्ये गृत्समदस्यागाद् ऋषिः सोमाहुतिस्तथा।
तत्रेदं कारणं प्राहुरग्निसूक्तैस्त्रिभिस्तुतः ॥५॥
ऋग्वेदानुक्रमणी। आर्षानुक. अ. ३ अष्टक ५ ॥

१०९६ अमित ऋषि भरद्वाज दृष्ट सूक्तों में वीतहव्य आङ्गिरस ऋषिदृष्ट सूक्त 'इममूषु' ऋ० ६। १५। आगया है इसके पूर्व आद्य अनुवाक समाप्त होता है ऋषि गृत्समद दृष्ट सूक्तों (ऋ० २। १-३ तथा ८। २६) के बीच में ऋषि सोमाहुति के दृष्ट सूक्त(४-७) है इसको विद्वान् लोग यह कारण बतलाते है कि 'त्वमग्ने द्युभिस्त्वम्' इत्यादि दो जगती वाले छन्द और एक त्रिष्टुप् छन्दवाले तीन सूक्तों से गृत्समदने अग्नि का स्तवन किया है और फिर 'वाजयन्निव' सूक्त गायत्री छन्द से अग्नि का स्तवन है और भार्गव सोमाहुति भार्गव सोमाहुति ने भी क्रमसे त्रिष्टुप् अनुष्टुप् और गायत्री छन्दों से अग्नि की स्तुति की है इसलिये सोमाहुति भार्गव के दृष्ट सूक्त (हुवेव) (४-६) इत्यादिगृत्समद दृष्ट सूक्तों के बीचमें परि पठित हैं, ऋ० २। १-३। आो० ५। ६। ७ पृ. ८० ॥ १०९६-१०९७

(भीष्म उवाच) (गृत्समद भी क्षत्रियसे ब्राह्मण हुवे)

१०९८ वीतहव्यो महाराजो, ब्रह्मवादित्वमेवच ।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ॥४८॥
महाभा. । अनुशा. प. । अ. ३० । ४८॥

१०९९ बार्हस्पत्यो भरद्वाजो वीतहव्य आङ्गिरसोवा ॥
ऋ. मण्ड. ६ सू. १५ मन्त्र १-१९ तक के ऋषि.

११०० अरुणो वैतहव्यः ॥ अथर्व. काण्ड ६ । पृ. १७४॥
अत्र ब्रूमो गृत्समदः क्षत्रियो ब्राह्मणोऽभवत् ।

११०१ इन्द्रप्रसादादस्याऽऽसन् वाचश्च हृदयङ्गमाः ॥३०॥
ऋग्वेदानु क्र. । अ. ५ । अष्टक ५ । ३०॥

१०९८ महाराज वीतहव्य ब्रह्मवादी थे, इन के पुत्र गृत्समद रूप में दूसरे इन्द्र के समान थे ॥४८॥ बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज और वीतहव्य आङ्गिरस ऋ. । मण्ड. ६ सू. १५ में मन्त्र १-१९ तक मन्त्र द्रष्टा ऋषि हुवे अरुण वीतहव्य का पुत्र था, यह गृत्समद का दूसरा नाम है अथवा गृत्समद के अतिरिक्त वीतहव्य का अन्य पुत्र था, विस्पष्ट नहीं है तब भी वैत हव्यः के लिखने से वीतहव्य का ही पुत्र है 'वीतहव्यस्यापत्यं पुमान् वैतहव्यः अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है ॥

माधव भट्ट लिखते हैं कि इस सम्बन्ध में हमारा यह समाधान है कि गृत्समद क्षत्रिय था वह ब्राह्मण हो गया था । इन्द्र की कृपा से उसे बहुत सी वाणियां भी प्राप्त हुईं ॥३०॥ १०९८ । ११०१ ॥

११०२ दैत्यों ने सूर्य वंशीय गृत्समद को इन्द्र समझकर पकड़ लिया था, महात्मा-गृत्समद की श्रुति ऋग्वेद में वर्तमान है ॥४९॥ हे ब्रह्मन् ! गृत्समद ब्राह्मणों के साथ पूजा जाता है वह ब्रह्मचारी ब्रह्मर्षि श्री श्रीमान् (गृत्समद) हुआ है ॥५०॥ भीष्मजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि राजेन्द्र ! राजा वीतहव्य भृगु के प्रसाद से

(गृत्समद की श्रुति ऋग्वेद मण्डल (२) में है)

११०२ शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाऽभवत् ।
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या, श्रुतिर्यस्य महात्मनः ॥४९॥
महाभा. । अनुशा. प. । अ. ३० । ४९

११०३ यत्र गृत्समदो ब्रह्मन् ! ब्राह्मणैः स महीपते !
स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत् ॥५०॥
म. भा. । अनुशा. । अ. ३० । ५० ॥

११०४ एवं विप्रत्वमगमद् वीतहव्यो नराधिप !
भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र ! क्षत्रियः क्षत्रियर्षभः ॥५१॥
ब्राह्मणोत्पत्तिभास्करे अ. ४ । श्लो. ४८।४९।५०।५१

(महर्षि भृगुने राजाप्रतर्दन से कहा मेरे आश्रम में
कोई क्षत्रिय नहीं है सभी ब्राह्मण हैं)

(राजोवाच)

राजा प्रतर्दन महर्षि भृगुसे बोला

११०५ अयं ब्राह्मन्तितो राजा, वीतहव्ययो विसर्ज्यताम् ।
तस्य पुत्रैर्हि मे कृत्स्नो ब्रह्मन् ! वंशः प्रणाशितः ॥५०॥

जो क्षत्रियों में बड़ा क्षत्रिय था ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुवा था ॥५१॥

(व्याख्या) चन्द्र वंशीय शुनहोत्र के पुत्र गृत्समद को यज्ञ करने के समय दैत्यों ने पकड़ लिया था—इन्द्रने छुड़ाकर भृगु के पास भेजा वहां वह भी ब्राह्मण होगया ऐसी आख्यायिका सायणाचार्य ने लिखी है जो इस ग्रन्थ के सूर्यवंशीय क्षात्रोपेत ब्राह्मण प्रकरण में लिखी है ॥११०२ । ११०४ ॥

११०६ उत्सादितश्च विषयः काशीनां रत्नसञ्चयः ।
एतस्य वीर्य्यदृप्तस्य, हतं पुत्र शतंमया ॥५१॥
११०७ अस्येदानीं वधाद्ब्रह्म, भविष्याम्यनृणः पितुः ।

(भृगुः)

तमुवाच कृपाविष्टो, भृगुर्धर्मभृतांवर ॥
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित, सर्वे हीमे द्विजातयः॥५२॥
११०८ एतत्तुवचनं श्रुत्वा, भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ॥५३॥
पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ।
एवमप्यस्ति भगवन्! कृतकृत्योस्मि न संशयः ॥५४॥

(भृगुके वचन से प्रतर्दन चला गया वीतहव्य बच गये)

११०९ य एष राजा वीर्येण, स्वजातित्याजितो मया ।
अनुजानीहि मब्राह्मण, ध्यायस्व च शिवेन माम् ॥५५॥
१११० त्याजितोहि मया जातिमेव राजा भृगूद्वह।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो, ययौ राजा प्रतर्दनः ॥५६॥

११०५ हे ब्रह्मन् भृगो महर्षे! राजा वीतहव्य को छोड़ दीजिये, वीतहव्य के पुत्रोंने मेरा सम्पूर्ण वंश नष्ट कर दिया ॥५०॥ काशीनिवासियों का नाना रत्नों से सञ्चित देश सब नष्ट कर दिया इस घमण्डी वीतहव्य के १०० पुत्रों को मैंने मार डाला है ॥ ५१ ॥ हे भृगो! वीतहव्य के मारदेने से मैं पितृऋण से उऋण हो जाऊंगा प्रतर्दन की इस बात को सुनकर भृगजी कहा ते हैं कि हे राजन्! ॥५२॥ मेरे आश्रम में कोई क्षत्रिय नहीं है ये सब ब्राह्मण हैं भृगु के इस सत्यवचन को सुनकर प्रतर्दन ॥५३॥ भृगुजी के चरण स्पर्शकर धीरे से प्रसन्न मन हो बोले इस प्रकार भी भगवन् मैं कृतकृत्य (कामयाब) हूं इसमें कुछ भी संशय नहीं ५४

१११११ यथागतं महाराज ! मुक्त्वा विषमिवोरगः ।
भृगोर्वचनमात्रेण, स च ब्रह्मर्षितां, गतः ॥५७॥

११०९ राजा वीतहव्य की क्षत्रिय जाति (वर्ण) मैंने छुड़ादिया, हे ब्रह्मन् ! यह आप जानें और मेरे कल्याण (भलाई) का ध्यान करें ॥५५॥ हे भृगुवंश को ले चलने वाले भृगुजी ! मैंने वीतहव्य को क्षत्रिय धर्म से च्युत (रहित) कर दिया इस प्रकार राजा प्रतर्दन भृगुजी की आज्ञा पाकर अपने स्थान को चले गये ॥५६॥ हे महाराज । जैसे सर्प विष को छोड़कर चला जाता है उसी प्रकार राजा प्रतर्दन चलेगये और भृगुजी के वचनमात्र से वीतहव्य ब्रह्मर्षि (ब्राह्मणत्व को प्राप्त होगये ११०५-११११

इति वीतहव्योपाख्यानम् ॥

॥ इति श्रीकूर्म-सिद्धान्त-विमर्शस्योत्तरभागे
द्वितीयः परिच्छेदः



[illegible]